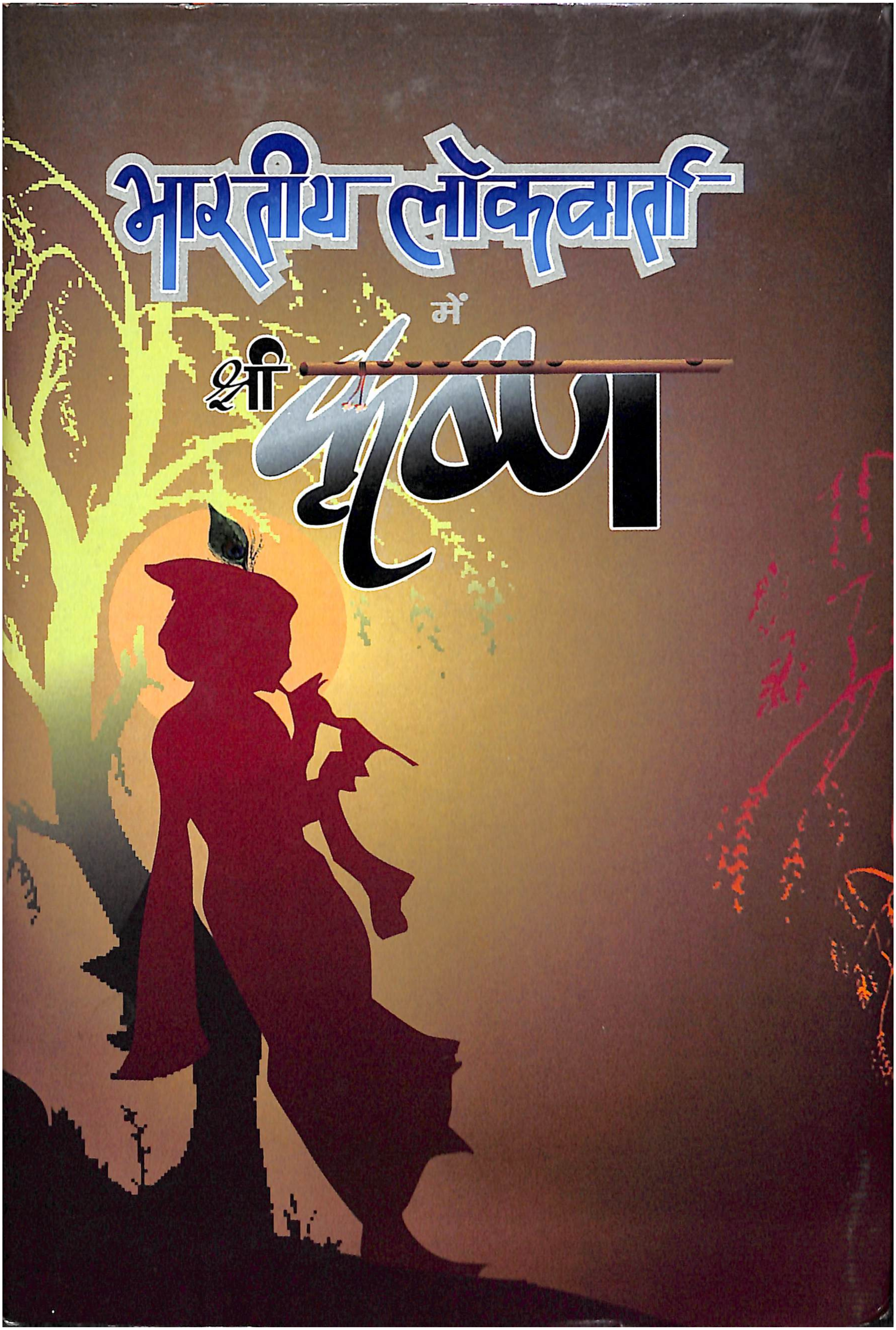
भारतीय लोकवार्ता
में
श्रीकृष्ण

भारतीय लोक वार्ता में श्रीकृष्ण

(संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार के अनुदान से प्रकाशित)

सम्पादक :

भवानी शंकर शुक्ल

डॉ० महेश नारायण शर्मा

वृन्दावन शोध संस्थान

रमणरेती, वृन्दावन–281121 (उ०प्र०) भारत

प्रकाशक :

निदेशक

वृन्दावन शोध संस्थान

रमणरेती, वृन्दावन–281121 (उ.प्र.) भारत

Phone : 91-5652540628, 6450731, Fax : 0565-2540576
Website : www.vrindavanresearchinstitute.org
Emil : vrindavanresearch@gmail.com

संस्करण :

प्रथम संस्करण – 2014

आई.एस.बी.एन.नं० : 978-81-904946-8-7

मूल्य :
रु० 450/-

मुद्रण–संयोजन :

विद्यालय प्रेस

केशीघाट, वृन्दावन : +919412492937

प्रकाशक :

निदेशक

वृन्दावन शोध संस्थान

रमणरेती, वृन्दावन-281121 (उ.प्र.) भारत

Phone : 91-5652540628, 6450731 , Fax : 0565-2540576

Website : www.vrindavanresearchinstitute.org

Emil : vrindavanresearch@gmail.com

संस्करण :

प्रथम संस्करण – 2014

आई.एस.बी.एन.नं० : 978-81-904946-8-7

मूल्य :

रु० 450/-

मुद्रण-संयोजन :

विद्यालय प्रेस

केशीघाट, वृन्दावन : +919412492937

अनुक्रमणिका

1.	भूमिका	—श्री भवानी शंकर शुक्ल	5
2.	प्रकाशकीय	—डॉ० महेश नारायण शर्मा	14
3.	विषय प्रवर्तन	—डॉ० कपिल तिवारी	17
4.	अध्यक्षीय वक्तव्य	—डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित	24
5.	भारतीय लोकचिंतन में श्रीकृष्ण	—प्रो० त्रिभुवननाथ शुक्ल	31
6.	बंगला लोक साहित्य में श्रीकृष्ण	—श्री हरिश्चन्द्र मिश्र	41
7.	तेलुगू लोकवार्ता में श्रीकृष्ण	—प्रो० एस० शेषारत्नम्	71
8.	अवधी लोक साहित्य में श्रीराधाकृष्ण	—डॉ० विद्याबिन्दु सिंह	81
9.	भोजपुरी लोक गीतों में लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का स्मरण	—श्री मदन मोहन सिन्हा 'मनुज'	100
10.	मणिपुरी लोक-जीवन में कृष्ण	—डॉ० देवराज	108
11.	मगही लोकवार्ता में श्रीकृष्ण	—डॉ० रजनीश प्रसाद मिश्र	125
12.	कुमाऊनी लोकवार्ता में श्रीकृष्ण	—प्रो० देवसिंह पोखरिया	129
13.	मैथिली लोकगीतों में श्रीकृष्ण	—डॉ० नरेन्द्र झा	142
14.	मालवा जनपद का लोक-साहित्य : श्रीकृष्ण का सन्दर्भ	—डॉ० मनमोहन सहगल	161
15.	कान्हदेश का कान्हा	—डॉ० सुरेश माहेश्वरी	179
16.	डोगरी लोकगीतों में श्रीकृष्ण—कथा के प्रतिबिम्ब	—श्री ओम गोस्वामी	204
17.	बुन्देली लोकगीतों में श्रीकृष्ण जन्मोत्सव	—डॉ० हरिमोहन पुरवार	233
18.	ब्रज लोकगीतों में श्रीकृष्ण	—डॉ० मालती शर्मा	241
19.	कश्मीरी लोक साहित्य में श्रीकृष्ण	—प्रो० चमनलाल सप्रू	252

20. तमिल लोक-वार्ता में श्रीकृष्ण —डॉ० एन० सुन्दरम् 270
21. गुजराती लोक-साहित्य में श्रीकृष्ण —डॉ० विष्णु विराट चतुर्वेदी 282
22. गढ़वाल में गिरधर —डॉ० उर्मिल कुमार थपलियाल 290
23. ओड़िया लोक नाटक: कृष्ण चेतना —डॉ० शंकरलाल पुरोहित 300
24. राजस्थानी लोकनाट्यों में कृष्ण —डॉ० महेन्द्र भानावत 305
25. असमिया लोकगीतों में श्रीकृष्ण —डॉ० हरेराम पाठक 317
26. यक्षगान लोकनाट्य में श्रीकृष्ण —डॉ० टी०आर० भट्ट 320
27. जनजातीय लोकगीतों में कृष्ण —डॉ० अर्जुनदास केसरी 329
28. मथुरा कला में कृष्ण —डॉ० एस०पी० सिंह 338
29. भारतीय लोकवार्ता में श्रीकृष्ण (सिंहावलोकन) —डॉ० ब्रजभूषण चतुर्वेदी 342
30. आमन्त्रित प्रतिभागी तथा प्रेक्षक विद्वान् 350

भूमिका

● भवानी शंकर शुक्ल

वर्ष 1988 में श्रीकृष्ण की सार्वभौमिक व्याप्ति को ध्यान में रखकर डॉ० विद्यानिवास मिश्र की प्रेरणा से तथा वृन्दावन शोध संस्थान के तत्कालीन निदेशक डॉ० कैलाश चन्द्र भाटिया के नेतृत्व में इस संस्थान ने एक राष्ट्रीय विचार गोष्ठी 'भारत भावरूप श्रीकृष्ण' शीर्षक से वृन्दावन में आयोजित की थी। इस गोष्ठी में उत्तर प्रदेश शासन के संस्कृति विभाग का महत्त्वपूर्ण सहयोग था। इसमें भारत के विभिन्न भागों से लगभग 45 विद्वानों ने भाग लिया था, जिन्होंने भगवान श्रीकृष्ण के जीवन और प्रभाव के विविध पक्षों पर अपने विचार रखे थे। यद्यपि श्रीकृष्ण के लोकपक्ष पर भी विचार किया गया था परन्तु उनकी व्याप्ति का शास्त्रीय पक्ष अपेक्षाकृत अधिक मुखर था। इसी विचार गोष्ठी से अनुप्राणित होकर संस्थान ने वर्ष 2011 में दिनांक 18, 19 और 20 फरवरी को केवल लोक पक्ष में व्याप्ति की खोज के लिये 'लोकवार्ता में श्रीकृष्ण' शीर्षक पर विचार गोष्ठी का आयोजन किया। इस गोष्ठी में यद्यपि देश के सभी भागों तथा जनजातीय क्षेत्रों से विद्वान् भाग नहीं ले सके, तथापि उत्तर से दक्षिण तथा पश्चिम से पूर्व भारत के अधिकांश प्रदेशों से लगभग 25 विद्वानों ने भाग लिया तथा उन्होंने रोचक एवं अत्यन्त सूचनाप्रद निबन्धों का पाठ किया।

लोकवार्ता पर केन्द्रित श्रीकृष्ण की भूमिका पर संगीत, नृत्य, लोकगीत, नाट्य और चित्र आदि विभिन्न कलारूपों का विवेचन किया गया और सर्वत्र कृष्णमयता का दर्शन हुआ। फिर भी, यह

तथ्य उभरकर सामने आया कि सभी भाषा और भूगोल के क्षेत्रों में श्रीकृष्ण का उल्लेख लोकवार्ता में एकरूप नहीं है जैसे पश्चिम भारत, गुजरात और महाराष्ट्र आदि में श्रीकृष्ण के साथ राधा का उल्लेख नहीं है, बल्कि रुक्मिणी ही श्रीकृष्ण के साथ हैं। राधा का साहचर्य दक्षिण भारत, विशेषकर तमिलनाडु में भी सीधे तौर पर नहीं है। आन्ध्र प्रदेश में बच्चों के खेल तथा लोरियों में श्रीकृष्ण विराजमान हैं। उत्तर भारत में श्रीकृष्ण बाललीला वाले और विशेष रूप से रसिक रूप में चित्रित हैं। बिहार में लोकगीतों में श्रीकृष्ण का प्राधान्य नहीं है, परन्तु अवध और पूर्वी उत्तर प्रदेश में जहाँ का लोक साहित्य मुख्यत: राममय है, वहाँ श्रीकृष्ण की उपस्थिति कम नहीं है। लोक गीतों में कभी-कभी राम और कृष्ण में भेद नहीं किया गया। उत्तर भारत के गीत विशेषों में होली का बड़ा महत्त्व है। उसमें राधाकृष्ण और उनके बीच की होली का विस्तार से वर्णन मिलता है। उड़ीसा में भगवान जगन्नाथ जो कृष्ण के ही रूप हैं, विशुद्ध लोकदेवता हैं। गढ़वाल में श्रीकृष्ण नाग देवता (नागराजा, नागर्जा) के रूप में पूजे जाते हैं। मिर्जापुर तथा सोणभद्र जिले के आदिवासियों के बीच श्रीकृष्ण आदिवासियों के ही समान गरीब और साधनहीन हैं। वह अपने सजातियों की तरह भूमि पर चटाई बिछाकर सोते हैं और उन्हें चीटियाँ काटती हैं। यह देखकर आदिवासियों को बड़ा कष्ट होता है, क्योंकि श्रीकृष्ण उनके अत्यन्त प्रिय बन्धु हैं। वे सूर्यदेव से प्रार्थना करते हैं कि दिन जल्दी निकले और सूर्य के प्रकाश में चीटियाँ श्रीकृष्ण के शरीर से दूर हो जायें।

इस संगोष्ठी में संगीत पक्ष की विशेष चर्चा नहीं हो सकी, यह हमारी कमी थी। वास्तव में लोक संगीत और नृत्य में श्रीकृष्ण और राधा की व्याप्ति दूसरी कलाओं से कम नहीं है। परन्तु कई प्रकार के लोक संगीत और लोक नाट्यों में श्रीकृष्ण महाभारत के

नायक के रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं। वहाँ वृन्दावन के रसिक कृष्ण का स्थान नहीं है। पाण्डवानी एक ऐसा ही लोक नाट्य/संगीत है। यक्षगान, थेरीकुट्टू, रहस, कृष्णअट्टम्, कथकली और कुड्डियातन में भी यही स्थिति है। महापुरुष शंकरदेव के प्रभाव से एकशरण सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण वृन्दावन के रास बिहारी नहीं हैं। उत्तर भारत में कजरी और चैतीगायन में श्रीकृष्ण की विद्यमानता रसिक के रूप में है। यह उल्लेखनीय है कि चैती गायन जो बिहार और उत्तर प्रदेश में विशेष प्रचलित है, में राम की चर्चा अधिक है परन्तु कुछ चैती गीतों में भगवान श्रीकृष्ण मौजूद हैं। एक भोजपुरी चैती गीत इस प्रकार है—

कान्हा चरावे धेनु गइया हो रामा
जमुना किनरवा।
जमुना किनरवा कदमिया के गछिया
ताहि चढ़ि बंसिया बजावे हो रामा।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे
गले सोभे मोतिया के मलवा हो रामा।

इसी प्रकार एक मगही चैती में श्रीकृष्ण को इस प्रकार चित्रित किया गया है—

लगइ सुन्न भवनवाँ हो रामा, कान्हा के बिनु।
मुनहर घरवा में सुतली संजरिया
हरिजी के देखली सपनवाँ हो रामा, कान्हा रे बिनु।

×

चइत बीति गेल सखी, स्याम नहिं अएलन
रहि रहि जिया घबरावे हो रामा, कान्हा रे बिनु।

जहाँ तक कजरी गीतों का प्रश्न है, जैसा कहा जा चुका है उनमें श्रीकृष्ण को रसिक रूप में चित्रित किया गया है। कजरी प्राय: विरह गीत हैं इसलिये उसमें नायिका श्याम के लिए विरहाकुल है।

उदाहरण के लिये उत्तर प्रदेश की कुछ कजरियों के नमूने प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

स्याम नहिं आये आई स्याम बदरिया।
छाई चारिउ छोर देखौ कारी अँधिरिया।
चमकै रहि रहि बइरिनि बिजुरिया
सन सन सन सन चलत बयरिया।
तलफत इत व्रजभान दुलरिया
अँसुअन भींजत धानी चुनरिया।

×

देखो री मुकुट झोंका लै रह्यौ
ए ली लै रह्यौ जमुना के तीर।
कुंजन झूलें रानी राधिका
ए जी बागन झूलें घनस्याम।
कौन झुलामें रानी राधिका

×

सावन रस सरसावनो
जामें झूलत हैं घनस्याम।
(बरसाना)

बतिया मान ऽ हो कन्हाई,
छोड़ ऽ छोड़ ऽ चूनरी।
मैं दही बेचन जात वृन्दावन,
मोहन के नगरी।
बीच डगर में फोड़े मोहन,
राधा के गगरी।
मात हमारी जसोदा रानी,
नित हमसे रगरी।

नित नित रास रचावे कन्हैया,
नाचे सखी झुमरी।
वृन्दावन के कुँज गलिन में,
राधा के पकरी।

×

संगीत ही नहीं बल्कि लोककथाओं तथा विभिन्न संस्कारों, व्रतादि अवसरों तथा गाथाओं (उदाहरणार्थ – गाथा रुक्मिणी मंगल, कीचक वध, दुर्योधन वध) में भी कृष्ण सर्वत्र विद्यमान हैं। डॉ० नरेशचन्द्र बंसल तथा श्री रामनारायण अग्रवाल ने क्रमशः सूकरक्षेत्र शोध संस्थान और ब्रजकला केन्द्र की ओर से ब्रज की लोकगाथाओं के प्रशंसनीय संग्रह सम्पादन के साथ छापे हैं। चित्रकला में तो कृष्ण का प्राचुर्य ही है। मन्दिरों की भित्ति चित्रों पर तथा हवेलियों में श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाएँ तथा राधा के साथ उनकी प्रणय लीलाएँ बहुतायत से चित्रित हुई हैं। मध्यकालीन चित्रकारों का मन लीलाबिहारी श्रीकृष्ण के प्रति जितना आकर्षित हुआ है उतना अन्यत्र कहीं नहीं। ऐसे चित्र केवल काव्य के आधार पर ही नहीं बने बल्कि कलाकार की स्वयं अनुभूति के आधार पर भी बने। भित्ति चित्रण के अतिरिक्त वस्त्रों पर बनी पिछवाइयों पर भी कृष्ण केन्द्रित चित्र बने। यही नहीं सुदूर असम में वृन्दावन साड़ियाँ भी बनीं जिन पर कृष्ण कथानक बुने गये। ब्रजक्षेत्र की साँझी कला में कृष्ण राधा के साथ केन्द्रस्थ हैं।

इस विचार गोष्ठी का उद्घाटन सत्र महत्त्वपूर्ण रहा। संस्थान के अध्यक्ष द्वारा आगत विद्वानों का स्वागत करने के पश्चात् सत्र के मुख्य अतिथि डॉ० कपिल तिवारी ने अपना बीज वक्तव्य प्रस्तुत किया। डॉ० तिवारी ने भारत की वाचिक परम्परा का जिक्र करते हुए कहा कि वेद, उपनिषद्, आरण्यक तथा महाकाव्य आदि सभी

वाचिक परम्परा के ही उदाहरण हैं। वस्तुत: भारतीय संस्कृति मूलत: वाचिक परम्परा पर ही आधारित है। उन्होंने यह भी कहा कि भारत में लोग 'लोक' को पाश्चात्य फोक (Folk) के अर्थ में स्वीकार करते हैं और 'लोकवार्ता' को फोकलोर (Folklore) के अर्थ में। 'लोक' और 'लोकवार्ता' को फोक (Folk) तथा फोकलोर (Folklore) के रूप में समझना अनुचित है। इसलिये यथासम्भव हमें 'लोकवार्ता' शब्द से परहेज करना चाहिये। भारतीय परम्परा वाचिक परम्परा ही है। उन्होंने रासलीला के समान ही छत्तीसगढ़ के 'रहस' की चर्चा की और बताया कि उसका रंगमंच पूरा गाँव होता है तथा उसका स्वरूप रासलीला से बिल्कुल भिन्न होता है।

डॉ० कपिल तिवारी के पश्चात् भोपाल से पधारे मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी के निदेशक प्रो० त्रिभुवन नाथ शुक्ल का भाषण भी अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण था। उन्होंने श्रीकृष्ण को लोक भाषा, साहित्य, कला एवं संस्कृति की नाभि कहा और यह भी बताया कि 'लोक' मूल है 'वेद' का, न कि 'वेद' मूल है 'लोक' का। लोक इसलिये वेद का मूल है कि कोई चीज एकदम से आभिजात्य नहीं हो जाती। इसलिये आज लोकसाहित्य में कृष्ण को जब हम खोजने चलते हैं तो कृष्ण का खोजना लोकवार्ता में कृष्ण का बचपन, यौवन, बुढ़ापा और सिद्धावस्था को खोजना है। उन्होंने कहा कि साहित्य तथा संस्कृति की प्रत्येक विधा में इसी कारण श्रीकृष्ण के न जाने कितने पक्ष उद्घाटित होते हैं। उन्होंने अपनी बात विभिन्न भारतीय भाषाओं के उदाहरणों से सिद्ध की।

अन्त में सभाध्यक्ष डॉ० सूर्य प्रसाद दीक्षित का अध्यक्षीय वक्तव्य हुआ। उन्होंने डॉ० कपिल तिवारी की इस बात का समर्थन किया कि 'लोकवार्ता' शब्द एवं 'लोक' शब्द का हमने अनर्थ कर डाला है। उन्होंने हिन्दी भाषा में लोक के 5 अर्थ बतलाये। लोक का

एक अर्थ एक ऐसा वर्ग है जो प्रायः अशिक्षित, पिछड़ा हुआ यानी गँवार माना जाता है। इसे ही अंग्रेजी में फोक (Folk) कहते हैं जिसे आदिम रूप में लिया गया है। उसका अनुकरण करते हुये हिन्दी में भी यह अनर्थ किया गया किन्तु संस्कृति के संदर्भ में शिष्ट साहित्य और लोक साहित्य जैसे अनर्थकारी नाम गढ़ना अनुचित है। उन्होंने कहा कि हमारे लोक साहित्य में कृष्ण तत्त्व गम्भीर गवेषणा का विषय है। हमारे संस्कार गीतों, श्रमगीतों, होली आदि के उल्लासमय गीतों, कथाओं, ऋतुगीतों और धार्मिक गीतों में कृष्ण सर्वत्र व्याप्त हैं। डॉ० दीक्षित ने ब्रज क्षेत्र के चरकुला नृत्य और साँझी कला का विशेष रूप से उल्लेख किया और उनके माध्यम से भारतीय जीवन में कृष्णमयता को उजागर किया।

उद्‌घाटन के बाद अनेक सत्रों में दो दिनों तक आमंत्रित विद्वानों ने श्रीकृष्ण के विविध पक्षों के सम्बन्ध में भारतीय लोक साहित्य और कलाओं में कृष्ण की उपस्थिति के बारे में महत्त्वपूर्ण निबन्धों का पाठ किया, जिन्हें इस पुस्तक के माध्यम से प्रस्तुत किया जा रहा है। विचार गोष्ठी के समापन सत्र में स्थानीय सन्त टाट बाबा का आशीर्वचन हुआ। उन्होंने जीवन के सभी पक्षों में कृष्ण तत्त्व के महत्त्व को रेखांकित किया। विचार गोष्ठी में अन्तिम वक्तव्य संस्थान के अध्यक्ष का हुआ, जिन्होंने सुदूर तथा नातिदूर से आकर 'लोकवार्ता' में श्रीकृष्ण विषय पर अपने गम्भीर विचारों को रखने वाले सभी विद्वानों का धन्यवाद ज्ञापन किया तथा परस्पर विचार विमर्श भी किया। अध्यक्ष ने डॉ० कपिल तिवारी की 'लोकवार्ता' तथा 'लोक' शब्दों के दुरुपयोग की शंका के बारे में भी उनसे सहमति व्यक्त की परन्तु कहा कि अब भारतीय विद्वान् शनैः-शनैः लोक को फोक (Folk) के अर्थ में नहीं ले रहे हैं। कम से कम वृन्दावन शोध संस्थान में तो नहीं। लोकवार्ता वस्तुतः वाचिक परम्परा ही है– व्यक्ति

विशेष सर्जक विहीन। यह जातीय स्मृति का उद्घाटन है जो सामाजिक चेतना को समग्रता से आच्छादित करती है। वार्तालाप भी वाचिक ही है—जो हमें परम्परागत प्राप्त होती है। अत: जब हम लोकवार्ता में कृष्णान्वेषण करते हैं तो हम भारत की सनातन वाचिक परम्परा में ही कृष्ण को खोजते हैं।

जहाँ तक 'लोक' शब्द का प्रश्न है उसे हम पृथ्वी (मृर्त्यलोक) पर जन्मे सभी मनुष्य मानते हैं—चाहे वे ग्रामीण हो, नागरिक हो, अरण्यवासी हो अथवा घुमन्तू, जिनके विचार, ज्ञान और सृजन को हम परम्परागत दोहराते आ रहे हैं। जब तथागत बुद्ध प्रथम धर्मचक्र प्रवर्तन सूत्र में भिक्षुओं की चारिका के संदर्भ में 'लोकानुकम्पाय' कहते हैं तो वह लोक शब्द हमारी मान्यता से भिन्न नहीं है। इसी प्रकार पुराणों और गीता आदि में 'लोकानुग्रह' अथवा 'लोक संग्रह' की चर्चा होती है वहाँ भी हमारी मान्यता का ही लोक है न कि फोक (Folk) का।

भारत ही नहीं सुदूर दक्षिण पूर्व एशिया और मध्य एशिया में भी श्रीकृष्ण जाने गये हैं। बौद्ध और जैन धर्मों के साहित्य में भी उनके तेज की चर्चा की गई है। श्रीकृष्ण की व्याप्ति ललित कलाओं के सभी पक्षों में है। परन्तु श्रीकृष्ण कौन हैं? वह साक्षात् परब्रह्म हैं, सशरीर पृथ्वी पर विष्णु हैं अथवा परमात्मा होते हुए भी पृथ्वी पर मानव रूप में उपस्थित हैं। पृथ्वी पर मनुष्य रहते हैं। देवता भी पृथ्वी पर मानव रूप में आते हैं। फिर कृष्ण क्या हैं? दूसरा बिन्दु है कृष्ण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि। धर्म और अध्यात्म की दृष्टि से कृष्ण कालातीत भले हों परन्तु पृथ्वी पर तो वह मानव ही हैं। वह असीम नहीं ससीम हैं। कितनी प्राचीन परम्परा है कृष्ण की हमारे देश में? जिस कृष्ण की व्याप्ति समस्त भारतीयों के मन में उपस्थित है उसको इतिहास पुरुष मानना अथवा न मानना व्यर्थ है। वह भाव रूप में

समस्त भारतवासियों के हृदय में निवास करते हैं। अत: श्रीकृष्ण के विषय में प्रश्न भी अर्थहीन हैं। कृष्ण को इतिहास से जोड़ना अनावश्यक है। वह तो एक चेतना हैं। कृष्ण की व्याप्ति कितने-कितने रूपों में देश और काल के अनुसार, परिस्थिति के अनुसार, वातावरण के अनुसार और स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार है, यह आश्चर्यजनक है। कृष्ण का उपयोग किया गया अपनी उन्नति के लिए, समाज की उन्नति के लिए और समाज के सौहार्द्र के लिए।

संगोष्ठी के आयोजन में हमें डॉ० सूर्य प्रसाद दीक्षित, श्री हरिमोहन मालवीय, वृन्दावन शोध समिति की सचिव श्रीमती सुशीला गुप्ता तथा वरिष्ठ प्रकाशन सहायक डॉ० ब्रजभूषण चतुर्वेदी का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ। वास्तव में डॉ० चतुर्वेदी संगोष्ठी के एकमात्र कर्ताधर्ता रहे हैं।

श्री रजत शुक्ल ने प्रूफ पढ़ने में सहायता की। श्री पवन कुमार प्रजापति का धन्यवाद के साथ उल्लेख भी आवश्यक है, जिन्होंने परिश्रमपूर्वक पूरे ग्रन्थ की टाइप स्क्रिप्ट तैयार की। मैं विद्यालय प्रेस के श्री विष्णुदान शर्मा को भी धन्यवाद देना चाहता हूँ, जिन्होंने इस ग्रन्थ को सुन्दर रूप में प्रकाशित किया।

मैं आशा करता हूँ कि ये निबन्ध विद्वानों द्वारा समाहित होंगे तथा शोधकर्ता भी इससे लाभान्वित होंगे।

—भवानी शंकर शुक्ल

सम्पादक

रक्षाबन्धन

2 अगस्त 2012

प्रकाशकीय

भारत का सांस्कृतिक परिदृश्य प्राचीन तथा व्यापक होने के कारण वैविध्यपूर्ण मान्यताओं तथा कला-परम्पराओं का विपुल भण्डार सँजोए हुए है। यदि कालक्रम के अनुसार मानव जीवन से जुड़ी मान्यताओं अथवा मिथकीय आधारों का सतत अध्ययन किया जाय तो अनेक युगों के परिनिष्ठित विचार तथा आंचलिक संस्कृतियों के आदान-प्रदान का समन्वय दृष्टिगोचर होता है। बात अगर साहित्य की लिखित परम्पराओं पर केन्द्रित हो तो शास्त्रीय परम्परा से पूर्व हमारे साहित्य में लोक से निसृत मान्यताओं, मिथक तथा अनुष्ठानों की चर्चा सहजता से देखी जा सकती है। हमारी साहित्यिक परम्परा को लोक-साहित्य ने कितना और किस प्रकार प्रभावित किया, इसके उदाहरण कृष्ण भक्ति साहित्य में पग-पग पर देखे व समझे जा सकते हैं।

धर्म के प्रति भारतीय जनमानस सदैव स्वतन्त्र रहा है। शायद यही कारण रहा कि जितने लोक मिथक या पारम्परिक मान्यताएँ इस देश में प्रचलित हुईं, अन्यत्र नहीं दिखतीं। भारतीय लोक संस्कृति के उन्नायकों में राम और कृष्ण के नाम अग्रणी हैं। इन्होंने अपने गरिमामय एवं बहुआयामी व्यक्तित्व के द्वारा भारतीय जन-मन को एक नई दिशा प्रदान की, हजारों वर्षों से अखिल भारतीय स्तर पर भिन्न-भिन्न लोकवार्ताओं में इसकी अलग-अलग छाप देखी जा सकती है। लीला पुरुषोत्तम के रूप में श्रीकृष्ण लोक भावनाओं के सर्वाधिक निकट रहे हैं। शायद यही कारण है कि भारतीय वाङ्मय के विस्तृत फलक पर श्रीकृष्ण की तरह गतिशील, बहुआयामी चरित्र अन्यत्र

दर्शित नहीं होता। देश की अलग-अलग आंचलिक संस्कृतियों में कृष्ण के वैविध्यपूर्ण व्यक्तित्त्व का दर्शन होता है। जिसकी प्रतिध्वनि भारतीय साहित्य, संगीत और कला में बराबर देखी जा सकती है।

ब्रज संस्कृति का उन्नयन, विकास एवं अध्ययन वृन्दावन शोध संस्थान के प्रमुख उद्देश्यों में एक है। समूचे भारतवर्ष के विभिन्न क्षेत्रों की लोकवार्ताओं में श्रीकृष्ण विषयक त्रिदिवसीय संगोष्ठी का आयोजन कराया गया था, जिसमें विभिन्न भाषाई क्षेत्रों से आये विद्वानों ने श्रीकृष्ण के संदर्भ में अपने-अपने विचार प्रस्तुत किये। संस्थान के तत्कालीन अध्यक्ष स्व० भवानी शंकर शुक्ल के द्वारा पूरे देश में श्रीकृष्ण से सम्बद्ध उनके विविध पक्षों से जुड़ी वैविध्यपूर्ण मान्यताओं का क्षेत्रवार विश्लेषण एवं अध्ययन करना इस संगोष्ठी का उद्देश्य था। वास्तव में यह श्रीकृष्ण के व्यापक व्यक्तित्त्व का ही परिणाम है कि समूचे देश के विभिन्न अंचलों से अनेक विद्वान् प्रतिभागियों ने श्रीकृष्ण के नाम पर आयोजित इस वृहद् संगोष्ठी में प्रतिभागिता हेतु अपनी सहर्ष स्वीकृति प्रदान कर इसमें सहभागिता की। तत्कालीन निदेशक श्रीहरिमोहन मालवीय के सद्प्रयासों से यह कार्य सम्पन्न हो सका, जिसमें व्याख्यानों के अतिरिक्त राष्ट्रीय कथक संस्थान के कलाकारों द्वारा उपस्थित विद्वान् एवं अतिथियों के समक्ष श्रीकृष्ण विषयक सांगीतिक प्रस्तुतियाँ देना कार्यक्रम का एक अन्य सफलतम पक्ष रहा।

संगोष्ठी के सफल आयोजन एवं संगोष्ठी में प्रस्तुत किये गये आलेखों को वर्तमान पुस्तकाकार रूप देने में डॉ० ब्रजभूषण चतुर्वेदी का सराहनीय योगदान रहा है। अतएव वह धन्यवाद के पात्र हैं। उनके अतिरिक्त संगोष्ठी के आयोजन सम्बन्धी व्यवस्थाओं, सांस्कृतिक कार्यक्रम के आयोजन, आलेखों के संकलन, लिप्यंतरण, छायांकन, टंकण एवं रिकार्डिंग में सर्वश्री पुनीत गोस्वामी, सुकुमार गोस्वामी,

जयदेव डे, रजत शुक्ला, डॉ० राजेश शर्मा, उमाशंकर पुरोहित, श्रीकृष्ण गौतम एवं कृष्ण कुमार मिश्रा ने अपना सहर्ष योगदान दिया। इनके प्रति तथा संस्थान के उन सभी कर्मचारियों के प्रति मैं धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने इस कार्यक्रम में यथापेक्षित सहयोग दिया।

अन्त में, मैं उन सभी सुधीजनों के प्रति हृदय से आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने अपनी उपस्थिति से आयोजन को सफल बनाने में योगदान दिया। मैं आशा करता हूँ कि प्रस्तुत प्रकाशन शोधार्थियों एवं पाठकों के लिये उपयोगी सिद्ध होगा।

—डॉ० महेश नारायण शर्मा
निदेशक
वृन्दावन शोध संस्थान
वृन्दावन

विषय प्रवर्तन

❀ डॉ० कपिल तिवारी

आपसे मैं शुरू में ही निवेदन कर दूँ कि इस विषय में शुभारम्भ करने की पात्रता मेरी नहीं है। मैं अलग-अलग दिशाओं में कुछ छोटा-मोटा कार्य कर रहा हूँ, लेकिन भागवत धर्म, श्रीकृष्ण और लोक वार्ता, इस पर कोई बहुत केन्द्रित काम मैंने नहीं किया है। पिछले साल छः सात सौ पृष्ठों में मैंने मध्य प्रदेश की लोक वाचिक परम्पराओं में भक्ति की लोक भूमिका पर कुछ काम किया था और विद्वानों के लिए मैंने उसको भेजा। कुछ नये पक्ष उसमें उद्घाटित हुए थे। उसमें कुछ सवाल उठाए गए थे कि क्या भक्ति का आन्दोलन साहित्यिक क्रान्ति से समाप्त हुआ है या लोक की स्मृति से समाप्त हुआ है अथवा लोक में आज भी भक्ति रचना की जो परम्परा है वह जीवन्त है और ऐसे रचनाकारों का चयन किन्हीं कारणोंवश साहित्य के इतिहास की परम्परा में स्मरणीय रखा जा सके। उनकी रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं, जिनका चयन करके सात-आठ सौ पृष्ठों में मैंने पिछले वर्ष प्रकाशित किया था। तब मेरे ध्यान में यह आया था कि उस पुस्तक का 75 प्रतिशत हिस्सा लोक स्मृति से आता था। कृष्ण को केन्द्रित करके भी एक अकादमिक की तरह कह देना थोड़ा आसान है। लेकिन जब हम व्यवहार में किसी चीज की परीक्षा करते हैं, वह असल क्षेत्र है जहाँ यह पता चलता है कि स्थितियाँ कैसी हैं। मैं हमेशा सोचता हूँ कि भारतीय दर्शन ने निर्गुण परम्परा को शायद बहुत गहरे तक प्रभावित किया है। लेकिन मैं थोड़ा निराश हुआ। बहरहाल, वह एक उपक्रम था जहाँ से थोड़ी अभिरुचि इस विषय में मेरी जागी कि

इस शुभारम्भ वक्तव्य के नाम पर जो कुछ मुझे कहना है, दो दिशाओं से अपनी बात को मैं शुरू करना चाहूँगा। पहली तो लोकवार्ता में जो शक है इसी पर कुछ, और दूसरा पूरे भारतीय परिप्रेक्ष्य में श्रीकृष्ण की जो अवधारणा है, स्वरूप है, इस पर कुछ बात। क्या ये शब्द ठीक हैं, जब हम लोक वार्ता शब्द का इस्तेमाल अपनी परम्परा के संदर्भ में करते हैं। यह अंग्रेजी के फोकलोर (Folklore) का यथासम्भव हिन्दी अनुवाद है। क्या यह सच है कि जिस तरह अंग्रेजी का फोक (Folk) है वह हमारी भारतीय परम्परा की अवधारणा का 'लोक' है? क्या लोकवार्ता को हमने कुछ छोटा नहीं कर दिया है? इस पर विचार करें और इस शब्द से बचें।

लोकवार्ता, सारा भारतीय देशज ज्ञान, सारी भारतीय देशज रचना, सारी भारतीय भाषित परम्पराएँ, रूप रचना, ये सब वाचिकता के भीतर है। हम वाचिकता के अर्थ का ठीक तरह से विस्तार करें जैसी हमारी परम्परा ने हमें सिखाया है। जरा इस पर विचार करें कि क्या ज्ञान की जो लिखित परम्पराएँ हम मानते हैं व़ो सब लिखित परम्पराएँ हैं। गीता लिखित परम्परा है? उपनिषद् लिखित परम्परा है? आरण्यक लिखित परम्परा है? भारत में वाक् एवं वाचिक का एक बहुत विराट अर्थ है और वहाँ से चलकर एक साधारण भारतीय किसान के अनुभव का ज्ञान, उसकी रचना और उसकी भाषा तक जो की जाती है वह भी वाचिक हैं। भारतीय शिल्प परम्पराएँ किसी व्याकरण से, किसी शास्त्र से आदेशित हैं। उनका अनुशासन कहाँ से आता है। एक कुम्हार काम करता है, एक लुहार काम करता है, एक बढ़ई काम करता है, इनमें एक वाचिक परम्परा है। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में बहुत सा अन्तर होता है। एक बुनकर महत्त्वपूर्ण वस्त्र शिल्पी है, जो सदियों से काम कर रहा है। हर वस्त्र बनाने वाला परिवार, हर शिल्प की परम्परा में काम करने वाला परिवार, एक गुरु

है। शिल्प की परम्परा को समझने और उसमें दीक्षित होने का गुरु है। उसका कभी भारत में कोई स्कूल नहीं रहा। अध्यापन नहीं हुआ है। यह वाचिकता है। भारतीय लोक रंगमंच की शैलियों पर काम करते हुए लगभग 32 शैलियों पर हमने थोड़ा सा काम किया। मैं आश्चर्य में था, इनमें 28 रंग शैलियों की जो बातें की, वाचिक थीं। वह लिखित में नहीं थीं। मैंने अभी रंगभूमि की 1000 पृष्ठों की पुस्तक का सम्पादन किया है, जिसमें अकेले मध्य प्रदेश की 3 या 4 रंग शैलियों के वाचिक नाट्यपाठ हैं उनका संकलन किया गया है। आप जरा कल्पना तो करें, अगर सारे भारतवर्ष की 32 भाषाओं के वाचिक नाट्यपाठ संकलित किये जायें तो वह कितना विशाल काम होगा। मैं अभी इसमें लीला परम्पराओं को शामिल नहीं कर रहा हूँ। इसमें आख्यान के रंगमंच को शामिल नहीं कर रहा हूँ। वह कल्पनातीत है, उसका विस्तार बहुत बड़ा है, लोक की तरह विशाल है। वह भदेसों की रचना नहीं है, यह विभाजन किसने कर दिया। हमारे हिन्दी की परम्परा के कुछ आलोचकों की पुस्तकें पढ़कर मैं भौंचक रह जाता हूँ। विशेषतौर पर तब, जब वह साहित्य की शिष्ट परम्परा का उल्लेख करते हैं। क्या साहित्य की कोई अशिष्ट परम्परा भी है। यह क्या कर रहे हैं अपनी परम्परा के लिए। यह कल्पना नहीं है। परम्परा के साथ सम्बन्ध को ठीक करने के लिए मुझे दो-तीन बातें बहुत जरूरी लगती हैं। एक बहुत विशाल ज्ञान की परम्परा है, रचना की परम्परा है, रूप-रचना की परम्परा है, भाषित परम्पराएँ हैं, लालित्य की परम्परा है, कितना विराट चित्र है। इसको छोटा नहीं करना चाहिए। मुझे हमेशा लगता है कि अपना काल बोध ठीक कर लें।

भारत में परम्परा को ठीक ढंग से समझना जरूरी है। क्योंकि बंगाल का 19वीं शताब्दी का जो पुनर्जागरण है, इसने यूरोपाक्रान्त भारतीय मेधा को पिछड़ी डेढ़ सदियों से प्रभावित कर रखा है। इसमें

कोई इतिहास छुपा हुआ है। बहुत मूल्यवान इतिहास। विचार करना जरा इस बात पर, कौन लोग थे जिन्होंने इसको ईसा के जन्म के समय से दो हिस्सों में विभाजित कर दिया। ईसा के पहले का एक समय और ईसा के बाद का एक समय। यह धृष्टता आपने पहले कभी नहीं की। राम के पहले का समय और राम के बाद का समय। कृष्ण के अवतरण के पहले और बाद का एक समय। बुद्ध के अवतरण के पहले का और बुद्ध के अवतरण के बाद का एक समय। लेकिन जिन लोगों ने पिछले 2000 वर्ष के इस समय को ही दस्तावेजी समय कहकर इतिहास की संज्ञा दे दी है और समय का लेखा-जोखा करने करने लगे हैं, यह क्या आपने कभी किया। आपने उपनिषद् रचे, वेद रचे, आरण्यक रचे, सूक्त रचे, संहिताएँ रचीं, आपने आख्यान रचे, महाआख्यान रचे। आपने कभी इतिहास नहीं रचा। एक भारतीय की तरह से किसी ने इस पर विचार किया है? याकि सच यह है कि आपने इसकी जरूरत नहीं समझी? क्या यह भारतीय का आलस्य है? क्या यह निराशा है? वह इतिहास में उत्सुक क्यों नहीं है? अथवा सच ये है कि इस संसार में प्रत्येक जाति का अपना भी एक काल बोध है और इसी में एक इतिहास बोध होता है। जो काल की सनातनता में होते हैं, वह कहीं एक नित्य वर्तमान होते हैं। वह सनातनता कोई गई गुजरी चीज नहीं है। इसलिए हमारे पास कोई चीज अतीत नहीं होती। सनातन वह होता है जो समकाल तक आता है, हमारी साँस तक। वह जो मुझ तक आया, शिराओं में बहता मेरा उत्तराधिकारी है। अगर वह नहीं तो एक इतिहास हो सकता है। कभी मैं सोचता हूँ कि अच्छा हुआ कि इस देश ने कोई इतिहास नहीं लिखा। लेकिन यह प्रबुद्धता पिछली डेढ़ सदी से भारत में इस बात का शोक मना रही है कि इस देश ने इतिहास की प्रामाणिकता में कुछ रचा नहीं या इस देश की परम्परा को इतिहास के समय के चश्मे में

देखा नहीं गया। उसको दस्तावेजीकृत नहीं किया गया। इसलिए वह प्रामाणिक नहीं है। तुम्हारी प्रामाणिकता तय किस चीज में होगी। इसको जरा तय करना। इसको समय तय करता है या सत्य तय करता है?

आप इस पर विचार करें कि पिछले 2000 वर्षों से बहुत अधिक पीछे अगर मेरे सांस्कृतिक बोध, मेरी परम्परा और हमारे ज्ञान की अनुगूँज हम तक आती है तो वह इतिहास से तो बहुत पहले जन्म ले चुकी है। कोई काल्पनिक समय नहीं है। क्या हम एक इतिहास विहित समय नहीं है? क्योंकि पश्चिम के इतिहासकारों ने तो करीब-करीब पूरी धरती की परम्पराओं के साथ ऐसा किया है कि जो 2000 साल से पहले का है, वो गल्प है, किंवदन्ती है, मिथक है, कपोल कल्पना है, अप्रामाणिकता है, कथा है, वगैरह-वगैरह। लेकिन वह प्रामाणिक इतिहास नहीं है। अगर इस देश की प्रबुद्धता यह स्वीकार कर लेती है तो फिर मुझे कुछ नहीं कहना 5000 साल तो कृष्ण को अवतरित हुए हो चुके हैं। यही वह भूमि है। तो ठीक है, एक अतीत की चीज है 'कृष्ण'। अगर उनका इतिहास भी तय कर लोगे तो क्या हो जाने वाला है। मैं अगर इस बात को सिद्ध कर दूँ कि कृष्ण 5000 नहीं 10000 साल पहले की घटना है तो क्या फर्क पड़ रहा है, विचार करना इस पर। एक अपनी ही इतिहास दृष्टि, अपने काल बोध से जब अपनी परम्परा नहीं देखी जाती तो इससे बचने की जरूरत है। मैं कहता हूँ, भारत को अपनी दृष्टि की खोज करनी चाहिए। मेरा ऐसा छोटा सा अनुभव है और मैं ऐसा मानता हूँ और मैं इसमें किसी से भी संवाद करने के लिए राजी हूँ। पहली बात तो यह है कि उसको इतिहास से मुक्त कर दो, उसको समय से भी मुक्त कर दो। एक और बात, उसको भूगोल मुक्त भी करने की जरूरत है, क्योंकि केवल वृन्दावन के सम्बन्ध में नहीं, पूरे भारतीय परिप्रेक्ष्य में उसको देखना

है; क्योंकि यह अद्‌भुत विलगता का दृश्य है।

धर्म, भाषाएँ, क्षेत्रीय संस्कृतियाँ, रूप-रचना की इतनी कल्पनातीत विविधता है, लेकिन इस अद्‌भुत माला को सूत्र देने का जो काम करता है वह भारत का भागवत धर्म है। इस नजरिये से इस पर विचार करिए। उत्तर से पूर्व तक, दक्षिण से उत्तर तक। पूरे देश की ऐसी रूप रचना और भाषिक सांस्कृतिक और धार्मिक विविधता है। उत्तर पूर्व में अपनी वैष्णव परम्पराओं ने कृष्ण को एक तरह से देखा है। दक्षिण के केरल में कृष्णाट्टम् की परम्पराओं में कृष्ण दूसरी तरह से देखे गए हैं। छत्तीसगढ़ में नाट्य की एक परम्परा है, वो ब्रज की परम्परा से एकदम भिन्न है। रहस कहते हैं उनको, जो रास की ही परम्परा का एक रूप है, उसका सारा गाँव रंगमंच होता है। रहस की कुछ पुरानी पोथियाँ मिली हैं। वो छत्तीसगढ़ के सिर्फ एक जिले में होता है, विलासपुर। उसके जो पाठ हैं वह अभी तक प्रकाशित नहीं हुए हैं। वह पिछले 150 वर्षों में लिखे गए हैं। उन परम्पराओं के दस्तावेजीकरण का काम मैंने करवाया है। इसको देखने की जरूरत है। तीजनबाई जब पण्डवानी गाती हैं, तो अपनी चमत्कारी भाषा में आज अभी की घटना बना देती हैं। जिसमें जरासंध से युद्ध करते-करते भीम थक रहा है और जरासंध से कहता है—रुक जा जरा, हम थोड़ी सी चाय पीकर थोड़ी ताकत ले लें। ये क्या है? पूरी पण्डवानी का आख्यान यजमानी प्रथा में गाते हैं। सम्पन्न गौंड परम्पराओं में से आख्यान गाए जाते हैं। एक महाभारत से प्रतिकृत है। एक रामायण से प्रतिकृत है और गौडवानी, गौड राजाओं का यशोगान। वो उनका अपनी तरह का जनजातीय इतिहास है। मैंने उसका भी संकलन किया है। उसके पहले पाठ प्रकाशित किये हैं और समय मिला तो मैं आपको दिखाऊँगा भी और शुक्ल जी के पास वो सारा संग्रह भेजूँगा। आपको जाानकर आश्चर्य होगा

प्रधानों की वह गायकी। एक कम्यूनिटी छोटी सी, जिसको देवार कहते हैं। लोक मण्डल से छत्तीसगढ़ वाले भाग को देवार कहते हैं और देवारों से पहली बार छत्तीसगढ़ी लोक समाज ने पण्डवानी को सुना था। अन्यथा तो वह व्यास के महाभारत को भी जानता था। तो देवार जब गाते थे, तो छत्तीसगढ़ी लोक समाज कहता था, पता नहीं ये कापालिक लोग क्या गा रहे हैं? कापालिक उन्होंने नाम देना शुरू किया। कपाल या मस्तिष्क से बहुत सारी काल्पनिक घटनाओं को मूल कथाओं में जोड़कर विकृत करके गाने वाले लोग। कापालिक पण्डवानी, कापालिक महाभारत कहना शुरू किया। अब जब उसको छत्तीसगढ़ी लोक समाज ने सुना, तो वहाँ एक लोक कवि थे—उनका नाम था सबलसिंह चौहान। उन्होंने दोहा-चौपाई में व्यास के महाभारत को पूरा लिखा और उसको छत्तीसगढ़ी लोक समाज ने गाना शुरू किया। वह जो धारा थी, उसको कहा गया वेदमती। वह जो वेदमती शाखा की पण्डवानी है और तीजनबाई आदि जो पण्डवानी गा रही हैं, वह कापालिक शाखा की पण्डवानी है। कपोल कल्पना।

भारतीय लोक संस्कृति की इन समस्त विधाओं और कलाओं पर आज सर्वेक्षण और उनका अध्ययन करने की आवश्यकता है।

●●

अध्यक्षीय वक्तव्य

❀ डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित

इस संगोष्ठी के उद्‌घाटन सत्र में तीन बड़े व्याख्यान हमने सुने। तिवारी जी ने लोक संस्कृति और कृष्ण तत्त्व की व्यापक व्याख्या की। शुक्ल जी ने उसका और परिविस्तार किया। अब उसमें संशोधन, परिवर्तन की न कोई आवश्यकता है और न मुझमें ऐसी क्षमता है। केवल कुछ महत्वपूर्ण बातों को रेखांकित करने का ही समय हमारे पास है। जब हमारे विशेषज्ञ-विद्वान् इस पर विस्तार से अपने-अपने आलेख या वक्तव्य प्रस्तुत करेंगे, तब उस समय विस्तृत परिचर्चा होगी। तिवारी जी ने बहुत सही कहा कि लोक वार्ता शब्द और 'लोक' शब्द का हमने अनर्थ कर डाला है। दरअसल हिन्दी भाषा में लोक के पाँच अर्थ हैं। एक वह लोक, जिसको मर्त्य लोक कहते हैं, जो परलोक से परे भू लोक है, यानी विश्व प्रपंच। दर्शन में लोक का और लोक जीवन का यही अर्थ लिया जाता है। दूसरा लोक शब्द है, जिसको वेद और शास्त्र से भिन्न माना जाता है। लोकमत एवं वेदमत एक दूसरे के विलोम शब्द हैं, जो लिखित है, जो शास्त्र-सम्मत हैं, जो परम्परानुमोदित हैं, वह सब वेद हैं, शास्त्र हैं और जो मौखिक परम्परा में हैं जिसको वाचिक परम्परा कहा गया, वही वास्तविक लोक है। तीसरे आज के प्रचलित अर्थ में, लोक समूह का पर्यायवाची है, गण का पर्यायवाची है। जिसको पब्लिक कहते हैं, जिसे जनता कहते हैं, उसी के आधार पर लोकतंत्र और गणतंत्र शब्द बने हैं। यानि लोक व्यष्टि नहीं है, समष्टि है। वह समूह का सूचक है। चौथे लोक शब्द को जनमत के अर्थ में या एक सामूहिक चेतना

के अर्थ में लिया जाता है और पाँचवें हम उसको 'फोक' के अर्थ में लेते हैं। लोक एक ऐसा वर्ग होता है जो प्राय: अशिक्षित, पिछड़ा हुआ यानी गँवार माना जाता है। यह लोक अभिप्रायों तथा मिथकों के आधार पर अपनी अवधारणाएँ बनाता है। इस फोक को अंग्रेजी में आदिम के रूप में लिया गया। उसका अनुकरण करते हुए हिन्दी में भी यह अनर्थ किया गया। साहित्य का विभाजन करते हुए शिष्ट साहित्य और लोक साहित्य जैसे नाम गढ़े गए गोया कि लोक साहित्य अशिष्ट साहित्य है। इसलिए शिष्ट और अशिष्ट या लोक और नागर साहित्य के नामकरण पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है।

हमारे भारतीय लोक साहित्य में कृष्ण तत्त्व तो निश्चिय ही गम्भीर गवेषणा का विषय है। भारत में कुल मिलाकर डेढ़ हजार के आस-पास भाषाओं की गणना की गई है। यहाँ बहुत सारी जनपदीय भाषाएँ और बोलियाँ हैं। इन सबमें कृष्ण तत्त्व का फैलाव कहाँ किस रूप में है, यह बहुत बड़े सर्वेक्षण का विषय है। गहन अध्ययन और अनुसंधान का विषय है। पूर्वानुमान के आधार पर कहा जा सकता है कि पूरे भारतीय साहित्य में राम और कृष्ण की इतनी अन्तर्व्याप्ति है कि शायद ही कहीं कोई भाषा-साहित्य, कोई कृति, कोई प्रवृत्ति, कोई कवि और और उसकी कहीं कोई रचना रामकृष्ण से अलग हो। बस स्थान भेद है। देशकाल के अन्तर्गत उसमें अन्तर आता रहा है। घटनाओं में कुछ अन्तर आ गया है। लेकिन कृष्ण-राम तत्त्व की व्याप्ति पूरे भारत में है। इनसे भिन्न हिन्दी साहित्य की और कोई कल्पना ही नहीं की जा सकती।

लोक साहित्य के जो विभिन्न रूप हैं, उनको मोटे तौर पर हम पाँच-छह भागों में रखते हैं। इनमें एक है, संस्कार गीत। लोक गीतों के अन्तर्गत सबसे महत्वपूर्ण विधा है संस्कार गीत। हमारे यहाँ सोलह संस्कार प्रचलित हैं। आज सबके सब लोक जीवन में प्राप्त नहीं होते।

लेकिन मुख्य रूप से जन्मोत्सव, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, यज्ञोपवीत, विवाह, वानप्रस्थ आश्रम, संन्यास और अत्येष्टि तक का विधान है। इन संस्कारों में भी मतभेद है लेकिन मोटे तौर से पाँच संस्कार पूरे भारतीय जीवन में किसी न किसी रूप में सम्पन्न होते रहते हैं। इन संस्कार गीतों में विशेष रूप से जन्म और विवाह से सम्बन्धित संस्कार गीत ज्यादा गाये जाते हैं; जैसे—सोहर, सरिया, बन्ना आदि। उनमें प्रायः हर भाषा में राम, कृष्ण जन्म की कथा आयी है। अवध मँ बाजें सहनइया, नन्द के दरवाजे बधइयाँ, दशरथ के पूत भयौ, नन्द के घर लाल भयौ; इसकी व्याप्ति अवधी, ब्रज, राजस्थानी, भोजपुरी, बुन्देली सर्वत्र मिलेगी। उत्तर भारत की जितनी भाषाएँ हैं, प्रायः सबमें जन्मोत्सव राम, कृष्ण के बहाने इसी रूप में मनाया जाता है। कर्णवेध और चूड़ा कर्म में भी इनकी व्याप्ति है। लेकिन विशेष रूप से प्रश्रय दिया गया है, विवाह सम्बन्धी गीतों को। विवाह की अलग-अलग प्रथाएँ हैं, वे इन गीतों में गुँथी हुई हैं। अन्तर केवल इतना है कि कृष्ण कथा के साथ रुक्मिणी विवाह का वर्णन जैसा शुक्ल जी ने कहा, गुजरात के सौराष्ट्र विशेषतः द्वारका क्षेत्र में प्राप्त होता है, उत्तर भारत में नहीं प्राप्त होता। यहाँ मुख्य रूप से राधा-कृष्ण के ही प्रणय प्रसंग प्रचलित हैं, हालाँकि बाद में अष्टछापी कवियों ने स्वकीया रूप में राधा की कल्पना की, परन्तु लोक ने मूल रूप से उसको परकीया प्रेम का ही प्रतीक माना। यहाँ कृष्ण को आनन्द रूप माना जाता है और गीतों में उसी रूप का उल्लेख किया जाता है। अवधी बारहमासा में बारह महीनों का विवरण होता है, विशेष रूप से—चौमासा के पावस प्रसंग में तथा वसंत में कृष्ण का स्मरण करते हुए सावन, झूला, होरी, फगुआ आदि से सम्बन्धित बहुत सारे गीत गाए जाते हैं। बसन्त ऋतु के साथ जुड़ा हुआ है होलिकोत्सव या होली का पर्व। होरी में नाचते, रंग खेलते हुए फाग नामक जो लोक गीत

गाये जाते है, उनके बहुत सारे प्रतिरूप यानी विभिन्न नामधारी गीत हैं, जिनमें कृष्ण की कथा भरी हुई है। होली में राधा-कृष्ण की प्रेम लीला की भरमार है। उल्लास, उमंग, आह्लाद इन गीतों के भीतर समाहित है। इसलिए चाहे अवधी में गाये जाने वाले होली गीत हों, या चाहे बुन्देली में गाये जाने वाले फगुवा गीत हों, सब मूल रूप से कृष्ण कथा के साथ जुड़े हुए हैं। फाग गीतों में केवल ऋतु सम्बन्धी कथानक ही नहीं हैं। इसमें तमाम आख्यान हैं, कई ऐतिहासिक घटनाएँ हैं और जन-जीवन की जन संस्कृति की बहुत सारी प्रतिच्छवियाँ हैं। इसके अतिरिक्त पावस में जो गीत गाये जाते हैं, उनमें आल्हा तो आख्यान यानी लोकगाथा रूप में गाया जाता है। ब्रज में भी आल्हा की गायकी काफी प्रसिद्ध है। अवधी और बुन्देलखण्डी का तो खैर वह गौरव गान ही है। इनमें उसके भिन्न-भिन्न रूप दिखाई देते हैं। कहीं-कहीं इसे गायकी शैली यानी छंद रूप में कृष्ण कथा से भी जोड़ा जाता है। इसके अतिरिक्त झूला गीत भी भिन्न-भिन्न रूपों में गाये जाते हैं। उनमें संयोग-वियोग दोनों के मिले-जुले रूप प्राप्त होते हैं।

तीसरे तरह के गीत हैं, जिनको हम जातीय गीत कहते हैं। ये अलग-अलग क्षेत्रों, जातियों और वर्गों में पाये जाते हैं। जैसे कहार लोग जो गाते हैं, उसको कहरवा कहते हैं। धोबी जो गाते हैं, उसको धोबिया कहते हैं। अहीर जो गाते हैं वह बिरहा कहलाता है। इन गीतों में विरह की बहुव्याप्ति है। अन्य गीतों में कहीं भगत है, कहीं निर्गुण है, कहीं पसिया है, कही चमरा है। अलग-अलग जातियों में प्रचलित जो लोक गीत है, उनमें राम और कृष्ण की कथा के अनेक आख्यान और विवरण प्राप्त होते हैं। इनके गहन सर्वेक्षण की आवश्यकता है। पाँचवीं तरह के लोक गीत है, जिनको हम धार्मिक गीत कहते हैं। कीर्तन, लचारी उसके प्रभेद हैं। उसी से पद और भजन वाली परम्परा

चली है। हर भाषा में धार्मिक लोक गीतों की सुदीर्घ परम्परा है। कृष्ण भक्ति की तन्मयता हमें गौड़ीय समाज से प्राप्त हुई है। चैतन्य सम्प्रदाय का दर्शन कृष्ण भक्ति के बहाने हमारे लोक गीतों में व्याप्त हो गया है। इनमें बराबर अलग-अलग तरह के कीर्तन गाए जाते हैं। छठे तरह के लोक गीत हैं, जिनको श्रम गीत कहा जाता है। खेतों में काम करते हुए किसान और मजदूर अपना समय बिताने के लिए और श्रम परिहार के लिए इन गीतों का गायन करते हैं। इनमें जब हम अपने को केन्द्रित कर देते हैं, तो हमारी एकाग्रता बढ़ जाती है और उससे हमारी काफी मेहनत बच जाती है, इसलिए चाहे रोपनी कर रहे हों, सोहनी कर रहे हों, खेत जोत रहे हों, फसल काट रहे हों या खलिहान का कार्य कर रहे हों, विभिन्न प्रकार के कृषि कर्म करते हुए लोग कोई न कोई गीत गाते हैं। इनमें कृष्ण कथा के विभिन्न प्रसंग प्राप्त होते हैं। विशेष रूप से चक्की पीसती हुई स्त्रियाँ जतसार के गीत गाती हैं, धान कूटती स्त्रियाँ सुदामा और कृष्ण के मिलन की कथा को बहुत विस्तार के साथ, बड़ी तन्मयता के साथ प्रस्तुत करती है। इनके भी संकलन एवं सर्वेक्षण की आवश्यकता है। इसी तरह सूक्तियाँ, दृष्टान्त, सुभाषित तथा लोकोक्तियाँ भी लोक गीतों के अन्तर्गत आती हैं। इनमें कुछ विशेष प्रकार के गीत मिलते हैं, जिनमें ऐतिहासिक संदर्भ और प्राचीन घटनाएँ निहित हैं। अर्थात् सांस्कृतिक इतिहास के बहुत सारे विवरण इनमें समाविष्ट हैं। इस तरह के लोक गीतों को हम कई वर्गों में विभाजित कर सकते हैं और देख सकते हैं कि कृष्ण के जीवन की कौन-कौन सी घटनाएँ इनके भीतर चित्रित हैं।

लोक में मोटे तौर पर कृष्ण को रसिक या नटनागर के रूप में स्वीकार किया गया है। प्रथमत: वे छलिया हैं फिर वे बाल लीलाएँ करते हैं, माखन चोरी करते हैं, चीरहरण करते हैं, गोपियों के साथ रास रचाते हैं। यहाँ महाभारत के कृष्ण नहीं आये हैं, योगेश्वर कृष्ण

नहीं आये हैं। यहाँ राज राजेश्वर कृष्ण भी नहीं आये हैं। द्वारकाधीश का जीवन मात्र गुजराती लोक भाषाओं में चित्रित हुआ है। उत्तर भारत में उनका रसिकेश्वर वाला रूप ही प्रमुख है। वहीं से ब्रह्मत्व का पुट प्राप्त होता है। दूसरी तरह की विधा है इसको लोक कथा कहते हैं। लोक कथा के बहुत सारे रूप हैं। मुख्य हैं व्रत कथाएँ, जहाँ कहीं कृष्ण का सम्बन्ध है, जैसे गोवर्धन लीला। दीपावली के बाद जब गोवर्धन पूजा होती है, जब अन्नकूट मनाया जाता है, उसमें जो कथाएँ कही जाती हैं, वे सब कृष्ण के चरित्र से जुड़ी हुई हैं। दूसरी कथाएँ—जिनको हम मनोरंजक कथाएँ कहते हैं, जिनको नीति परक कथाएँ या प्रबोध परक आख्यानक कहते हैं, उनमें भी बीच-बीच में इस प्रकार के वृत्तान्त प्राप्त होते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि इसी का परिविस्तार है प्रेम सागर, विश्राम सागर इत्यादि। लल्लूलाल जी यहीं की देन है। गुजरात के पूर्व निवासी रहे हैं लेकिन ब्रज क्षेत्र से प्रेरित होकर ब्रज भाषा तथा खड़ी बोली गद्य का पहला प्रौढ़ प्रयोग उन्होंने किया। दरअसल सबसे पहले लोक का उद्‌गम होता है और उसी से शास्त्र और साहित्य बनता है। अस्तु, चाहे सूरदास के पद हों या अष्टछाप के दूसरे कवियों के पद हों, उन सबका मूल कहीं न कहीं लोक में है। उसी लोक धारा को साहित्यकारों ने काव्य में परिणत किया है।

तीसरी विधा है, जिसको लोक गाथा कहा जाता है। यह आख्यानक काव्य के रूप में चलती है। कथा गद्य में कही जाती है और गाथा पद्य में होती है। इसमें कई कृष्ण कथाएँ हैं जैसे सुदामा मिलन की कथा या तमाम दैत्यों की वध कथाएँ। उनको खोज निकालने की आवश्यकता है। एक अन्य महत्वपूर्ण लोक विधा है, लोक-नाट्‌य। उस क्षेत्र में ब्रज भूमि बहुत धनी है। यहाँ की विशेष देन है रास लीला। रसिया भी अत्यन्त लोकप्रिय है। इसी प्रकार

छत्तीसगढ़ की पाण्डवानी, गोण्डवानी इत्यादि बहुत सारी विधाएँ हैं। खोजने से न जाने इसके कितने नाट्य रूपान्तर अलग-अलग भाषाओं बोलियों में मिल जायेंगे। इसका जो अपना विधान है, वह सचमुच एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। इन्हें राष्ट्रीय सांस्कृतिक उपलब्धि कहा जा सकता है। इन लोक-नाट्यों में कृष्ण कथा विस्तारपूर्वक आयी है, जैसे— नौटंकी में कृष्ण की बहुत सारी कथाएँ हैं। इसी प्रकार बहुरूपिया में, और तुर्राकलंगी में कृष्ण के सन्दर्भ उनके विभिन्न चारित्रिक विवरण किसी न किसी रूप में प्रकट हुए हैं। लोक संस्कृति का जो क्षेत्र है उसमें संगीत है, चित्रकला है, मूर्तिकला है, स्थापत्य है और नृत्य है। इस क्षेत्र में ब्रज की अपनी उपलब्धियाँ उल्लेखनीय हैं, विशेष रूप ब्रज में जो चरकुला नामक नृत्य चलता है, वह कृष्ण पर आधारित है। संगीत में जो भिन्न-भिन्न प्रकार के राग-रागिनियाँ बनी हैं, अलग-अलग कई घराने विशेष रूप से लोक संगीत, लोक वाद्य के जो रूप दिखाई देते हैं, अर्थात् हवेली संगीत से लेकर भिन्न-भिन्न प्रकार के शास्त्रीय और लोक गीत विकसित हुए हैं उन सबको जानने की आवश्यकता है। कलाओं में साँझी कला को जो महत्त्व है, उसे जानने की आवश्यकता है और इसी तरह अलग-अलग जो उत्सव समारोह मनाये जाते हैं, जैसे फूल डोल का जो उत्सव होता है, जिसको फूल बँगला कहते हैं, इन सारे रूपों को, संस्कृति के इन भिन्न-भिन्न प्रयोगों को भी सँवारने की आवश्यकता है। भारत की विभिन्न बोलियों में इनके जो सन्दर्भ आये हुए हैं, उन सबको एकत्र करने की भी महती आवश्यकता है। वास्तव में कृष्ण के विविध रूपों को लोक साहित्य की इन विधाओं में जितना जिस परिमाण में देखा जा सकता है, उतना लिखित साहित्य में नहीं।

●●

भारतीय लोक चिंतन में श्रीकृष्ण

❀ प्रो० त्रिभुवननाथ शुक्ल

श्रीकृष्ण लोकभाषा, साहित्य, कला एवं संस्कृति की नाभि हैं। यहीं से समस्त लोक विधाओं का सृजन भी होता है और विसर्जन भी। जब मैं यह कह रहा हूँ तो इसके मूल में कृष्ण शब्द की वह व्युत्पत्ति है, जो इसका समर्थन करती है—'प्रलय काले सर्वान् स्वकुक्षे कर्षति इति कृष्णः।' प्रलय काल में जो सब कुछ अपने कुक्षि (नाभि) में खींच लेता है, लयस्थित कर लेता है, वह कृष्ण है। इसीलिए वहीं से सृजन भी है और विसर्जन भी। 'लोक' मूल है 'वेद' का न कि 'वेद' मूल है 'लोक' का। 'लोक' इसलिए वेद का मूल है कि कोई चीज एकदम से आभिजात्य नहीं हो जाती। प्रमाण देना चाहूँगा कि गोस्वामीजी ने जहाँ-जहाँ वेद का प्रयोग किया है, उसके पहले लोक है। पूरे मानस में एक जगह नहीं, सब जगह लोक पहले है। लोक से रस ग्रहण करके ही वेद हैं, किन्तु जब रस ग्रहीता, रस ग्रहण कर लेता है, तो वह इतना प्रतिष्ठित हो जाता है कि मूल अदृश्य हो जाता है और उससे बनता है एक 'महाराग'। यही महाराग लोक साहित्य है, लोक वार्ता है। नाम में बहुत कुछ रखा है और कुछ भी नहीं रखा है, परन्तु जो कुछ लोक में है, वह सम्पूर्ण भारत के सभी प्रान्तों में, सभी क्षेत्रीय भाषाओं और लोक भाषाओं में एक ही तत्त्व विद्यमान है और कृष्ण के उन्हीं विविध स्वरूपों का वर्णन चाहे मैथिली में हो, चाहे मगही में हो, चाहे तेलुगू में हो, चाहे तमिल में हो, चाहे बुंदेली में हो, चाहे अवधी में हो, समाया हुआ है। यह लोक अनुभव की आँख से आता है और यह अनुभव की आँख से आया

ुआ लोक विवेक की आँख से ही पढ़ा जा सकता है। इसीलिए आज लोक साहित्य में जब कृष्ण को खोजने चलते हैं, तो वास्तव में कृष्ण को खोजना लोक वार्ता में भारत का बचपन खोजना है, भारत का यौवन खोजना है। भारत की वृद्धावस्था और सिद्धावस्था को खोजना है; क्योंकि यदि बचपन शुद्ध होगा, तो यौवन प्रबुद्ध होगा और बुढ़ापा सिद्ध होगा। यह शुद्धता, यह प्रबुद्धता और यह सिद्धता लोक साहित्य में श्रीकृष्ण के स्वरूप में जानी और पहचानी जा सकती है और इसकी एक लम्बी परम्परा है। जब लोक से वेद में बात जाती है, उलटकर, तो उसका प्रमाण हमें धर्मशास्त्र में भी मिलता है कि—पष्ठेऽहनि कर्त्तव्या गृहात् निष्क्रमणो शिशुः। छठवें दिन सोअर से अर्थात् जब बच्चा पैदा होता है तब छठवें दिन शिशु को निकालना चाहिए। ठीक यही छठवें दिन की बात सभी भाषाओं के लोकगीतों में देखी जाती है। दूसरी संख्या नहीं है। कहीं सातवें दिन हो या कहीं आठवें दिन हो, ऐसा नहीं है। यह वह तत्त्व है जो सभी लोक भाषाओं में एक-सा दिखाई पड़ता है। कृष्ण की यही आख्या वैदिक साहित्य में भी मिलती है, जिसमें कृष्ण का उल्लेख है इन्द्र के विरोधी के रूप में। ब्राह्मण और उपनिषदों में संदीपन ऋषि के आश्रम में कृष्ण मिलते हैं, तो ब्राह्मण और उपनिषदों में भी श्रीकृष्ण की चर्चा है। उषा अनिरुद्ध के पिता के रूप में भी श्रीकृष्ण का उल्लेख मिलता है। कृष्ण लोक कथाओं के नायक के रूप में दिखाई पड़ते हैं और एक रूप महाभारत के कृष्ण का भी है। वहाँ द्वारका से भारत की राजनीति के कुशल संचालक के रूप में वे दिखाई पड़ते हैं। वैष्णव या लोक भाषा के रूप में श्रीकृष्ण का अवतरण हमें दिखाई देता है। जहाँ वे युद्ध वीर, शिक्षा जिज्ञासु और रक्षक के रूप में, कुशल राजनीतिज्ञ के रूप में दिखाई पड़ते हैं और इस सबका वर्णन हमारे लोक साहित्य में यथास्थान उपस्थित मिलता है। वैष्णव कृष्ण के रूप में वे विष्णु

के अवतार माने गए हैं। वहाँ पाँच रूपों से उनका सम्बन्ध है, जैसे—वैष्णव क्रान्ति के रूप में। वैष्णव क्रान्ति का प्रारम्भ श्रीकृष्ण से होता है और यही शांकर वेदान्त में मायावादी पक्ष के विरोधी के रूप में वे हमें दिखाई देते हैं। कृष्ण वैष्णव क्रान्ति में शांकर वेदान्त की अद्वैतता को स्वीकार किया है। पर उसकी व्याख्या अपने ढंग से की है। इस क्रम में कृष्ण को बहुत महत्व मिला है। कृष्ण इस प्रकार ब्रह्म के रूप में हैं फिर भी वे हमारे जनमानस के बहुत निकट दिखाई पड़ते हैं। यही कारण है कि श्रीकृष्ण की जो लीलाएँ हैं वे आज भी विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में गाई जाती हैं, पढ़ी जाती हैं और वाचिक परम्परा के साहित्य के रूप में उनका आज सम्पादन भी हो रहा है। जैसे कि द्वारका लीला। ये तीनों लीलाएँ विशेष संदर्भ में हैं और इन तीनों लीलाओं की चर्चा आप कहीं भी देख सकते हैं। कंस वध और श्रीकृष्ण का पलायन। इसके और दो भेद हैं बाल लीला और किशोर लीला। बाल लीला का वर्णन हमारे मध्यकालीन साहित्य में भी है। द्वारका लीला के दो तीन पक्षों की चर्चा लोक साहित्य में हमें मिलती है। राजनीतिक पक्ष, विवाह आदि का पक्ष, संतति रक्षा का पक्ष और एक मृत्यु का पक्ष। कुल मिलाकर श्रीकृष्ण महानायक हैं, महाराग हैं और साहित्य तथा संस्कृति की प्रत्येक विधाओं में इसी कारण श्रीकृष्ण के न जाने कितने पक्ष उद्घाटित होते हैं। यह सत्य है कि भारत का सम्पूर्ण लोक साहित्य श्रीकृष्ण के चरित्र और उनकी चर्यायों से अनुप्राणित है। यहाँ सभी भारतीय भाषाओं से एक-एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा।

1. **ब्रजभाषा में श्रीकृष्ण—**

ब्रज में कार्तिक गीत है—

कैसे ब्याहूँ राधे कन्हैया तेरौ कारौ।
घर-घर की वह गऊ चरावै, ओढ़ै कम्बल कारौ।

छीन झपट दधि खात बिरज में,
कैसे चलैगौ राधे कौ गुजारौ।

2. बुंदेली में श्रीकृष्ण—

इस भावभूमि का एक गीत बुंदेली में मिलता है—

नेक पठै दो गिरधारी जू को मैया।
जे गिरधारी मोरे हिरदे बसत हैं
सो उनई के हात लगे मोरी गैया।
इतनी सुनि के जसोदा मुसकायी
जाओ-जाओ लाल लगा आयो गैया।

3. गुरुमुखी लिपि में श्रीकृष्ण—

रासमण्डल का एक अपूर्व उदाहरण है—

रीझ रही ब्रज की सभ भामन गऊ मुरली नंदलाल बजाई।
रीझ रहे वन के खग औ मृग रीझ रहे धुनजा सुन पाई॥
चित्त की होइ गई प्रितमा सभ स्याम की ओर रहीं लिवलाई।
नीरब है नहीं कान्ह-त्रिया सुन कै तहि मौन रह्यौ उरझाई॥

4. अवधी में श्रीकृष्ण—

पं० द्वारका प्रसाद मिश्र के कृष्णायन का एक उदाहरण है—

गाम गामतें गोप, अरु गोपिन्ह कर वृन्द बहु।
आवत उर बड़ चोप, लाल गीत गावत मधुर॥
नंदराय को बदन सुहाये। शोभा सिंधु सदृश मन भाये॥
जनु सावन सरिता उमगाई। धाय मिलन किहं थलन रुकाई॥
तरुण वृद्ध अरु बालक वृंदा। आये नंद सदन सानंदा॥
बाजन धुनी अपर धुनि गाना। जन नम की रच गाज सुहाना॥
केसर सों निज अजिर लिपायो। पुन तहं मोतिन चौक पुरायौ॥
मणि चौकी बैठायो काना। या छवि को मेरिउर ध्याना॥

5. **बघेली में श्रीकृष्ण—**

कजरी गीत का एक उदाहरण है—

हम खेलन जइवे हो सावन में कजरिया बदरिया घेरि आई।
उमड़ घुमड़ घन गरजन लागे शीतल चलत वयरिआ
पापी पपीहा पी पी बोलत विरह की लागे डरिया
बदरिया घेरि आई।
श्याम हमारे मथुरा में छाये सावन माँ सूनी सेजरिया
सेवक कहत विरहनी बिलखत ताकै पिया की डगरिया
बदरिया घेरि आई।

6. **मैथिली में श्रीकृष्ण—**

विद्यापति का एक संदर्भ है। इसमें स्वगुण गर्विता नागरी के मुँह से वे कृष्ण को गाली सुनवाते हैं—

गाए चराबह गोकुल वास।
गोपक संगे जन्हिक परिहास॥
अपनहु गोप गरुअ की काज।
गुपुतें बोलसि मोहि बड़ि लाज॥
दूती बोलसि कान्हु सओ केलि।
गोपवधू सओ जन्हिका मेलि॥
गामहिं बसलें बोलिअ गमार।
नगरहुँ नागर बोलिअ संसार॥
वसधि वथान झाड़ि दुह गाए।
तन्हि की विलसव नागरि पाए॥
आदि अंत दुहु देलक गारि।
विद्यापति भन बुझथि मुरारि॥

7. **भोजपुरी में श्रीकृष्ण—**

एक भोजपुरी गीत में कृष्ण को निरमोही बताते हुए एक गोपी

कहती है—

गोखुला में कइल गोखुलइया तू कन्हैया
मथुरा में कइल ठकुराई,
कूबरी के लेके छावेल मधुबनवां,
धिकर के दिहल बिसराई॥

8. राजस्थानी में श्रीकृष्ण—

राजस्थानी लोक गीतों में श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह प्रसंग का बड़ा मनोहारी वर्णन मिलता है—

कुनणपुर भीषम सुता रुखमणरूप अनुप हो।
कवण लग्न ते व्याह को, लग्न देखायो राय हो।
रिषि भाखें दूसण घणा, इहां उपद्रव थाय हो।
हमनीप्रेही दर्शनी, नहीं ग्रही चिंता ठाम हो।
प्रीतमणी तुमसु कहाँ, हुसीयारी को ठांम हो।
एम कही रिष पांगुरया, रंग मांही करी भंग हो।

9. असमिया में श्रीकृष्ण—

असमिया का एक प्रसंग बहुत ही चित्ताकर्षक है, इसमें ग्वालिनियों के आनंद का वर्णन है—

देखो सखी ऐ चन निदारुण कान।
पयोधर-अधर दशन नख हान॥
खसाइल केश पाश टुटाइल हार।
फोरावल कंचुक कुचक हामार॥
कयल आलिंगन धन धन बाहु।
जैसे चाँदक गरसि रहे राहु॥

10. उड़िया में श्रीकृष्ण—

उड़िया में चंद्रावलि कृष्ण का एक प्रसंग बहुत प्रेरक है—
तुम्भेमाने संगे-संगे थिब येबे किछि ना चेष्टा देखिव

तांकु कुवाणी येतेपार बेलिब मो आगे आसि कहिब
मात्र चन्द्रावली परिहास पात्र गो
गोबर्धन तार येणु तार भ्रात गो
हेजिथिब अन्य रीति सूत्र गो।

11. कन्नड़ में श्रीकृष्ण—

कन्नड़ में श्रीकृष्ण की श्रेष्ठता को आकंठ स्वीकार किया गया है—

जगत सत्य है, पंच भेद नित्य हैं,
गोविंद के कार्य जानकर तारतम्य के आधार पर
कृष्ण को ही सबसे श्रेष्ठ घोषित करो।
जीव और ईश्वर में सर्वत्र भेद हैं,
जीव-जीव में, जीव जड़ में, जड़-जड़ में
और जड़ और ब्रह्म में अंतर है।

12. गुजराती में श्रीकृष्ण—

गुजराती में श्रीकृष्ण अंधे की लाठी जैसे हैं—
मे तमने क्या रे कह्यं छे जे चारवा जाओ गाय जी।
रमवानी खांते जाता, घणुअे वारती माय।
प्राण जीवन तुं छे माहरो, शुं कहुं बारम्बार जी।
अंधाने ज्यम लाकड़ी त्यम, तुं मुज प्राण आधार।
जो तमो आवी नहि तो, अमो जाशुं काशी जी।
गौ गृह सर्व परहरी, थइ रहेशुं संन्यासी।

13. तेलुगु में श्रीकृष्ण—

तेलुगु में श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं का मनोहारी चित्रण मिलता है—

पोलुपारगा बोरगिलि पान्पु नाल्गु मू
ललकुनु वच्चुचु मेलगि मेलगि

ललि कपोलंबुलु गिलिगिंतलु पुच्चि
नव्विंप गलकल नव्वि नव्वि
मुद्दुलु दोलुकाड मोकाल गेलनु
दडवुचु नेंदुनु दारितारि
निलुचुंड बेट्टि यंगुलि नूत सूपगा
ब्रीति दप्पडुगुलु पेट्टिपेट्टि
अन्नगटि, दड्रिनिगटि, नय्यगटि
निंदुरावय्य, विंदुलुविंदु, लनुचु
नर्थितनु बिलुवग नडयाडि याडि
युलसिल्ल गृष्णुडु शैशवोत्समुल॥

अर्थात् बड़ी ही मनोज्ञ नीति से आँधे मुँह शैय्या पर चतुर्दिक धीरे-धीरे सरकते, नव पल्लव सदृश कपोलों को गुदगुदाते, हँसाने वाली मधुर मुस्कान भरते, दर्शकों के हृदयों में वात्सल्य छलकाते, घुटनों के बल खड़ा करके सहारा देने के विचार से उंगली दिखाने पर बड़े प्यार से लड़खड़ाते कदम बढ़ाते चले आने वाले बालकृष्ण को पुचकारते उनकी शैशव क्रीड़ाओं को देखते ही बनता है।

14. बंगला में श्रीकृष्ण—

बंगला में पराणदास का एक अत्यन्त आकर्षक पद है—

कातर नयन बयन करि सुन्दरी
बोलत मधुरिम वाणी
कि करि उपाय कहत प्रिय सहचरी
वेदन छेदन जानी।
हिय मह पइठल शेल
अनुखन नीर बहत मझु लोचन
आनले तनु जरि गेल।
गृहपति गुरुजन जोह सखी प्रियतम

ताक वचन नाहि भाय
नयनक निन्द गेयल अति दूर सञं
सवन (श्रवण) शबद-पथे धाय।
किये रव मोहन काहा सञे आयल
प्राण चोरायल मोर
दास पराण कहल धनि सुन्दरी
कहि चित उतरोल..... ॥

[सुंदरी (राधा) अपनी आँखों और मुखड़े को कातर बनाकर मधुर वाणी बोलती है। हे प्रिय सखि! बताओ, मैं क्या उपाय करूँ? मुझे तो शरीर-क्षत की वेदना हो रही है। मेरे हृदय में शल्य (काँटा) घुस पड़ा है, क्षण-क्षण मेरी आँखों में अश्रुधारा बहती रहती है, शरीर तो अग्नि में दग्ध हो गया है। घर के अधिकारी गुरुजन अथवा जो मेरी सबसे प्रिय सखी है, उनकी बातें भी अच्छी नहीं लगती हैं। मेरी आँखों की नींद तो उन्हीं (कृष्ण) के साथ दूर चली गयी है। मेरे कान उन्हीं की (बाँसुरी की) आवाज के रास्ते पर दौड़ पड़ते हैं। यह मोहक ध्वनि क्या है, कहाँ से आयी है जिसने मेरे प्राण चुरा लिये। पराण दास कहते हैं कि हे सुन्दरी। तुम धन्य हो, तुम्हारा चित्त क्यों गिरा हुआ है?]

15. मराठी में श्रीकृष्ण—

मराठी में मोरोपंत की ओजस्वी पंक्तियाँ हैं—

कृष्ण म्हणे, राधेया! भला बरा स्मरसि आजि धर्मातें;
नीच व्यसनीं बुडता निंदिति दैवास, न स्वकर्मातें॥
जेव्हाँ तूँ, दुर्योधन, दु:शासन, शकुनि एकमति झालां
कैसे कपट धर्ती चित्तींति न धर्म लंघितां भ्याला?॥
तेह्वाँ समेसि नेली पांचाली, मानिलें मनीं शर्म
तेह्वां गेला होता कोटें राधासुना! तुझा धर्म?॥

16. मलयालम में श्रीकृष्ण—

मलयालम में गोपियों की यशोदा से शिकायत का एक सुंदर पद है—

अच्छन् महावृद्धनक्कुवेण्टि
क्काच्यडु वेच्चेनिरुनाषि दुग्धम्
कण्णन् तदा वन्नु कुटिच्च शेषं
किण्णत्तिलंभस्सु निरच्चुपोयान्।

(वृद्ध पिताजी के लिए मैंने जो सेरभर दूधर गरम करके रखा था उसे कृष्ण ने पूरा पी लिया और कटोरे में पानी भरके चला गया।)

पूरा भारतीय वाङ्मय श्रीकृष्ण के लीला-विस्तार से अनुप्राणित है। श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व भावोत्पन्न था। यह भावोत्पन्नता दो प्रकार की होती है—एक आत्ममुग्धता की और दूसरी लोक मुग्धता की। पहली स्थिति आत्मवादी, आत्मपोषी और आत्मानुरंजनी होती है और दूसरी सर्वात्मवादी, सर्वात्मपोषणी और सर्वात्मानुरञ्जक होती है। श्रीकृष्ण का भारतीय लोक साहित्य में यही दूसरा रूप हमें प्राप्त होता है।

●●

बंगला लोक साहित्य में श्रीकृष्ण

❀ हरिश्चन्द्र मिश्र

बंगाल के लोक साहित्य में शिशु साहित्य के अन्तर्गत शिशु काव्य 'छड़ा' का विशेष महत्त्व है। ये 'छड़े' लोक-संगीत से भिन्न हैं। लोक संगीत एक विशिष्ट भाव का आधार बनाकर रचित होता है, किन्तु 'छड़ा' में किसी विशिष्ट भाव की खोज नहीं की जा सकती। अधिकांश क्षेत्र में कोई भाव ही इसमें नहीं है, यदि रहता है तो असंलग्न रूप से अभिव्यक्त होता है, छड़ा में कोई कहानी भी नहीं रहती। हाँ मित्र अवश्य होता है लेकिन वह भी स्वयं सम्पूर्ण नहीं। एक ही चित्रपट पर खेयाली शिशु विभिन्न चित्रों की रेखाएँ खींच देता है। अत: अपनी सहजता से वह शिशु की दृष्टि को आकर्षित करता है।

'छड़ा' ही लोक साहित्य का प्राचीनतम रूप है एवं शिशु-साहित्य का प्राचीनतम रूप है। कारण कि शिशु ही परिणत बुद्धि मनुष्य का अग्रज है। युग-युग में देश-देश में शिशु अभिन्न होते हैं। इसीलिए अतीत एवं वर्तमान का 'छड़ा' देश एवं देशान्तर के छड़े एक अखण्ड ऐक्य सूत्र में आबद्ध हैं। जब बच्चा अबोला होता तब माँ या गुरुजन ही उसे 'छड़ा' सुनाते हैं जो वयस्कों की रचना होती है। बाद में स्वयं शिशु ही छड़ा रचना करने लगता है। यह प्राय: खेल के 'छड़ा' हैं। वस्तुत: छड़ा में कविता का सुर एवं ताल होता है। सुर का वैचित्र्य नहीं होता। सहजता ही इनका विशिष्ट गुण है। 'छड़ा' एक सामूहिक रचना है।

शिशु सम्बन्धी छड़ों को रवीन्द्रनाथ ने केवल दो भागों में विभाजित किया है— 1. 'छेले भुलानो छड़ा'-1. छेले भुलानो छड़ा-

2।। यहाँ भुलानो का अर्थ बहलाने या बहकाने के सन्दर्भ से जुड़ा है। आशुतोष भट्‌टाचार्य ने सभी शिशु साहित्य (छड़ा) को अनेक शीर्षकों में रखकर विश्लेषित किया है। जैसे-धुम पाड़ानि (सुलाने वाले), दोलना (पालना), घुम आयरे (नींद आओ रे), 'घुम पारे' (सो जा रे), 'घुम आय' (सोया हुआ), 'वर्गी एल देशे' (लुटेरा मराठा आया देश में), 'छेले भुलानो' (शिशुओं को बहलाना) – इसमें भी 'भोजन', 'रुदन', नृत्य, 'खोका यावे' (बेटा जाएगा), विवाह, 'आय चाँद' (आओ चन्दा), 'धन धन धन', 'नन्द किशोर' (विविध), अब इसके आगे खेला का वर्ग आता है, 'आग्डुम वाग्डुम' (अक्कड़-बक्कड़), इकड़ि-मिकड़ि' (इक्कड़-मिक्कड़), 'हा-डु-डु (कबड्डी की ध्वनि), 'अन्यान्य', प्रश्नोत्तर वाचक, 'विविध'। इसके बाद 'कन्या' के सन्दर्भ से जुड़े छड़ा का प्रसंग आता है- उसमें आता है 'अधिवास' (मायके का रहना), 'तिन कन्या' (तीन कन्याएँ), 'कन्या आन' (कन्या लाओ), 'कन्या दान', 'कन्या-विदाई', 'जोड़ पुतुलेर विये' (दो गुड़ियों का विवाह), 'प्रेम', 'मा वड़ धन' (माँ-बड़ी धन) 'परेर घर' (पराया घर), 'गुणवती', 'मामा वाड़ी याइ' (मामा-घर जाओ) आदि। शिशुओं से सम्बन्धित छड़ों में से यहाँ 'नन्दकिशोर' शीर्षक छड़ा पर ही विचार किया जाएगा।

चैतन्य ने जब गौड़ीय वैष्णव धर्म का प्रचार किया तब से बंगालियों की चिन्तनधारा इसके आदर्श से प्रभावित हुई। अतः बंगाली साहित्य रचना में एक नयी जागृति आयी। अब बंगला साहित्य का पारम्परिक रूप अनेक दिशाओं में परिवर्तित हुआ। इसका प्रभाव बंगला लोक साहित्य पर भी पड़ा। यहाँ यह कहावत ही प्रचलित हो गयी कि इस प्रदेश में 'कानु (कान्हा) के अलावा गीत नहीं। अतः इस प्रदेश का सारा संगीत ही कृष्ण के नाम पर उत्सर्ग है। कारण कि इस प्रदेश में जाति-वर्ण-रहित लौकिक प्रेम-संगीत प्रचलित

रहा। उन सबके नायक-नायिका श्रीकृष्ण एवं श्रीराधिका हैं। सबसे विशिष्ट बात है कि बंगाल के मुसलमान समाज में प्रचलित लौकिक प्रेम संगीत में भी राधा-कृष्ण ही नायक-नायिका रूप में गृहीत हैं।

बंगाल के शिशुओं को बहलाने वाले 'छड़ा' (शिशुगीत) मूलरूप से किसी सम्प्रदाय विशेष से जुड़े नहीं हैं। यही कारण है कि वे अबाध रूप से समाज के हर श्रेणी में प्रचलित हैं, बंगाल के बच्चों को बहलाने वाले 'छड़ों' की यही एक विशेषता सर्वत्र नहीं दिखायी देती। 'छड़ा' में किसी धर्म की बात नहीं है, आचरण पूर्ण जीवन में किसी आंगिक का उल्लेख नहीं है। सम्प्रदायगत किसी वैशिष्ट्य का परिचय नहीं है। इसीलिए साहित्य के हिसाब से इनका एक मूल्य है। रवीन्द्रनाथ ने अपने 'छेले भुलानो छड़ा' (बच्चों को बहलाने वाले शिशुगीत) विषयक निबन्ध में इसका विश्लेषण किया है। यह बात भी सत्य है कि अन्यान्य सभी दिशाओं से आगत साम्प्रदायिक प्रभाव को अस्वीकार करने पर भी बंगाल के कुछ-कुछ 'छड़े' वैष्णव प्रभाव द्वारा प्रभावित हुए हैं। इसका कारण है कि वैष्णव धर्म ने मनुष्य में ही भगवान की उपासना की है। मनुष्य को लेकर ही साहित्य भी सार्थकता पाता है। 'बच्चों को बहलाने वाले गीतों' का प्रधान लक्ष्य शिशु होता है। वैष्णव धर्म ने भगवान की बात कहने पर भी यशोदा के लाल श्रीकृष्ण में भगवत्ता प्राप्त की है। शिशु को अस्वीकार करके वहाँ भगवत् चैतन्य का विकास नहीं हुआ है। 'छड़ा' (शिशु गीत) के शिशु एवं वैष्णवों के बाल-गोपाल की उपलब्धि में कोई अन्तर नहीं है। इसीलिए शिशु श्रीकृष्ण को आधार बनाकर भी जो रचित हुआ है, वह शास्त्र न होकर लोक साहित्य का ही विषय 'छड़ा' (शिशुगीत) है। जिस धर्म चेतना में देवता को मनुष्य में ही प्राप्त किया जाता है—वात्सल्य, शान्त, मधुर, सख्य, दास्य प्रभृति मानवीय धर्म ही जिस धर्म साधना में जगत् की उपलब्धि का सहायक है, उसे

आधार बनाकर जो निर्मित होता है; वह साहित्य ही होता है। इसी आधार पर बंगाल का वैष्णव पदावली बंगाल का अनवद्य गीति-साहित्य है। बंगाल के 'छेले भुलानो छड़ा' (बच्चों को बहलाने वाले गीत) में भी श्रीकृष्ण को आश्रय करके वात्सल्य रस का विकास हुआ है। इसीलिए उसके द्वारा भी बंगला लोक-साहित्य का एक अंग पुष्ट हुआ है।

झूले में जो शिशु मुख छिपाकर मृदु-मृदु झूलता रहता है, जननी उसमें यशोदा के दुलारे के रूप की उपलब्धि करती रहती है—

दोल दोल दोल दोलन हरि,
के देखेछे हरि।
झोलनाते झुलछे आमार ऐ गिरिधारी॥ —बाँकुड़ा
[झूले झूले झूले झुलते हरि,
किसने देखा है हरि।
झूले पर झुलता है हमारा यही गिरधारी॥]

जो शिशु धूल में गिरकर लोट रहा है, उसमें भी जननी नन्दकिशोर श्रीकृष्ण का ही रूप देख पाती है—

धुलाय धूसर नन्द किशोर धुल लेगेछे गाय।
धुला झेड़े नेवे कोले प्राण जुड़ावे ताय॥ —रवीन्द्र संग्रह
[धूल से धूसरित नन्द किशोर धूल लगी है देह में।
धूल झाड़कर लोगे गोद में प्राण शीतल होगा उसमें॥]

शिशु का रंग काला होने पर भी उसमें ही जननी वृन्दावन के काले शशि नवघनश्याम श्रीकृष्ण का रूप देख पायी हैं।

वृन्दावनेर यत रूपसी रूपेर यत आलो,
वृन्दावनेर कालोशशी देखे एलाम भालो।
[वृन्दावन की जितनी रूपवती रूप की जितनी आलोक,
वृन्दावन के काले शशि देख आयी भले।]

बंगला के घर के सभी शिशु ही गोपाल हैं। जननी यशोदा के मातृस्नेह मथित सुधारस सिंचित नाम गोपाल है। इस नाम के भीतर से ही मानो मातृस्नेह का सुधारस मूर्त्त होकर प्रकट होता है। इसीलिए इसी नाम को पुकारते-पुकारते ही अन्तर के छिपे हुए कन्द में मानो एक अतिमानीय आनन्द का सिहरन अनुभव किया गया है—

गोपाल गोपाल गोपाल।
कांगालिनीर दुलाल॥ (कंगाल का रत्न)
तुमि आमार योगरि कोशाकुशि। (योगी-योग)
तुमि आमार श्यामेर हातेर वाँशी॥ —वर्धमान से प्राप्त
(तुम्हीं श्याम के हाथ की बाँसुरी)

स्नेह-पुत्तलिका की किस प्रकार जननी व्याख्या कर सकती है। उसे किसी भी प्रकार समझ नहीं पाती है। शिशु की प्रकृति किसी भी व्याख्या में पकड़ में नहीं आती। केवल इतनी ही नहीं है कि वह मात्र दुर्जेय है, उसके रूप की भी सीमा नहीं है। कृष्ण रूप में भी मानो विद्युत की छटा दिखायी देती है।

कोंउ कोंउ शास्नि पातार तले,
शास्नि पाता उल्टाइ चाइलाम
बिजली हाउक मारे
बिजली घड़के देइखलाम मुख
अति तपस्यार फले,
अति तपस्यार नन्ददुलाल
कने कइते पारे। —चट्टग्राम
[कौन कौन 'शास्नि' पत्ते के नीचे,
'शास्नि' पत्ता उलटकर देखा
बिजली कौंध गयी
बिजली की चमक में देखा मुख

अति तपस्या का फल
अति तपस्या का नन्ददुलाल
कौन कह सकता।]

श्रीकृष्ण ग्वाले के सन्तान हैं, दही-दूध बेचना उनका व्यवसाय है। अतः उन्हें पंसारी के रूप में भी देखा जाता है—

कानाइर माथात लाल पागड़ी,
पाकाइयाछे छिक्का दड़ि।
सकले वेचे दधि दुग्ध,
कानाइये गणे कड़ि॥
कानाइ न याइओ गोपाल पाड़ा
भांगिव तोमार हातेर वाँशी
घिंड़िट तोमार गलार माला॥ —चट्टग्राम

[कन्हाई के माथे पर लाल पगड़ी,
रखा है छींके की डोरी।
सभी बेचते दही-दूध,
कन्हाई गिनता कौड़ी (पैसा)॥
कन्हाई न जाना ग्वालों के मुहल्ले
तोड़ देंगे तुम्हारे हाथ की बाँसुरी
तोड़ देंगे तुम्हारे गले की माला॥]

शिशु का नृत्य जननी के हृदय में असीम आनन्द का उत्स पैदा करता है। शिशु का नृत्य देखकर बंगाली जननी को गोकुल के गौशाला में श्रीकृष्ण के नृत्य की बात याद आ जाती है—

शिव नाचे ब्रह्मा नाचे और नाचे इन्द्र,
गोकुल गोयाला नाचे पाइये गोविन्द।
क्षीर खिरसे क्षीरेर नाडु वर्तमानेर कला,
नुटिये नुटिये खाय यत गोपेर वाला,

नन्देर मन्दिरे गोयाला एल धेये,
तादेर हाते नड़ि, काँधे भाड़ नाचे थेये थेये॥ –रवीन्द्र संग्रह
[शिव नाचे ब्रह्मा नाचे और नाचे इन्द्र,
गोकुल के ग्वाल नाचे पाकर गोविन्द।
दूध का खीर दूध का लड्डू मर्तवान केला,
लूट लूटकर खाते जितने गोप-बाला,
नन्द के मन्दिर में ग्वाला आया दौड़कर,
उसके हाथ में लाठी, कन्धे पर भाण्ड नाचता थई थई॥]
–रवीन्द्र संग्रह

शिशु के जन्म से ही पड़ोसीगण अनुभव करते हैं–
नन्देर दुआरे आज कि आनन्द हइछे,
यशोमती भाग्यवती गोपाल कोले पाइछे।
[नन्द के द्वारे आज क्या आनन्द हुआ है,
यशोदा भाग्यवती गोपाल को गोद में गायी है।]

इस देश की सारी माताएँ ही स्नेहशालिनी यशोदा होती हैं और सभी शिशु ही गोपाल हैं। इसी चेतना के अन्तर्गत मातृस्नेह के प्रति इस जाति ने जैसी देव-मर्यादा दी है, उसी प्रकार शिशु को भी देव-मर्यादा द्वारा ग्रहण किया है। शिशु देवता होता है, इस शिशु की जननी भी देवी है। बंगाल के बच्चों को बहलाने वाले छड़ों द्वारा साधारण बंगाली गृहस्थ भी शिशु एवं जननी के सम्बन्ध में यही विश्वास व्यक्त करते हैं। यह केवल शास्त्र अथवा सामाजिक नीति के रूप में ही देश में अस्तित्ववान नहीं है, वरन् उसके बदले दैनिक जीवन के आचरणीय धर्म के द्वारा भी उसका अनुभव किया गया है।

बच्चों को बहलाने वाले 'छड़ों' (शिशु गीतों) में कृष्ण के साथ राधा का नाम क्वचित् सुना जाता है। इसका कारण है कि जहाँ बाल गोपाल के वात्सल्य का चित्र अंकित हुआ है, वहाँ राधा के नाम

का उल्लेख करने की कोई बात नहीं है। दो एक जगह इसका व्यतिक्रम भी दिखायी देता है। अत: यहाँ राधा को विशेष अर्थ में ग्रहण करना होगा, कान्ता भाव की अधिकारिणी रूप में नहीं—

ओ पारेते कदम गाछटि कदम झुमझुम करे,
तार तलाते राधाकृष्ण सदा इ नृत्य करे।
गोप काँदे गोपिनी काँदे काँदे तरूलता,
सकल लता वले आमार कृष्ण गेल कोथा।
कृष्ण गेल विष्णुपुर ना गेल वलिये,
हेन समये एलेन कृष्ण पाचनि हारिये।
पाचनि हाराये कृष्ण वेड़ान वने वने,
नवीन कुशेर अंकुर फुटिल चरणे।
डाहिन हाते तेलेर वाटि काने कदम्बेर फुल,
राधा गेलेन स्नान करिते कालीदहेर कूल।
कालीदहे गिये राधा खुले दिलेन केश,
केश दाने चेये चेये तनु हलो शेष।
आलि लो भा डाले केवा- कृष्ण केन गाछे
सकल सखी नृत्य करे बलरामेर काछे॥ —नदीया

[उस पार कदम्ब वृक्ष कदम झुम झुम करता,
उसके नीचे राधा कृष्ण सदैव नृत्य करते।
गोप रोते ग्वालिन रोती रोती तरु लता,
सारी लताएँ कहतीं हमारा कृष्ण गया कहाँ।
कृष्ण गये विष्णुपुर नहीं गये बताकर
उसी समय आये कृष्ण लाठी खोकर।
लाठी खोकर कृष्ण घूमते वन-वन में,
नये कुहा का अंकुर धँसा पाँव में।
दाहिने हाथ में तेल की खोरी कान पर कदम्ब का फूल,

राधा गयी स्नान करने कालीदह के कूल।
कालीदह में जाकर राधा खोल दीं केश,
केश खोलते ही देखते-देखते काया हुई क्षीण।
सखि हो मार डालने वाला कौन है- कृष्ण क्यों गा रहे,
सभी सखियाँ नृत्य करती बलराम के पास॥]

उद्धत छड़ा से समझा जाएगा कि यह वर्णन भागवत सम्मत नहीं हैं, अर्थात् वैष्णव धर्म के साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। वात्सल्य रस के आधार पर श्रीकृष्ण की बाल गोपाल के रूप में परिकल्पना करने में भागवत या वैष्णव-धर्म विरोधी कोई भाव नहीं है किन्तु यहाँ जो चित्र प्रस्तुत किया गया है, वह एकदम लौकिक है, तनिक भी पौराणिक नहीं है। इसमें बंगला 'छड़ा' का पूर्णत: अनुकरण हुआ है। यहाँ देखा जाता है कि कृष्ण कदम्ब वृक्ष के नीचे सदैव ही नृत्य करते रहने के साथ ही सहसा किसी को भी कुछ न कहकर विष्णुपुर चले गये एवं वहाँ से जब लौटकर आये, तब देखा गया कि वे हाथ की बाँसुरी खोने के बजाय हाथ की लाठी खोकर आये हैं। इसके बाद इस लाठी के शोक से वन-वन में घूमने लगे। विष्णुपुर में लाठी खोकर पुन: लौटकर वन-वन में क्यों खोजने गये, उसे भी कुछ प्रकट नहीं किया गया है- नवीन कुशांकुर उनके रक्त कमल सदृश पदतल में घुसने लगा। एक तरह श्रीराधिका ने कृष्ण विरह की वेदना को तनिक भी दिखाये बिना दाहिने हाथ में तेल की कटोरी एवं कान में कदम्ब फूल को गूँथकर कालीदह के किनारे जाकर पैर फैलाकर सिर को केश खोल दिये। अन्तिम दृश्य में देखा गया कि कृष्ण एक वृक्ष शाखा पर बैठे थे। साथीगण कृष्ण को खोजने की कोई तत्परता न दिखाकर बलराम के चारों ओर घेरकर सहसा नृत्य आरम्भ कर दिये। इन चित्रों में परस्पर जो असंलग्नता का परिचय मिलता है, वही छड़ा का वैशिष्ट्य है। इन असंलग्न चित्रों के द्वारा इस बात का

अनुभव किया जा सकता है कि इसमें श्रीकृष्ण का जैसा आचरण है वह भागवत सम्मत नहीं है। श्रीराधिका का आचरण भी वैसे ही वैष्णव धर्म अनुमोदित नहीं है। अपितु साधारण नायिका के लक्षण-सम्मत है।

इस 'छड़ा' के एक और रूप की खोज हुई है, उसमें भी देखा गया है कि छड़ा-धर्म की रक्षा करते हुए कृष्ण और राधिका को सम्पूर्ण लौकिक रूप में उपस्थित किया गया है; जैसे—

ठाकुर वाड़ीर फुल गाछटि सदाइ झुर झुर करे।
गोप काँपे गोपिनी काँपे आर काँपे आर काँपे लता
किष्ट आमार एका
किष्ट आमार एका किष्ट आमार बाँका
किष्टर चितखानि ये आकुल व्याकुल,
लोके वले क्ष्यापा॥ —ढाका

[मन्दिर का पुष्प पौधा सदा ही झुर-झुर करता।
गोप रोवें गोपिनी रोवें और रोवें लता।
कृष्ण हमारे अकेले
कृष्ण हमारे बाँके
कृष्ण का मन है आकुल-व्याकुल,
लोग कहते पगला]

यहाँ 'कृष्ण-राधिका' के युग्मभाव से सर्वदा नृत्य करते रहने पर भी कृष्ण क्यों अकेले हैं, उसे किसी प्रकार भी समझा नहीं जा सकता। यहाँ भी कृष्ण को भागवत के बन्धन से मुक्त करके बंगाली लोक-मानस के विस्तृत क्षेत्र में छोड़ दिया गया। बंगाल के बच्चों को बहलाने वाले छड़ों में श्रीकृष्ण इसी प्रकार विराजमान हैं।

भागवत वर्णन में देखा जाता है कि गोष्ठ लीला में सदैव बाल-गोपाल का उल्लास व्यक्त हुआ है। यहाँ तक कि जननी यशोदा

ने शंकित होकर शिशु कृष्ण को उस कार्य से निवृत्त होने के लिए अनुरोध किया है। किन्तु छड़ा में यशोदा ने श्रीकृष्ण को गोष्ठ यात्रा का आदेश किया है। शिशु कृष्ण ने इसे सुनकर रोना आरम्भ कर दिया है। वे किसी प्रकार भी गोष्ठ यात्रा से सहमत नहीं है। यही कारण है कि जहाँ भागवत की कथावस्तु है, वहाँ भी भागवत की कथा नहीं है। भागवत के नाम पर जननी की अपनी बात ही प्रकट हुई है।

के मेरेछे के धरेछे सोनार गतरे।
आधकाठा चाल देव गालेर मितरे॥
के मेरेछे के धरेछे के दियेछे गाल।
तार संगे गोसा करे भात खाओ निकाल॥
के मेरेछे के धरेछे के दियेछे गाल।
तार संगे कोंदल करे आसव आमि काल॥
मारि नाइको धरि नाइको वलि नाइको पूर।
सवे माल वलेछि गोपाल चराओ गे वाघुर॥ —रवीन्द्र संग्रह
[कौन मारा कौन पकड़ा सोना का शरीर
आधा काठा चावल दूँगी गाल भीतर॥
कौन मारा कौन पकड़ा कौन दिया गाली।
उसके साथ गुस्सा करके भात खाया नहीं कल॥
कौन मारा कौन पकड़ कौन दिया गाली।
उसके साथ झगड़ा करके आऊँगा मैं कल॥
मारा नहीं पकड़ा नहीं कहा नहीं दूर।
मात्र सबने कहा गोपाल चराओ हे बछड़ा॥]

गोपाल जननी की सम्पदा हैं। उसे माँ बार-बार कहती है। बंगाल के जिस अंचल में वैष्णव प्रभाव ज्यादा है, उन सभी अंचल के छड़ों में वैष्णव भाव का प्रभाव है। इस प्रकार बंगला शिशु गीतों

में श्रीकृष्ण की उपस्थिति हुई है। उद्धरणों की संख्या बढ़ने से ज्यादा विस्तार होगा। अत: इन उद्धरणों से ही बंगला 'छड़ों' में श्रीकृष्ण की उपस्थिति को दिखाने की चेष्टा की गयी है।

बंगला ग्राम्य गीत एवं कृष्णा-कथा—

रवीन्द्रनाथ ने लोक साहित्य पर विशेष अध्ययन प्रौढ़ावस्था में आरम्भ किया। शिशु साहित्य पर उनका विवेचन बड़ा ही प्रायोगिक एवं चिन्तनपरक है। कहते हैं कि शिशु साहित्य का विश्लेषण वयस्क व्यक्ति ही कर सकता है। यही कारण है कि रवीन्द्रनाथ ने लोक-साहित्य एवं शिशु-साहित्य पर अपनी अन्तिम अवस्था में अध्ययन आरम्भ किया। लोक में प्रचलित ग्राम्य गीतों पर अपना आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया। अपनी 'लोक-साहित्य' पुस्तक में उन्होंने ग्राम्य साहित्य के विश्लेषण के पूर्व कुछ सैद्धान्तिक प्रस्तुति दी है।

ग्राम्य साहित्य की चर्चा का आरम्भ वे कथात्मक ढंग से करते हैं। कहते हैं- एक दिन सावन महीने के अन्त में नौका द्वारा पावना-राजशाही में भ्रमण करने गया था। मैदान घाट सब जल में डूबा था। छोटे-छोटे गाँव जलचर जीव की तरह तैरते हुए किनारे के पुंज की तरह बीच-बीच में दिखायी दे रहे थे। किनारों की सीमा दिखायी नहीं दे रही थी। केवल जल छल-छल कर रहा था। इसी बीच जब सूर्यास्त होने वाला है उसी समय दिखायी दिया कि प्राय: दस-बारह लोग डोंगी खेते हुए आ रहे हैं। वे सब उच्च स्वर से एक गान कर रहे हैं एवं दौड़ की जगह एक-एक बाँस दोनों हाथों में लेकर गान के ताल पर झोंक-झोंक से छप्-छप् की आवाज करते जल को ठेलते हुए द्रुत वेग से चलते आ रहे हैं। गाने की बात को सुनने के लिए कान लगाया। अन्त में बारम्बार आवृत्ति सुनकर जो पंक्तियाँ उद्धार किया वे यही हैं—

युवती, क्यान् वा कर मन भारी।
पावना थ्याहें आन्ये देव ट्याहा-दामेट मोटरि॥

[युवती क्यों करती हो मन भारी।
पावना से खरीद दूँगा एक रुपये की मोटरी।।]

भरी वर्षा के जलप्लावन के ऊपर जब निःशब्द है उस समय सूर्य अस्त होने जा रहा है। ठीक उस समय यह गान उपयुक्त है कि नहीं, उस सम्बन्ध में किसी को भी सन्देह हो सकता है किन्तु गान के इसी दो चरणों से उसी शैवालकीर्ण जलमरू के भीतर से मानो सारा गाँव ही बात करने लगा। देखा कि गौशाला के पास, किनारे के पेड़ों की छाया में, यहाँ भी युवतियाँ मन भारी करके रहती हैं एवं उनके रोष से लाल कुटिल कटाक्षपात से ग्राम्य कवियों की कविता छन्द-बन्ध में, सुर ताल में, मैदान-घाट में, जल-स्थल में जागृत होती रहती है।

संसार में जितने प्रकार के दुर्विपाक हैं उनमें युवतियों के मन की विमुखता अग्रगण्य है— उसी दुर्ग्रह-शान्ति के लिए कवि छन्द-रचना एवं प्रिय-प्रसाद-वंचित हतभाग्यगण प्राणपात तक करने को तैयार रहते हैं। किन्तु गान में सुना 'पावना से ला दूँगा अच्छे दान की मोटरी।' तब क्षण भर के लिए मन में एक बड़ा आश्वासन अनुभव हुआ। 'मोटरी पदार्थ क्या है उसे ठीक से नहीं जानता। लेकिन कवि को इसमें सन्देह नहीं कि उसका दाम एक रुपये से अधिक नहीं है। संसार के एक छोर में पावना जिले में एक ऐसा स्थान है, जहाँ प्रतिकूल प्रणयिनी के लिए असाध्य व्यवस्था नहीं करनी पड़ती। पावना की अपेक्षा दुर्लभ पदार्थ संग्रह नहीं करना पड़ता। ऐसा मान लेने पर संसार की यन्त्रणा अपेक्षाकृत सुसह्य लगती है। कालिदास, भवभूति प्रभृति प्रथम श्रेणी के कवि ऐसी जगह निश्चय ही मानसरोवर का स्वर्ण-पद्म, आकाश के तारे, नन्दन कानन के पारिजात आम्लान मुख पर डाल देते और उज्जैनी की प्रथम श्रेणी की युवतियाँ शिखरिणी एवं मन्दाक्रान्ता छन्द में ऐसे दुःसाध्य अनुष्ठान के प्रस्ताव को सुनते

ही बिना प्रसन्न हुए नहीं रह सकती।

अन्ततः काव्य पढ़कर इसी प्रकार भ्रम होता है किन्तु अविश्वासी महाजीवी लोग कवित्व पर इतना विश्वास नहीं करते। मात्र मन्त्र पाठ के द्वारा एक (पाल भेड़ा) भेड़े का झुण्ड मारा जाय कि नहीं। इस प्रश्न के उत्तर में वोल्टेयर ने कहा है कि मारा जाय किन्तु उसके साथ-साथ यथेष्ट मात्रा में आर्सेनिक विष भी होना चाहिए। मन भारी करने वाली युवती के लिए आकाश का तारा, नन्दनवन का पारिजात एवं प्राण समर्पण का प्रस्ताव सन्तोषजनक हो सकता है, किन्तु अधिकांश जगहों पर उसके साथ-साथ बाजूबन्द या चरण चक्र की आवश्यकता पड़ सकती है। कवि इन बातों को लाद देते हैं। वे प्रमाणित करना चाहते हैं कि केवल मन्त्र से, बल से, केवल छन्द एवं भाव के जोर से कार्य सिद्ध होता है- अलंकार का प्रयोजन हो सकता है, किन्तु वह काव्यालंकार ही होगा। इधर हमारे पावना की जनपद वासिनी गण काव्य के आडम्बर बहुलता का ज्ञान प्राप्त करती हैं एवं उनके चिर अनुरक्त ग्रामवासी कवि मन्त्र-तन्त्र छोड़कर एक बारगी सीधे एक अके दाम की 'मोटरी' की बात कह बैठते हैं। समय नष्ट नहीं करते।

फिर भी एक छन्द एवं एक सुर चाहिए। इसी जगत् के एक प्रान्त में इसी पावना जिले के जलराशि के किनारे भी उन्हें आवश्यकता है। उसके द्वारा एक मोटरी का दाम एक टके से अनेक गुना बढ़ जाता है। इस मोटरी को रस एवं भाव का पारस पत्थर छुवा दिया जाता है गान के उसी दो पंक्तियों को प्रचलित गद्य में बिना सुर के कहने पर उसमें एक रूखा दैन्य आ जाता है, वह छन्द और सुर से निमिष मात्र में खिसक जाता है। संसार के प्रतिदिन की धूलि स्पर्श से ये कई तुच्छ बातें भाव के आवरण से आवृत्त हो जाती हैं।

मनुष्य के लिए इसकी एक मात्र आवश्यकता है। वह समस्त

सांसारिक व्यापार द्वारा सर्वदा घनिष्ट रूप से आवृत्त होता है और अपने को वह छन्द लय में मण्डित करके अपने ऊपर नित्य सौन्दर्यमय भाव का रश्मिपात करके देखना चाहता है।

इसीलिए जनपद में जैसे खेती वगैरह एवं नौका चालन हो रहा है- वहाँ लोहार के घर हल का फाल, बढ़ई के घर ढेकी एवं सोनार के घर टका दाम की मोटरी तैयार हो रही है—उसी प्रकार साथ-साथ भीतर ही भीतर साहित्य रचना का कार्य भी चल रहा है। उसका विश्राम नहीं है। प्रतिदिन जो विक्षिप्त विच्छिन्न, खण्ड-खण्ड भाव से सम्पन्न हो रहा है, उसे साहित्य एक सूत्र में बाँधकर हमेशा के लिए प्रस्तुत करने की चेष्टा कर रहा है। गाँव में प्रतिदिन विचित्र काम भी चल रहा है एवं उसके बीच-बीच में चिर दिन की रागिनी बजने के निश्चित प्रयास भी चलते रहते हैं।

पद्‌मा में खेते हुए चलते-चलते रेत के मैदान में जब चकवा-चकवी का कलरव सुना जाता है, उससे कोकिल के कुहूतान को समझने का किसी को भ्रम नहीं होता। यह निश्चित है कि उसमें पंचम, मध्यम कोमल कड़ी का ठीक प्रकार सुर किसी प्रकार मालूम नहीं होता, किन्तु फिर भी उसे पद्‌मा के बालू मैदान का गान कहने में कुछ भी असंगत नहीं है। कारण कि इसमें सुर बेसुर जो भी जगे, उस निर्मल नदी के हवा के रौद्र में असंख्य प्राणी के सुख सम्भोगपूर्ण जीवन में आनन्द ध्वनि बज उठती है।

ग्राम्य साहित्य में कल्पना की तान अधिक या न हो यह आनन्द का सुर है। ग्रामवासीगण जिस जीवन को भोग करते आ रहे हैं, जो कवि उसी जीवन को छन्द ताल में बनाये रखता है, वह कवि सारे गाँव के हृदय को भाषा दान करता है। पद्‌मा के बालू-मैदान के चक्रवात-संगीत की तरह वह एकदम विशुद्ध सुर-ताल की अपेक्षा नहीं करता। मेघदूत के कवि अलका तक गये हैं वे उज्जैनी के

राजसभा के कवि थे। हमारे गान का अख्यांत कवि कठिन दायित्व में पड़ने पर भी पावना शहर से आगे अग्रसर नहीं हो पाता। यदि हो पाता तो उसके गाँव के लोग संग छोड़ देते। कल्पना की संकीर्णता से ही वह अपने प्रतिवेशी वर्ग को घनिष्ट सूत्र में बाँध सकता है, किन्तु समस्त जनपद का हृदय कलरव में ध्वनित हो उठा है। इसीलिए बंगाल जनपद में 'छड़ा' (ग्राम्य गीत) कथा रूप में जो साहित्य ग्रामवासियों के मन को हमेशा दोलित करता रहा है, उसे काव्य के रूप में ग्रहण करने के समय उसके साथ मन ही मन सारे गाँव, समस्त लोक को जोड़कर पाठ करना होता है। वही इसके भंग छन्द एवं अपूर्ण मेल को अर्थ एवं प्राण से भर देता है। ग्राम्य साहित्य बंगाल के गाँव की छवि, गाँव की स्मृति की अपेक्षा रखता है। इसीलिए बंगालियों के लिए इसका एक विशेष रस है। वैष्णव **'जय राधे'** कहकर भिक्षा माँगने के लिए अन्त:पुर के आँगन में आकर खड़े होते हैं तब कुतूहली गृहकर्त्ती एवं अवगुण्ठित वधुएँ उसे सुनने के लिए उत्सुक होकर आती हैं। बूढ़ी दादियाँ जो 'छड़ा' कहानी और गान से आकण्ठ परिपूर्ण हैं- जिसे कितने शुक्ल पक्ष के ज्योस्त्ना में एवं कृष्ण पक्ष के तारा के आलोक में उन्हें परेशान करके जगाकर घर के बालक-बालिकाएँ, युवक-युवतियाँ एकाग्र मन से अनेक शत वर्ष से सुनती आ रही हैं, बंगाली पाठकों के लिए उसका रस गम्भीर एवं अक्षय है।

पेड़ की जड़ें जैसे मिट्टी के साथ जड़ित होती हैं एवं उसका अग्रभाग आकाश की ओर बढ़ता गया है, उसी प्रकार सर्वत्र ही साहित्य का निम्न अंश अपने देश की मिट्टी में अनेक भाग जड़ित होकर ढका रहता है, वही विशेष रूप से, संकीर्ण रूप से देशी, स्थानीय होता है। वह केवल देश के जन साधारण के द्वारा ही उपभोग्य एवं ग्राह्य होता है। वहाँ दूसरे लोगों के प्रवेश का अधिकार

नहीं होता। साहित्य का जो अंश सार्वभौमिक है वह इसी प्रादेशिक निम्न स्तर के ढेर के ऊपर खड़ा है। इस प्रकार निम्न साहित्य एवं उच्च साहित्य में बराबर भीतरी एक योग है। जो अंश आकाश की ओर है उसके फूल-फल, डाल-पत्ते के साथ मिट्टी के नीचे की जड़ों की तुलना नहीं होती। फिर भी तत्त्वविदों के लिए उनका सादृश्य एवं सम्बन्ध किसी भी प्रकार दूर नहीं होता।

नीचे के साथ ऊपर का जो यह योग है वह प्राचीन बंग साहित्य की आलोचना करने पर स्पष्ट दिखायी देता है। आनन्द मंगल एवं कवि कंकण के कवि यद्यपि राजसभा-धनी सभा के कवि थे। यद्यपि वे दोनों विद्वान्, संस्कृत काव्य साहित्य के विशारद थे। फिर भी देशी प्रचलित साहित्य को काफी दूर नहीं छोड़ पाये। आनन्दामंगल एवं कुमार सम्भव के आख्यान में कम अन्तर है किन्तु आनन्दामंगल कुमार सम्भव के साँचे में गढ़ा नहीं गया है। उसके देव-देवी बंगाल के ग्राम्य हर-गौरी हैं। कवि कंकण चण्डी, धर्म मंगल, मनसा-मासान, सत्य पीर की कथा सभी ग्राम्य कहानी के आधार पर रचित हैं। उसी ग्राम्य 'छड़ों' का परिचय पाना ही भारतचन्द्र मुकुन्द राम रचित काव्य का यथार्थ परिचय पाने का रास्ता है। इसमें सन्देह नहीं कि राजसभा के काव्य में छन्दों का मेल होता है और काव्य-कला सुसम्पूर्ण होती है। किन्तु ग्राम्य गीतों के साथ उसका मर्मगत विभेद नहीं था।

पहले ग्राम्य 'छड़े' गाँव के सम्भ्रान्त परिवार की लड़कियों की भी साहित्य रस की तृष्णा मिटाने के लिए भिखारिनी एवं दादियों के मुख से घर-घर में प्रचारित होती। अब उनमें से अनेक पढ़ना सीखी हैं। बंगाल के छापा खाना का साहित्य उनके हाथों में आया है। लगता है इस समय ग्राम्य 'छड़े' समाज के अनेक नीचे के स्तर पर चले आये हैं।

छड़ों के विषय को आमतौर पर दो भागों में बाँटा जा सकता है। हर–गौरी विषयक एवं कृष्ण–राधा विषयक। हर–गौरी विषय में बंगाली के घर की बात एवं कृष्ण–राधा के विषय में बंगाली के भाव की बात व्यक्त होती है। एक तरफ सामाजिक दाम्पत्य बन्धन और एक तरफ समाज बन्धन का अतीत प्रेम होता है। राधा–कृष्ण सम्बन्धी छड़ों की जाति स्वतन्त्र है। वहाँ वास्तविकता के क्षेत्र को पार करके मानसिकता में पहुँचना होता है। प्रतिदिन की घटना, सांसारिक व्यापार, सामाजिक रहस्य वहाँ स्थान नहीं पाता। वही अपरूप ग्वाले का राजा बंगाली छड़ा का रचयिता एवं श्रोताओं के मानस का राज्य है।

स्थाने स्थाने फेरेन राखाल, संगे केह नाइ।
भाण्डी वने धेनु चरान सुवल कानाइ॥
सुवल वलिछे शुन माइ रे कानाइ।
आजि तोरे भाण्डीवन विहारी सजाई॥
[जगह जगह घूमता ग्वाला, साथ में कोई नहीं।
भाण्डी वन में गाय चराते बलदेव कन्हाई।
बलदेव ने कहा सुनो भाई रे कन्हाई।
आज तुम्हें भाण्डी वन बिहारी सजाऊँ॥]

यह सजाने का प्रस्ताव सुनकर निकुंज में जहाँ जितने फूल थे आग्रहपूर्वक व्याकुल हो गये–

कदम्बेर पुष्प वलेन सभा-विद्यमाने
साजिया दुलिव आजि गोविन्देर काने॥
करवी पुष्प वलेन, आमार मर्म के वा जाने–
आज आमाय राखवेन हरि चुड़ार साजेन॥
अलग - फुलेर कनक दाम वेल फुलेर गाँथनि–
आमार हृदये श्याम दुलावे चूड़ामणि॥
आनन्दे ते पद्म वलेन, तोमरा नाना फुल

आमाय देखले ह्वे चित्त व्याकुल॥
चरण तले थकि आमि कमल पद्मनाभ
राधा कृष्णे एकासने हेरिव वयान॥
[कदम्ब के फूल ने कहा सभा में आकर
सजकर हिलूँगा आज गोविन्द के कान में॥
कर्वी पुष्प ने कहा, हमारा रहस्य कौन जानता—
आज हमें रखेंगे हरि चूड़ा सजाने में॥
अलक फूल का कनक दाम बेला फूल की गुथाई—
हमें हृदय में श्याम झुलावेंगे चूड़ामणि॥
आनन्द से पद्म ने कहा, तुम लोग नाना फूल
हमें देखते ही हरि का चित्त होता व्याकुल॥
चरण तले में रहता मैं कमल पद्म नाभि।
राधा कृष्ण के एकासन पर देखूँगा वार्तालाप॥]

किसी भी फूल को निराश नहीं होना पड़ा। उस दिन उनका खिलना सार्थक हुआ—

फुलेरइ उड़ानि फुलेरइ जामा जुरि
सुबल साजाइलि भालो।
फुलेरइ पाग फुलेरइ पोशाक
सेजेछे विहारी लाल।
नाना आभरण फुलेरइ भूषण
चूड़ाते करवी फुल।
कपाले किरीटि अति परिपाटी
पड़ेछे चाँचर चुल।
[फूल की ही टोपी फूल का ही जामा जोड़ा
सुबल ने सजाया अच्छी प्रकार।
फूल की ही पगड़ी का फूल का ही पोशाक

सजे हैं बिहारी लाल
नाना आभरण फूल का ही भूषण
चूड़ा में कर्वी फूल।
कपाल पर मुकुट अत्यन्त सुन्दर ढंग का पड़ा हुआ है
खुला केश।]

इधर कौतूहली भ्रमर-भ्रमरी, मयूर-मयूरी, खंजन-खंजनी का मेला बैठ गया। सभी पक्षियों ने अपने कण्ठ से सुबल की कला-निपुणता की प्रशंसा आरम्भ की। कोकिल सपत्नीक आकर कह गये 'किंकिणी किरीटी अति परिपाटी'—

डाहुक डाहुक टिया टुया पाखि झंकारे उड़िया याय।
[चिल्ला चिल्ला करके तोता वगैरह पक्षी झंकार करके उड़ जाते।]

वे झंकार करके क्या बात कहे?

सुबल राखाल साजायेछे भालो विनोद विहारी राय।
[सुबल ग्वाला सजाया है अच्छा विनोद बिहारी राय।]

इधर चातक-चातकी श्याम को मेघ के भ्रम से उड़-उड़कर घूम-घूमकर 'जल दो', 'जल दो' कहते हुए मँडराने लगे। वन में शाखाओं पर, पल्लव में हवा में, आकाश में भारी शोर मच गया।

कानाइ वालिछे प्राणेर भाइ रे सुबल
केमने साजालो भाइ वल् देखि वल्।
[कान्हा ने कहा प्राण-भाई हे सुबल!
कैसे सजाये भाई बोलो देखूँ बोलो॥]

कान्हा जानते हैं कि उनकी सज्जा सम्पूर्ण नहीं हुई है। कोकिल-कोकिला एवं डाहुक-डाहुकी जो भी क्यों न बोले, सुबल की रुचि एवं नैपुण्य की प्रशंसा करने का समय नहीं हुआ है।

नाना फुले साजाले भाइ वामे दाओ प्यारी।
तवे तो साजिवे तोर विनोद विहारी।

[नाना फूल से सजाये भाई, बाँये दो प्यारी।
तभी सजेंगे तुम्हारे विनोद विहारी।]

वृन्दावन का सर्वप्रधान फूल ही बाकी था। वह कमी तो पशु-पक्षियों की नजर में नहीं आ सकी। किन्तु श्याम को खटकने लगा।

कुंज-पाने ये दिके भाइ चेये देखि आँखि।
सुखमय कुंजवन अन्धकार देखि॥
[कुंजवन में जिस दिखा में भाई आँख से देखता।
सुखमय कुंजवन में अंधकार दिखायी देता॥]

तब लज्जित सुबल ने कहा—

एइ स्थाने थाको तुमि नवीन वंशीधारी।
खुँजिया मिलाव आज कठिन किशोरी॥
[इसी स्थान पर रहो तुम नवीन वंशीधारी।
खोजकर मिलाऊँगा आज कठिन किशोरी॥]

इधर ललिता-विशाखा सखियों के बीच राधिका बैठी हैं।

सुवल के देखिया सवाइ हये हरषित—
एसो एसो वोसो सुवल एकी अचरित॥
[सुबल को देखकर सभी हुईं हर्षित—
आओ आओ बैठो सुबल यह क्या आचरण॥]

सुबल ने संवाद किया—

मन्द मन्द वहितेछे वसन्तेर वा, पत्र पड़े गलि।
काँदिया वलेन कृष्ण कोथाय किशोरी॥

कृष्ण की दु:खवस्था की बात सुनकर राधा ने रोकर कहा—

साधक ने हार गेंथेछि सइ,
दिव कार गले।
झाँप दिये मखि आज यमुना जले॥

[साध से हार गूँथी थी सखी,
दूँगी किसके गले में।
कूदकर मरूँगी आज यमुना के जल में ॥]

महारानी अनावश्यक इस प्रकार एक दु:साध्य दु:साहसिक घटना घटाने के लिए एक क्षण में कृत संकल्प हो गयीं। किन्तु अन्त में सखियों से टका करके कहा—

येइ आछि आमि एइ वृन्दावने।
सेइ साजे याव आमि कृष्ण दरशने ॥
दाँड़ा लो दाँड़ा लो सेइ वले सहचरी।
धीरे याओ फिर चाओ राधिका सुन्दरी ॥
[जिस सज्जा में हूँ मैं इस वृन्दावन में।
उसी सज्जा में मैं जाऊँगी कृष्ण दर्शन को ॥
रुको हे रुको हे वही कही सहचरी।
धीरे जाओ लौटकर देखो राधिका सुन्दरी ॥]
राधिका ने सखियों को बुलाकर कहा।
तोमरा गो पिछे एसो माथे करे दइ।
नाथेर कुशल होक, झरित एसो सइ ॥
[तुम लोग पीछे आओ सिर पर रखकर दही।
नाथ का कुशल हो, झटित आओ सखी ॥]

राधा ने यद्यपि प्रथम आवेग में कहा था कि जिस साज में हूँ, उसी साज में जाऊँगी किन्तु वह संकल्प रहा नहीं।

हालिया माथाय वेणी वामे बाँधि चुड़ा
अलका तिलका दिये एँटे परे धड़ा।
धड़ार उपर तुले निलेन सुवर्नेर झटा ॥
सोनार विजय शोभे हाते ताड़ वाला।
गले शोभे पंच रत्न तक्ति कंठमाला ॥

चरण शोभिछे टाइयेर सोनार नुपूर।
कटिते किंकिणी साजे, वाजिछे मधुर॥
चिन्ता नाइ चिन्ता नाइ विशाखा एसे वले।
धवलीर वत्स एकटि तुले लओ कोले॥
[हिलती हुई माथे की वेणी बाँटो बाँधी चूड़ा
अलका तिलक लगाकर वक्र हुआ है धड़।
धड़ के ऊपर उठा लीं सुवर्ण झझरा॥
सोने का विज शोभित है हाथ में ताड़ का बाला।
गले में शोभित पंचरत्न ताबीज कंठमाला॥
चरण में शोभित रानी के सोने का नूपुर।
कटि में किंकणी सज्जित, बजता है मधुर॥
चिन्ता नहीं चिन्ता नहीं विशाखा आकर कहती।
धौली का एक बछड़ा उठा लो गोद में॥]

सभी सखियाँ दही का भाण्ड सिर पर लेकर एवं राधिका धौली के एक बछड़े को गोद में लेकर ग्वालिनों का दल ब्रज के रास्ते से श्याम दर्शन के लिए चला। कृष्ण तब राधिका का रूप धारण करते करते अचेत हो गये।

साक्षाते दाँड़ाये राइ वलितेछे वाणी—
की भाव पड़िछे मने श्याम गुणमणि।
ये भाव पड़िछे मने सेइ भाव आमि॥
[साक्षात खड़े होकर राय बोल रहे हैं वाणी—
कौन भाव हो रहा है मन में श्याम गुणमणि।
जो भाव हो रहा है मन में वही भाव मैं॥]

राधिका ने सविनय, सगर्व कहा तुम्हारे अन्तर का भाव मैं बाहर प्रत्यक्ष विराजमान हूँ।

गाओ तोला चक्षु मेलो ओहे नीलमणि।
काँदिये काँदाओ केन, आमि विनोदिनी॥

अंचले ते छिल माला दिल कृष्णेर गले।
राधा कृष्णेर युगल मिलन भाण्डीर वने॥
[शरीर उठाओं आँख खोलो ओ रे नीलमणि।
रोकर रुलाते हो क्यों, मैं विनोदिनी॥
अंचल में था माला दिया कृष्ण के गले में।
राधा कृष्ण का युगल मिलन भाण्डी के वन में॥]

भाण्डी वन विहारी की सज्जा सम्पूर्ण हुई; सुबल के हाथ का कर्ा सिद्ध हो गया।

इसमें विशेष करके बंगाल का ग्राम्य दृश्य, गृहीचित्र कुछ भी नहीं है। ग्वालिनी जिस प्रकार सजती हैं नूपुर, किंकिणी बजाकर दही माथे पर, बछड़ा गोद में लेकर वन पथ में चल रही हैं, उसे बंगाल के ग्राम पथ पर प्रतिदिन अथवा कदाचित् देखने को नहीं मिलता। ग्वालगण मैदान में बरगद की छाया में अनेक प्रकार का खेला करते हैं। किन्तु फूल को लेकर उनका और उनको लेकर फूल की इस प्रकार मदमत्तता सुनी नहीं जाती। यह सब भाव की सृष्टि है। कृष्ण-राधा का विरह-मिलन समस्त विश्ववासी के विरह-मिलन का आदर्श है; इसमें भारतवर्ष का ब्राह्मण समाज या मनुसंहिता नहीं है। इसका आगे-पीछे ग्वालों का काण्ड है। जहाँ समाज बलवान है वहाँ वृन्दावन के गोचारण के साथ मथुरा के राज्य पालन का एकाकार होना अत्यन्त असंगत है। किन्तु कृष्ण राधा की कहानी जिस भाव लोक में विराज करती है वहाँ इसकी किसी कैफियत की आवश्यकता नहीं होती। यहाँ तक कि वहाँ चिर प्रचलित समस्त समाज-प्रथा का अतिक्रमण करके वृन्दावन की ग्वालवृत्ति मथुरा के राजस्व की अपेक्षा ज्यादा ध्यान देने योग्य प्रमाणित हुआ। हमारे देश में जहाँ कर्म विभाग, शास्त्र शासन एवं सामाजिक उच्च नीचता का भाव जन साधारण के मन में इस प्रकार दृढ़बद्ध मूल है। वहाँ कृष्ण-राधा की

कहानी में इस प्रकार का आचार विरुद्ध बन्धन विहीन की स्वाधीनता कितनी आश्चर्यजनक है।

हम उसे चिर अभ्यास क्रम से अनुभव नहीं करते। कृष्ण मथुरा में राज्य करने जाने पर राधिका ने रोकर कहा—

आर कि एमन भाग्य ह्वे, व्रजे आसवे हरि।
से गिछे मथुरा पुरी, मिथ्ये आशा करि॥
[और क्या ऐसा भाग्य होगा, ब्रज में आयेंगे हरि।
वे गये हैं मथुरापुरी, झूठे आशा करूँ॥]

राजा को पुनः ग्वाल बनाने की आशा दुराशा है, यह बात सबको स्वीकार करनी होगी। किन्तु वृन्दा जी असली बात समझती है, वह जानती है, निराशा होने का कोई कारण नहीं। वह जानती है कि वृन्दावन-मथुरा में काशी-कांची का नियम ठीक से खपता नहीं।

वृन्दे वले आमि यदि एने दिते पारि
तवे मोरे की धन दिवे बल तो किशोरी॥
शुने वाणी कमलिनी येन पड़िल धन्ये—
देह प्राण करेछे दान कृष्ण पदार विन्दे॥
एक कालेते याँक सँपेछि विराग हलेन ताँइ।
यम-सम कोनो देवता राधिकार नाइ॥
इहा वइ निश्चय कइ कोथा पाव धन।
मोर केवल कृष्ण नाम अंगेर भूषण॥
राजार नन्दिनी मोरा प्रेमेर भिखारि—
बँधुर काछे सेइ धन लये दिते पारि॥
वलछे दूती, शोन श्रीमती, मिलवे श्यामेर साथे।
तखन दुजनेर दुह युगल चरण, ताइ दियो मोर माथे॥
[वृन्दा ने कहा मैं यदि ला पाऊँ
तब मुझे दोगी कौन धन बोलो तो किशोरी॥

सुनकर वाणी कमलिनी जैसे पड़ी समस्या में-
देह प्राण किया है दान कृष्ण पदार विन्द में ॥
एक समय से जिसे सौंपा है विराग हुए वही।
यम-सम कोई देवता राधिका के नहीं है॥
यही कहती हूँ निश्चय करके कहाँ पाऊँगी धन।
मेरे केवल कृष्णनाम अंग के भूषण ॥
राजा की नन्दिनी मैं प्रेम की भिखारी—
वधू के पास से वही धन लेकर दे सकती हूँ॥
कहती दूती, सुनो श्रीमती, मिलोगी श्याम के साथ।
तब दोनों लोगों का दो युगल चरण, वही देना मेरे माथे पर॥]

कृष्ण का यह रायबहादुर खिताब दूती को अत्यन्त कौतुकपूर्ण लगा। कृष्णचन्द्रराय, यह तो असली नाम नहीं है। यह तो मूढ़ लोगों को भुलाने का एक आडम्बर है। असली नाम वृन्दा जानती है।

चललेन शेषे कांगालवेशे उतरिलेन द्वारे।
हुकुम विने रात्रि दिने केओ ना येते पारे॥
[चले अन्त में कंगाल वेश में उतरे द्वार पर।
हुक्म बिना रात्रि दिन कोई नहीं जा पाता॥]
बहुत कष्ट से हुक्म पाकर 'वृन्दावती गयी सभा के बीच में'।
सम्भाषण करि दूती चेये देखे कृष्णेर वदन॥
धड़ा चूड़ा त्याग करिये मुकुट दियेछे माथे।
सब अंगे राज-आभरण, वंशी नाइको हाते॥
सोनार माला, कण्ठहार, वाहुते वाजुवन्द।
श्वेत चामरे वतास पड़े देखे लोग छन्द॥
निशान उड़े, डंका मारे, वलछे खवरदार।
ब्राह्मण पण्डितेर घटा व्यवस्था विचार॥
आर एक दरखास्त करि शुन दामोदर।

यमुनाते देखे एलेम एक तरी मनोहर ॥
शून्य हये मासछे तरी ओइ यमुना तीरे।
काण्डारी अभावे नौका घाटे घाटे फिर ॥
पूर्वे एक काण्डारी छिल सर्व लोके कय।
से चोर पालालो कोथा ताके धरते हय ॥
शुनते पेलेय हेथा एलेम मथुरा ते आछे।
हाजिर कर यदि जानते पावे पाछे ॥
मेरे हये कय कथा, पुरुषेर डराय गा।
सभा सुद्ध निःशब्द, केओना कटे रा ॥ —
व्रज पुरे घर वसति मोर।
भाण्ड भेंगे ननि खेये पलायेछे चोर ॥
चोर धरिते एइ सभाते आसछे अभागिनी।
केमन राजा विचार कर जानव ता एखनी।
[सम्भाषण करे दूती रुकी कुछ क्षण।
एक दृष्टि से देखती रही कृष्ण का वदन ॥
धवल चूड़ा त्याग करके मुकुटदिया है माथे पर।
सभी अंगों में राज-आभरण वंशी नहीं है हाथ में ॥
सोने की माला, कंठहार, बाहु में बाजूबन्द।
श्वेत चामर से हवा की जाती देखकर लगता मुश्किल ॥
निशान बजता, डंका पड़ता है, कहते हैं खबरदार।
ब्राह्मण पण्डित की घटा व्यवस्था विचार ॥
और एक दरख्वास्त करती सुनो दामोदर।
यमुना में देखकर आयी एक तरणी मनोहर ॥
शून्य होती जाती तरणी उसकी यमुना के किनारे।
नाविक के बिना नौका घाट-घाट पर घूमती ॥
पूर्वे एक नाविक था सभी लोग कहते।

वह चोर भागा कहाँ उसे पकड़ना होगा ॥
सुनी हूँ यही आकर मथुरा में है।
हाजिर न करो यदि जान पाओगे बाद में ॥
लड़की होकर कहती बात, पुरुष से डरता शरीर।
सभा पूरी निःशब्द, कोई नहीं करता शब्द ॥ —
व्रजपुरी में घर बस्ती मेरी
भाण्ड तोड़कर मक्खन खाकर भाग गया है चोर ॥
चोर पकड़ने इसी सभा में आ रही है अभागिनी।
कैसे राजा हो विचार करो जानूँगी उसे अभी ॥]

वृन्दा ने कृष्णचन्द्र के राज सम्मान की रक्षा करके ठीक डण्डे की तरह बातें की—कवि की रिपोर्ट देखने पर अन्ततः वही लगता है, तब इसमें कुछ स्पर्धा भी थी। वृन्दा मथुरा के ऊपर अपने वृन्दावन के मिजाज को फैलाने से बाज नहीं आयी। 'हाजिर यदि न करो तो जान सकोगे बाद में' यह बात खूब कठोर बात है, उसे सुनकर सभा के सभी लोग निःशब्द हो गये। मथुरा के महाराज कृष्णचन्द्र राय ने कहा—

व्रजे छिले वृन्दादासी तुझि अनुमाने।
कोन् दिन वा देखा-साक्षात् छिल वृन्दावने ॥
तखन वृन्दा कच्छेन, की जानि ता ह्वे कदाचित्।
विषय पेले अनेक भोले महतेर रीत ॥
[व्रज में थी वृन्दादासी समझता हूँ अनुमान से।
किसी दिन देखा-साक्षात् था वृन्दावन में ॥
तब वृन्दा ने कहा, क्या जानूँ वह होगा कदाचित्।
विषय (अधिकार) पाने पर अनेक भूल जाते हैं, बड़ों की यही रीति ॥]

कृष्ण द्वारा वृन्दावन के कुशल समाचार पूछने पर वृन्दा ने कहा—

हाते ननि डाकछे रानी गोपाल कोथा रय।
धेनु वत्स आदि तव तृण नाहिं खाय॥
शतदल भासतेछे सेइ समुद्र-माझे।
कोन् घाट धुतुरा पेये एत डंका बाजे॥
[हाथ में मक्खन लेकर पुकारती रानी गोपाल कहाँ हो।
धेनु वत्स आदि तब तृण नहीं खाते॥
शतदल तैरते उस समुद्र में।
कौन नाचीज धतूरा पाकर इतना डंका बजाता॥

मथुरा के राजत्व की तुलना वृन्दा ने धतूरे के साथ की है। उसमें मत्तता (गर्व) है, किन्तु वृन्दावन का सौन्दर्य और सुगन्धी कहाँ है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि इसके बाद वृन्दा दैन्य व्यर्थ नहीं हुआ–

दूती कृष्ण लये विदाय हये व्रजपुरे एल।
पशुपक्षी आदि यत परित्राण पेल॥
व्रजेर धन्य लता तमाल पाता धन्य वृन्दावन।
धन्य धन्य राधा-कृष्णेर युगल मिलन॥
[दूती कृष्ण को लेकर विदा होकर व्रजपुर में आयी।
पशुपक्षी आदि जितने ये परित्राण पाये॥
ब्रज की धन्य लता तमाल पत्र धन्य वृन्दावन।
धन्य धन्य राधा-कृष्ण का युगल मिलन॥]

रवीन्द्रनाथ ने कृष्ण-राधा सम्बन्धी ग्राम्य गीत के विश्लेषण के बाद पश्चिम यानी हिन्दी प्रदेश के राम-कथा से तुलना की है। उनका कहना है कि बंगला ग्राम्य गान में हर-गौरी एवं राधा-कृष्ण की कथा के अलावा सीता राम एवं राम-रावण की कथा भी पायी जाती है। किन्तु उनकी तुलना में अल्प है। यह बात स्वीकार करनी

ही होगी कि पश्चिम में जैसे रामायण की कथा ही जनसाधारण में काफी मात्रा में प्रचलित है। वहाँ बंगला की अपेक्षा पौरुष की चर्चा अधिक है। हमारे प्रदेश में हर-गौरी-कथा में स्त्री-पुरुष एवं राधा-कृष्ण की कथा में नायक-नायिका के सम्बन्ध नाना रूप में वर्णित हैं, किन्तु उनका प्रसार संकीर्ण है, उसमें सर्वांगीण मनुष्य का खाद्य नहीं है। हमारे प्रदेश के राधा-कृष्ण की कथा में सौन्दर्य-वृत्ति एवं हर-गौरी की कथा में हृदयवृत्ति की चर्चा हुई है, किन्तु उसमें धर्मवृत्ति की अवधारणा नहीं हुई है। उसमें वीरत्व, महत्त्व, अविचलित भक्ति एवं कठोर त्याग को स्वीकार करने का आदर्श नहीं है। राम-सीता का दाम्पत्य हमारे प्रदेश के प्रचलित हर-गौरी दाम्पत्य की अपेक्षा बहुत गुना श्रेष्ठ, उन्नत एवं विशुद्ध हैं, वह जितना कठोर गंभीर है उतना ही स्निग्ध कोमल है। रामायण कथा में एक ओर कर्तव्य का दुरूह काठिन्य है तो दूसरी ओर भाव का अपरिसीम माधुर्य एक साथ सम्मिलित है। उसमें दाम्पत्य, सौभ्रात्य, पितृ भक्ति, प्रभु भक्ति, प्रजा वात्सल्य प्रभृति मनुष्य के जितने प्रकार के उच्च अंश के हृदय बन्धन हैं उनका श्रेष्ठ आदर्श परिस्फुट हुआ है, उसमें सब प्रकार की हृदय-वृत्ति को महान् धर्म नियम के द्वारा पग-पग पर संयमित करने का कठोर शासन प्रचलित है। हर प्रकार से मनुष्य को मनुष्य बनाने की ऐसी उपयोगी शिक्षा और किसी देश में किसी साहित्य में नहीं है। बंगाल की मिट्टी में उस रामायण की कथा हरगौरी और राधाकृष्ण की कथा के ऊपर सिर नहीं उठा पायी, वह हमारे प्रदेश का दुर्भाग्य है। जिसने राम को युद्ध क्षेत्र में एवं कर्मक्षेत्र में नर देवता का आदर्श माना है। उसके पौरुष, कर्तव्य निष्ठा एवं धर्मपरायणता का आदर्श हमारी अपेक्षा उच्चतर है।

तेलुगू लोकवार्ता में श्रीकृष्ण

❀ प्रो० एस० शेषारत्नम्

लोक जीवन को प्रतिबिम्बित करने वाला साहित्य ही लोक साहित्य है, जो हमारी सांस्कृतिक परम्परा को अक्षुण्ण रखकर पीढ़ी दर पीढ़ी तक पहुँचा देता है। स्वाभाविक रूप से मनुष्य भावुक होने के कारण वह अपनी वाणी के माध्यम से अपने रहन-सहन, आचार-व्यवहार, रस्म-रिवाज, पर्व-त्यौहार, देवी-देवताओं के प्रति विश्वास आदि की अभिव्यक्ति कर अपनी अलग पहचान बना लेते हैं। हर एक प्रान्त की एक अलग संस्कृति होती है। वैसे ही आन्ध्र प्रान्त की संस्कृति में भी आन्ध्र प्रान्त में कई जातियाँ एवं धर्मों के लोग हैं। हर एक जाति के लोगों के लिए एक विशिष्ट प्रकार की जीवन पद्धति होती है। संस्कृति में आन्ध्र संस्कृति का अपना एक विलक्षण स्थान है।

साहित्य और संस्कृति का आन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। साहित्य का सम्बन्ध समाज से होने के कारण संस्कृति का सम्बन्ध उस समाज के रीति-रिवाजों एवं सुख-दु:खों से सम्बन्ध रखता है। लोक साहित्य नागरिक संस्कृति से भिन्न लोगों की वाणी से निसृत अलिखित साहित्य है।

तेलुगू लोक-साहित्य को जनपद साहित्यमु प्रजावाङ्मयमु, पद्वाङ्मयमु, अनाधृत वाड्मयमु, तिरस्कृतांध्र वाड्मयमु गेयरचनलु, मधुर कवितलु, देशी सारस्वतम् आदि कई नामों से अभिहित किया जाता है। लोक-साहित्य के लक्षणों के अनुसार विचार किया जाय तो 'जानपद साहित्यमु' नाम उचित सा लगता है। 'जानपदमु' माने प्रदेश। जानपद साहित्यमु अंग्रेजी का Folk Literature पर्यायवाची

शब्द है। वैसे ही जानपदमु, अंग्रेजी का अनूदित शब्द है। तेलुगू में 'जानपद साहित्यमु अंग्रेजी 'Folk' का अनूदित शब्द है। तेलुगू में 'जानपद साहित्यमु', 'जान पदविशानमु' 'Folk Love' की एक शाखा के रूप में विकसित हुआ है। मानव ने परस्पर सहयोग की भावना से समाज में रहने योग्य अपने आप कुछ आचार-व्यवहार और नियम बना लिए हैं। उन नियमों के दायरे में रहकर वह अपने जीवन के क्रिया-कलापों का निर्वाह करते हैं। इसे ही उसकी संस्कृति माना जाता है। उस सामाजिक संस्कृति को अभिव्यक्त करने वाला साहित्य 'लोकवार्ता' के नाम से अभिहित किया जाता है। इसे यों परिभाषित कर सकते हैं कि "अशिक्षित जनता की अशिक्षित जनता के द्वारा, अशिक्षित जनता के लिए, संचित आचार-व्यवहार, रहन-सहन, कलाओं एवं विश्वासों की निधि ही 'लोकवार्ता' है। अध्ययन की सुविधा को दृष्टि में रखकर 'लोकवार्ता' को पाँच भागों में विभाजित कर सकते हैं—

1. मौखिक लोक-साहित्य (Oral Folk Literature) इसके अन्तर्गत लोकगीत, लोक कथाएँ, गदयाव्यान, लोकोक्तियाँ, पहेलियाँ आदि आते हैं।
2. सामाजिक लोक सम्प्रदाय (Social Folk Customs)।
3. वस्तु संस्कृति या भौतिक संस्कृति (Material Cultural Literature)।
4. लोक-कलाएँ (Folk Arts)।
5. लोक भाषा (Folk Speech)।

अतः इससे स्पष्ट हो रहा है कि लोक-जीवन से सम्बन्धित प्रत्येक विषय लोकवार्ता का ही अंग है।

सामान्य जनता के हृदयान्तराल में निहित असीम संवेदना सरल रागोद्वेलित अभिव्यक्ति ही लोकगीत है। अति सामान्य व्यक्ति

के दैनिक कार्यकलापों को अधिक महत्व देने के कारण ही ये गीत अत्यन्त रसयुक्त एवं हृदयस्पर्शी बन गये हैं। तेलुगू में लोक गीतों को मुख्य रूप से 'जानपद गेयमुलु' कहते हैं।

जनपदमु का अर्थ होता है 'प्रदेश' या 'गाँव' या 'गाँवों का समूह'। प्रमुखत: किसी एक प्रान्त के लोगों द्वारा गाये जाने वाले गीत ही लोकगीत हैं। ये गीत लिखित रूप में उपलब्ध हैं और अलिखित रूप में भी, अमुक प्रान्त में गाये जाने वाले गीतों से उस प्रान्त की संस्कृति एवं रहन-सहन का पता चलता है। सामान्य जनता के हृदयोद्‌गार होने के कारण उनके जीवन से जुड़े हुए हर्षोल्लास, सुख-दु:ख, प्रेम-अनुराग, भक्ति आदि सभी विचार अभिव्यक्त होते हैं। इन गीतों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके गीतिकार अभात रहते हैं। असल में तो कृतिकार तो एक ही हो सकता है। लेकिन सम्प्रेषण में पीढ़ियों से पीढ़ियों तक पहुँचाने में वह समष्टि की सम्पत्ति होती है। इसके मूल रूप को पहचानना अत्यन्त कठिन कार्य है।

विविध संदर्भों में गाये जाने वाले गीत आन्ध्र की लोक-संस्कृति को प्रतिबिम्बित करते हैं। इनमें **निरष्ठानु परक गीत** यहाँ उल्लेखनीय हैं। ये साधारण कोटि के होते हैं। विनोद इनका प्रधानांश है। कुछ गीत अमुक अवसरों पर अमुक व्यक्तियों के द्वारा गाये जाते हैं। इन्हें विशेष गीत या अवसर गीत कहते हैं। संस्कार गीत, क्रिया गीत, ॠतु गीत, पर्व गीत, जाति गीत, क्रीड़ा गीत, भक्ति गीत और प्रकीर्ण गीत इस कोटि के गीत होते हैं। कुछ गीत इच्छानुसार गा सकते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं। बुरी कथाएँ और पुण्य कथाएँ।

आन्ध्र में भगवान का नाम स्मरण भजनों के रूप में किया गया जाता है। जैसे चिड़तल भजन (करताल भजन) ताल भजन, पंडरी भजन, हरि भजन, कोलार भजन आदि। निम्न गीत में कृष्ण-

गोपिकाओं का संवाद की नाटकीयता देखिए—

गो० — गोल्ल वारि वाङलकु कृष्णमूर्ति।
नीवेमि पनुलकु वच्चिनावु कृष्णमूर्ति॥

कृ० — पालुकोन वच्चिनाने गोल्लभामा।
मंचि पालु पोसि पंपु गोल्लभामा॥

गो० — कोत्त कोड़लनय्य नेनु कृष्णमूर्ति।
मा पत्तगारि नडुगुमय्या कृष्णमूर्ति।

कृ० — कोत्त कोड़लवैतेनेमि गोल्लभामा।
ने रोक्कमिच्चि पुच्चुकोंटे गोल्लभामा॥

गो० — नी रोक्कमु मा कोद्धय्या कृष्णमूर्ति।
नीतु रोंप चेयक वेल्लुमय्या कृष्णमूर्ति॥

अर्थात्—

गो० — हे कृष्ण गोपियों के गाँव में क्यों आये हो?

कृ० — मैं दूध खरीदने आया हूँ! अच्छा दूध देकर मुझे भेज दो।

गो० — नयी बहू हूँ मैं कृष्णमूर्ति
तू सास से पूछ ले कृष्णमूर्ति

कृ० — नयी बहू हो तो क्या, मैं नकद दे देता हूँ।

गो० — पैसे की जरूरत नहीं, शरारत किए बिना
हे कृष्णमूर्ति यहाँ से चले जाओ।

2. खेलकूद के गीत—चेम्मा चेक्का, ओय्यारि भामा, ओण्पल कुण्पा आदि गीत खेलते समय लड़कियों के द्वारा गाये जाने वाले गीत हैं। ये गीत खेलते-खेलते ही गाये जाते हैं। जैसे—

तारंगम, तारंगम्,
तांडव कृष्ण तारंगम्।
मुद्धु कृष्ण तारंगम्,

मोहन कृष्ण तारंगम्।

वेणुनाद तारंगम्,

वेंकटरमण तारंगम्।

गोकुलनाथ तारंगम्।

3. जोल पाटलु या लालि पाटलु—(लोरी गीत) बच्चों को सुलाने के लिए गायी जाने वाले ये गीत तेलुगू में बहुप्रचलित हैं। 'जो' लोरी का टेक पद है। लाली पाटलु, लालन-पालन के गीत हैं। बच्चे इन्हें सुनकर खिलखिलाते हैं। 'शिशुर्वेति गानम रसम कणि:' यहाँ सही लगता है। निम्नलिखित गीत आन्ध्र प्रदेश के अत्यन्त प्रसिद्ध लोरी गीत हैं—

जो अच्युतानंदा जो, जो मुकुंदा,
राटा परमानंद राम गोविंद जो जो।
नालुगु वेदमुल गोलुसुलमरिंचि
चेलिय डोलिकलोन चेर्चिलालिंची।

हे अच्युत! हे मुकुन्द! सो जा! ब्रह्माण्ड को ही पालना बनाकर, चारों वेदों को उसकी सांकल बनाकर, शेषनाग को ही बिछावा बनाकर, सखियों ने झूला झुलाया है।

गोरंत दीपम्मु गोड़लकु वेलुगु
गोपाल कृष्णुंड़ गोवुलकु वेलुगु
मा यिंटि अबत्रायि मा इंडल वेलुगु
मा यिंटि अबत्रायि माकंडुल वेलुगु

अर्थात् छोटे दीप से प्रकाशित होता है दीवार, गोपाल कृष्ण गौओं के प्रकाश हैं। मेरा शिशु मेरे घर का प्रकाश है, मेरा लाल मेरी आँखों का तारा है।

नटखटपन—माखन चोर श्रीकृष्ण पकड़ा गया लेकिन वह मानने के लिए तैयार नहीं, माँ को वह सफाई यों देता है, माँ मैं फूल

तोड़ने के लिए उपवन में गया था। गोपिकाओं ने मुझे दूध पीने के लिए कहा—पीने के बाद तुझसे शिकायत कर रही हैं। वैसे ही चटसार जाते समय गोप बालक मुझे घेर कर काला लड़का कहकर अवहेलना कर रहे हैं।

भूलवनमुनकु नेनु बोइ, पूलु कोय चुन्डगनु
पणतुलन्ता नन्नु चूचि पालु त्राग मन्नारू
वीथी बड़िको पावचुन्टै गेरि गोल्ललु चूचि नन्नु
नल्ल पिल्ल वाड़वनि हेलन सेसेदरू तल्ली।

धार्मिक गीत

मेलुकोलुपु पाटलु—जागकरण गीत या (सुप्रभात गीत)

आन्ध्र प्रदेश में भगवान श्रीकृष्ण को सम्बोधित कर अनेक प्रकार के जाग्रत गीत गाये जाते हैं। इनमें श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन अधिक है। कृष्ण, गोविन्द, नारायण आदि नामों से पुकारते हुए आन्ध्र की स्त्रियाँ नित्यप्रति प्रातःकाल घरेलू काम करते हुए जागरण गीतों का आलाप करती हैं—

गोविन्दा अनि निन्नु गोपिकलन्दरू
गोल्लवाड़न्दरू कोलुसेतुन्ना
मेलुको कृष्णा! मेलुको।
नारायणा अनि नम्मिन भुक्तुलु
मोदमु चेंदतुन्नारू
मेलुको कृष्णा! मेलुको।
शरणनु वारिनि रक्षगा विरुदु नीकुन्दि
वन माता कापुरा मेलुको कृष्णा। मेलुको।
बासा वन्दिता वैकुंठवासुड़ा
मेलुको कृष्णा! मेलुको।

चल्लनि चूपुलु तेल्लनि नाममु

नल्लनि ना सामी, मेलुको कृष्णा! मेलुको।

अर्थात्—गोपिकायें और ग्वाले तुझे गोविन्द, गोविन्द कहकर पुकार रहे हैं, हे कृष्ण जागो। भक्तजन विश्वास के साथ 'नारायण' कहकर पुलकित हो रहे हैं। जागो कृष्ण, जागो। 'तुझे शरणागत वत्सल' विरुद प्राप्त हुआ है। जागो हे कृष्ण जागो, जागो कृष्ण जागो। वासुदेव, वैकुंठाधिपति आदि कई नामों से पुकारे जाने वाले हो, हे कृष्ण जागो। आपकी आँखें सुख प्रदान करने वाली हैं। हे श्यामवर्ण वाले, सफेद नाम वाले हे कृष्ण जागो।

बालक श्रीकृष्ण की लीलाएँ—एक श्रमिक स्त्री अपने पुत्र को श्रीकृष्ण मानती है। श्रीकृष्ण ने टोकरी में रखी गयी फलों की चोरी की है लेकिन माँ से कहा कि उसने चोरी नहीं की है लेकिन चोरी करते समय एक फल अंगूठी में रह गया। इससे बालक श्रीकृष्ण पकड़ में आया। बालक श्रीकृष्ण की लीलाओं को निम्न गीत में द्रष्टव्य है—

उंगरालु सन्दुन तेलि के ओग पंडु

गंपलोनि पंडलन्नि गजनिम्मलाया

एदुरू गंपा बोई ऐंडि गंपाया

गंपा किन्दा चुट्टा माणिक्यमाया

कटटुकोन्न पाच्चीरा पटटुसीराया

तोडुक्कोनु पातरैक पट्टरैकाया

अर्थात्—बालक श्रीकृष्ण के अंगूठी के बीच एक फल चमक उठा। टोकरी के फल जंबीर हो गये। बाँस की टोकरी बदल गयी। टोकरी के नीचे की गेंदुरी माणिक्यम के रूप में परिवर्तित हो गयी। माँ के द्वारा पहनी गई पुरानी साड़ी रेशमी साड़ी हो गयी। पहनी गयी पुरानी चोली रेशमी चोली बन गयी।

आचार व्यवहार परक गीत

संस्कार गीत—वैदिक पद्धति के अनुसार संस्कार के विशेष अवसर पर पुरोहित को अधिक महत्त्व दिया जाता है। जहाँ संस्कार के अन्त में पुरोहित का कोई काम नहीं रहता वहाँ पर औपचारिक रूप से कुछ गीत गाये जाते हैं। इनमें विवाह सम्बन्धी गीत अधिक उपलब्ध हैं।

विवाह सम्बन्धी गीत—भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि साधारणत: वर और वधू को देवी-देवताओं के रूप में अभिहित किया जाता है।

उबटन के गीत—मुहूर्त के अनुसार विवाह के कुछ घण्टों पहले वर और वधू को विवाह के लिए तैयार करते हैं, पेंडिलि कोडुकुनि चेय्यटमु (दूल्हा को तैयार करना कहते हैं। इस संदर्भ में परम्परा अनुपालन करते हुए रिश्तेदार और गाँव के लोगों को आमंत्रित कर उबटन करते हैं। जिसे आन्ध्र में 'नलुगु' कहते हैं। सुहागिन स्त्रियाँ अपने-अपने घरों में वर और वधू के सर पर तेल और सुन्निपिंडि (उबटन का आटा, जिसमें सुगंधित प्रसाधन मिलाते हैं) लगाकर मंगल स्नान कराते हैं। इस उबटन का मनोहर चित्रण देखिए—

नलुगुकु रावय्या नाद विनोदा
वेगमे रावय्या वेणु गोपाला
सूरि गन्नेरू पूलु सूसकमु कट्टिंचि
सुंदरूड़ ना चेत चूसक मंदुको।
सनू मल्लेलु देच्चि सरभु कट्टिंचि
चेंदुरूड़ नाचेत चेंडदुवय्य
सिरि पचंदनपुचेक्क गंदमु तीयिंचि
कामुड़ नाचेता गंदमु अंदुको
जाजिकाय, जा पत्रि, मउपे चुट्टिंचि
मन्मथ नाचेता मडुपवय्य

नलुगुकु रावय्य नाद विनोदा

बेगमें रावय्य वेणु गोपाल।

अर्थात्—हे माखन के चोर! तू उबटन के लिए आ जा। हे वेणु गोपाल! हे देव! जल्दी आना! हे सुंदर पुरुष तुझसे अनुरोध करने आयी हूँ। हे रसिक! तू कितना अलबेलापन सीख चुका है। कमल जैसे आँखों वाले हे श्रीकृष्ण तुम क्यों रूठे हुए हो? हे परमात्मा! तुझे मैं हल्दी लेपन करूँगी। हे स्वामी मैं क्या करूँ? तुम जल्दी आ जाओ। यहाँ विविध प्रकार के फूलों से बनायी गयी मालाओं को पहनाने के लिए वर को आमंत्रित करते हैं। उबटन के बाद वर को महकने वाले फूलों की मालाओं से अलंकृत करने के लिए स्त्रियाँ अपनी उत्सुकुता को व्यक्त करती हैं। वैसे ही चंदन का लेपन करना चाहते हैं। जायफल, जावित्री आदि से लिपटाकर पान बनवाया गया है। हे मन्मथ-मथन शीघ्र ही उबटन के लिए आ जाना। हे नाद-विनोद शीघ्र ही आ जाना।

चडुंलाटा (बांतुलाटा)—चेंदु माने गेंद है। चेंडुलु इसका बहुवचन रूप है। 'आटा' माने खेल। इन दो शब्दों का सम्मिश्रण रूप चेंडुलाटा है। विवाह के बाद वर-वधू के द्वारा खेले जाने वाला खेल है यह। इसके लिए फूलों से गेंद बनाई जाती है। वर और वधू विवाह के बाद इसे गेंद को एक-दूसरे पर फेंकते हैं। यह एक हास्य विनोद प्रिय खेल है। 'रुक्मिणी कल्याणमु' कथा गीत में इसका सुंदर वर्णन मिलता है।

वेणुगोपालुनिकि वंदकि पन्नीरुचल्लेर

सरसमाड़े रुक्मिणिकि स्वामी

श्रीकृष्णुनिकि वेदकि पन्नीरू चल्लरे

मुत्याल पीट वेयरे मुत्रैदुलंदरू मीरू॥

संपंगि नूने लंटरे सकियलंदर मीरू

पन्नीट जलकमाड़रि भामलंदर मीरू ॥

कर्पूर हारतीयरे कांतलंदरू मीरू (सरस)

अर्थात्—हे सखियो वेणुगोपाल को ढूँढ़कर पन्नीरू छिड़कना। सरस सल्लाप करने वाली रुक्मिणी के लिए स्वामी श्रीकृष्ण को ढूँढ़कर गुलाब जल छिड़को री। हे सखी सुहागिन स्त्रियाँ मोतियों की पीढ़ लगाए। चंपक का तेल मर्दन करें। पन्नीरू में नहलाइये, मल्लिका पुष्पों की माला डालो री। हे सुहागिन स्त्रियो, तुम सब मिलकर कर्पूर आरती उतारो।

इस प्रकार यक्षगानों में, गोल्ल सुद्धुलु आदि में, तेलुगू की हरिकथा प्रक्रिया में श्रीकृष्ण का वर्णन विस्तृत रूप में मिलता है।

●●

अवधी लोक साहित्य में श्रीराधाकृष्ण

❀ डॉ० विद्याबिन्दु सिंह

लोक जीवन में श्रीराधाकृष्ण प्रेम के देवता हैं। राधा के बिना कृष्ण का कोई रूप नहीं बनता और कृष्ण के बिना राधा का। उनके सहज उन्मुक्त प्यार को लोक जीवन में बड़ी उमंग से अपनाया गया है।

श्रीकृष्ण के बाल, किशोर, युवा और योद्धा रूप के साथ उनके प्रेमी युगल रूप की नाना प्रकार की छवियाँ लोक साहित्य में मिलती हैं। यद्यपि अवध क्षेत्र श्रीराम की लीला भूमि है किन्तु लोकमन ने श्रीराम और श्रीकृष्ण में कोई भेद नहीं रखा। फिर भी अवधी लोक साहित्य में श्रीकृष्ण की छवि एक विशिष्ट रूप में मिलती है। वसंत ऋतु के पर्व त्यौहारों में श्रीकृष्ण का रूप अधिक बिखरा है। उसी प्रकार वर्षा ऋतु में झूले की पेंगों पर राधाकृष्ण के झूला झूलने के गीत अधिक मिलते हैं। किन्तु अवधि लोक गीतों में दम्पत्ति के रूप में रुक्मिणी और कृष्ण का युगल रूप ही अधिक उजागर हुआ है। श्रीकृष्ण की बाँसुरी की चोरी का प्रसंग रुक्मिणी के साथ भी जुड़ा है।

महले से निसरी रानी रुक्मिन कवहिया के छाड़ि भई।
हँसि पूछै जसोमति माता, काहे के बहुआ अनमनि।
लाज सरम कै बतिया, कहत लाजि लागै।
सासू! आजु महल मोरे चोरी भई, तिलरी चोराइ गयी।
कइ लेहु सोरहो सिंगार, त बरहो अभोखन,
बहुअरि! ओढि लेहु नेतवा पिछौरी,

वृन्दावन चली जाहु, बंसिया चोराई लावहु।
बहिरे से आवहि श्रीकृष्ण अंगनवा मां गढ़ गये
हंसि पूछै जसोमति माता, काहे के बेटा जनमन।
लाज सरम कै बतिया, कहत लाजि लागै।
आजु वृन्दावन चोरी भई, बंसुरी चोराइ गयी।
यस जिनि जानिउ मोरी सासू! तिलरिया मोरी, पितरी कै।
तिलरी जड़ा हीरा लाल, तिलरिया मोरी अनमोल।
यस जिनि जानिउ मोरी मैया! बंसुरिया मोरी, बाँ कै।
बंसुरी जड़ा हीरा लाल, बंसुरियाँ मोरा प्रान बसै।

(रानी रुक्मिणी अपने महल से निकलकर उदास खड़ी हैं। माता यशोदा हँसकर पूछती हैं कि बहू! क्यों उदास हो ? रानी रुक्मिणी का उत्तर है—सास माँ! आज मेरे महल में चोरी हुई और मेरी तिलरी कोई चुरा ले गया। माता यशोदा मुस्कराकर कहती हैं—बहू! तुम आज सोलह श्रृंगार कर लो, बारहों आभूषण पहन लो और पिछौरी ओढ़कर वृन्दावन चली जाओ। वहाँ से श्रीकृष्ण की बाँसुरी चुरा लोओ। रानी रुक्मिणी ऐसा ही करती हैं। श्रीकृष्ण बाँसुरी कीचोरी से दु:खी होकर आंगन में आकर खड़े हो जाते हैं। हँसकर माँ उदासी का कारण पूछती है। श्रीकृष्ण कहते हैं—माँ! आज वृन्दावन में मेरी बाँसुरी की चोरी हो गयी। श्रीकृष्ण कहते हैं—माँ! कोई यह न समझे कि मेरी बाँसुरी बाँस की थी उसमें तो हीरा लाल जड़े थे, वह मेरी प्राणाधार है। रुक्मिणी बोल उठती है—माँ! कोई ऐसा न समझे कि मेरी तिलरी सस्ती पीतल की थी। उसमें हीरा लाल जड़े थे और वह बहुत मूल्यवान थी।)

इस प्रकार रुक्मिणी और श्रीकृष्ण की नोंकझोंक के बड़े मनोरम दृश्य मिलते हैं।

रुक्मिणी में दाम्पत्य का अहं है, रानी होने का गर्व है। एक

गीत में वे चकई से अपना हार जमुना जल से ढूँढ़ लाने को कहती है, वह अपनी विवशता है तब वे उसे प्रिय के विछोह का शाप दे देती हैं।

''गंगा-जमुनवाँ कै बिचवाँ कदम एक पेड़वा हो,
रामा तेहि पर परा है हिंडोलवा, झुलइ रानी रुक्मिनि हो।
झुलत-झुलत टूटा हरवा, गिरई जमुना जलवाँ हो।
अरे भरे बन की चकइया तू सोवत कि जागति हो,
चकई! जमुना के जल गिरा हरवा त बीनि लै आवहु हो।
अगिया लगावौं रानी हरवाँ, त बजर परै मोतियन हो।
रानी सँझवै से बिछुरा चकउवा, हेरत नारी पायउँ हो।
लेहु न चकई सरपवा, त कहवान मानिउ हो,
चकई-दिन भर रह्यू जँघिया जोरि, त रतिया बिछोहलि हो।''

(गंगा-जमुना के बीच कदम के पेड़ पर पड़े हिंडोले पर रानी रुक्मिणी झूला झूल रही हैं, उनका हार टूटकर यमुना-जल में गिर जाता है। वे चकवी से कहती हैं कि मेरा हार ढूँढ़ लाओ, मोती बीन लाओ! पर अपने प्रिय के विछोह से दु:खी चकवी कहती है—'रानी! हार को आगे लगे, मोती पर वज्र पड़े, यहाँ तो मेरा चकवा साँझ से ही बिछड़ गया है, ढूँढ़ने पर मिल नहीं रहा है। रुक्मिणी उसकी व्यथा को नहीं समझती, उसे शाप दे देती है—जाओ आज से दिनभर तुम अपने चकवे के साथ रहोगी पर रात को तुम्हारा बिछोह हो जायेगा।)

अवधी लोक साहित्य में महाभारत के कथा प्रसंग मिथकों के रूप में कुछ नये ढंग से भी प्रस्तुत हुए हैं। श्रीकृष्ण की लीला के विविध रूप लिलिहारी, मनिहारी और वैद्य रूप में अवधी लोकगीतों में प्रस्तुत हैं। संस्कार गीतों में जन्म से लेकर विवाह तक के गीतों में श्रीराम और श्रीकृष्ण दोनों ही शिशु, बालक, किशोर, ब्रह्मचारी और वर के रूप में उपस्थित हैं।

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी की प्रतीक्षा हर भारतीय मन को होती

है। उनके पुनः-पुनः जन्म लेते रहने का स्वप्न पूरा संसार मन में पालता है। श्रीकृष्ण जन्म का उछाह मथुरा-गोकुल की सीमा को पार कर पूरे विश्व में छा जाता है। नन्द-यशोदा के गोकुल के आँगन की बधाई का स्वर दशों दिशाओं को गुँजा देता है। श्रीकृष्ण की मोहक बाल छवि का बखान हर कण्ठ से फूट पड़ता है—

''गोकुल बजति बधइया, बहुत नीक लागै, बहुत छबि लागै हो।''
जन्में हैं दीनदयाल, गोकुल छबि लागै हो।
सुरही क दुधवा मँगावौं, कन्हैया नहवावौं, श्रीकृष्ण नहवावौं हो,
रामा! प्रेम पितम्बर लपटनियाँ, सिंहासन पौढ़ावौं हो
कान्हा के घुड़िला-घुड़िला बरवा, बहुत नीक लागै, बहुत छबि लागै हो।
रामा! जैसे नारियरवा क कलियाँ, बहुत नीक लागै, बहुत छबि लागै हो।
कान्हा की अँखियाँ कजरवा, बहुत नीक लागै, बहुत छबि लागै हो।
कान्हा की पइयाँ पैजनियाँ, बहुत नीक लागै, बहुत छबि लागै हो।
रामा! कमर जड़ाउर करधनियाँ सिर मुकुट विराजै हो।
कान्हा के छोटे छोटे गोड़वा बहुत नीक लागै, बहुत छबि लागै हो।
रामा! छोटे गोडे चलत बँकइयाँ, देखत नन्दबाबा अउर माता जसुमति हो।

श्रीकृष्ण के भक्तवत्सल रूप की झाँकी सर्वत्र मिलती है। अवधी लोक साहित्य में हर वन वृन्दावन है, हर माँ यशोदा, देवकी या कौशल्या है। हर बच्चे का जन्म नन्दलाल या दशरथ नन्दन के रूप में होता है। हर सौत कुबरी या कुब्जा है। हर परदेशी नगरी द्वारिका है और परदेशी प्रिय कन्हैया है। हर वह पेड़ जिस पर झूला पड़ता है वह कदम्ब का पेड़ होता है और उस पर राधाकृष्ण झूलने लगते हैं—

झूला परा कदमा की डारी, झूलैं राधा प्यारी ना।
राधा झूलैं कृष्ण झुलावैं, बढ़ि, बढ़ि पेंग बढ़ाई ना....।

हर रथ के सारथी कृष्ण कन्हैया हैं। कर्म और कर्मफल का गीता का दर्शन लोकमत जीवन भर जीता है।

लोक कथाओं-गीतों में श्रीराधा और रुक्मिणी तथा तुलसी वृक्ष को सौत के रूप में दिखाया गया है। जहाँ रुक्मिणी में अभिजात्य की गरिमा है वहीं राधा में सहज सरल समर्पित प्रेमिका का स्वरूप उभर कर आया है।

तुलसी का विवाह सालिग्राम श्रीकृष्ण से प्रति वर्ष कार्तिक पूर्णिमा शुक्ल एकादशी को रचाया जाता है। इसमें एक गीत गाया जाता है, जिसमें राधा के सौतिया डाह का चित्र है—

श्री नारायण! श्री गोपाल!
असाढहि तुलसी जामन लागीं, भादौं में तुलसी के दुइ-दुइ पात।
क्वार म तुलसी कंहरन लागीं, कातिक तुलसी कै रचा है वियाह।
हँसि-हँसि पूछैं राधा-रानी बाति, कृष्ण की एड़ियाँ महावर कहाँ लाग।
हमतो गयन प्यारी, माली फ्लवरियाँ मेंहनी कै पाती एड़िया मोरे लागि।
हँसि-हँसि पूछैं राधा रानी बाति, कृष्ण के धोतिया पियर काहें आजु।
हमतो गयन प्यारी धोबी धोबिघटवां, धोबिया बेटउआ पियर कै दीन।
काहे के राधा-रानी बात छिपावौं, हमरा औ तुलसी कै रचा है बियाह।
जो मैं जनतेवँ तुलसी सवति होइहैं, जमतै मैं देतेउँ जरि से उखारि।
जरि से उखरत्यौं, पयन तरे दबत्यौं, देत्यौं मैं गंगा जी में बहाय।
काहे के राधा-रानी जरि से उखरतिउ, काहे क देतिउ गंगा जी म बहाय।
कृष्ण की सेजियाँ परग नाही देबै, न होबै राधा जी! सवति तोहार।

(श्री नारायण जी! श्री गोपाल! आषाढ़ मं तुलसी अंकुरित हुई, भादौं में दो-दो पत्ते निकल आये, कुआर मं तुलसी कराहने लगीं (युवती हो गयीं) और कार्तिक में उनका विवाह रचाया गया।

श्रीकृष्ण को दूल्हे के रूप में देखकर राधा उनसे तरह-तरह के प्रश्न करती हैं और श्रीकृष्ण उत्तर देते हैं। राधा-कृष्ण के पावों में आज महावर कैसे लगी है? श्रीकृष्ण-मैं माली की फुलवारी में गया था वहाँ मेंहदी की पत्ती मेरी एड़ी में लग गयी। राधा-कृष्ण की आँखों में काजल कैसे लगा है? श्रीकृष्ण- मुझे कायस्थ के बेटे ने बुलाया था वहाँ चिट्ठी लिखते हुए स्याही लग गयी। राधा-कृष्ण की धोती आज पीली कैसे? श्रीकृष्ण- मैं धोबी घाट गया था वहाँ धोबी के बेटे ने पीली कर दी। फिर श्रीकृष्ण स्वीकार करते हुए कहते हैं राधा रानी! बात क्यों छुपाऊँ मेरा और तुलसी का आज विवाह रचाया गया। राधा- यदि मैं जानती कि तुलसी मेरी सौत होंगी तो उसके उगते ही मैं जड़ से उखाड़ देती, पावों तले दबाकर मसल देती और गंगा जी में फेंक देती। तुलसी कहती है- क्यों राधारानी! ऐसा कह रही हैं? मैं श्रीकृष्ण की सेज पर अपना पाँव नहीं रखूँगी और कभी भी मैं आपकी सौत नहीं बनूँगी।)

इस प्रकार राधा और कृष्ण के गहन प्रेम की अनेकानेक छवियाँ लोकगीतों मिलती हैं।

श्रीकृष्ण का लोकरक्षक रूप लोकचित्त को अभिभूत करता है। वह एक ऐसे ईश्वर हैं जो नटखट और लुभावने हैं। सौन्दर्य और प्रेम के साक्षात् स्वरूप हैं, कोमलता के आगार हैं, जो अपनी वंशी की धुन पर सबको ऐसा सम्मोहित कर लेते हैं कि सारा संसार उनके पीछे सब कुछ छोड़कर मंत्रमुग्ध सा चला आता है। श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व के अनेकानेक पहलुओं को अवधी लोक साहित्य ने वाणी दी है।

लोक संस्कृति राधा-कृष्ण के प्रति सहज भाव से अर्पित है। उनके चरित्र की सहज मानवीय संवेदना उन्हें सबका सगा बना देती है। वे सबका विष खींचकर अमृत देने वाले ऐसे चरित्र हैं जो सबका अहंकार तोड़ते भी हैं और सबके मान की रक्षा भी करते हैं। वे

सबका कालापन स्वयं ओढ़ लेते हैं और अपने आलोक से सबको प्रकाशित कर देते हैं।

अवधी में एक कहावत है—सब रंग कच्चा, सँवरिया रंग पक्का। इसीलिए इस साँवले रंग की कामना लोक मन करता है—

स्याम पिया मोरी रंग दे चुनरिया।
रंग दे, रंगाय दे, चाहे मोल मँगाय दे, अपने ही रंग स्याम रंग दे चुनरिया॥
यस रंग दे सँवरिया कबौं न छूटै। धोवै धोबिया चाहै सगरी उमिरिया।

यह पक्का रंग गौरांग राधा के सुनहले रंग से मिलकर इतना सलोना हो जाता है कि संसार उस पर मुग्ध हो जाता है।

एक गीत में ईश्वर से प्रार्थना है कि मुझे गोरा नहीं साँवला पुत्र देना क्योंकि गोरा रंग धूप से धूमिल हो जायेगा पर साँवला रंग साँवले सलोने कन्हैया की तरह मन मोहने वाला होगा—

बेरिया कि बेरी तोहै विनवौ ए हरि जी, गोरहर पूत जिनि देव।
गोरहर घामे धूमिल होइ जइहैं, हमका दिहेउ करिया पूत।
करिया रंग सलोने कन्हैया कै सबकै मन मोहि लेयँ।

दधि माखन लीला का दृश्य है—

''कान्हा मोरे कौने गुना दधि लूटी।
बरबस मोरि बँहियाँ झकझोरत, बात बनावत झूठी।
बेर-बेर मारत हो काँकर, सिर के मटुकिया फूटी।
अब का बोलैं हम मनमोहन, तोहरी राधा रुठी।''

श्रीकृष्ण की बाँसुरी का भुवनमोहिनी स्वर आज भी दसों-दिशाओं में गूँज रहा है, ऐसी आस्था हर भारतीय मन की है। यह स्वर सुनकर सुध-बुध खो देने वाली सखियों का विह्वल भाव गीतों में सहज व्यक्त हुआ है—

तोहार छिन जइहँ बँसुरिया।
काहें छेंकत हमरी दुअरिया, काहे फोड़त सिर की गगरिया।

तनवा जे मारैं हमका गुजरिया जाजि के मारे लेई नजरिया।
मातु जसोदा से करिबै गोहरिया, कनवा उमेठि तोहारि लेइहैं खबरिया।

इस बाँसुरी का प्रभाव ब्रज भाषा के छन्द में देखिये—

जल की न घट भरे, मग की न पग धरे।
घर की न कछु करे, बैठी भरे साँस रे।
एक सुनि लौटि गई, एक लोट पोट भई,
एकन के दृगन ते निकसि आये आँस रे।

इस बाँसुरी का प्रभाव लोकगीतों में भी विकल करने वाला है। गोपियाँ कहती हैं—तुमने वंशी क्यों बजायी ? मैं तो आ ही रही थी—

बंसी काहेंको बजाया मैं तो आती रही।
सोने की थारी में ज्योना परोस्यों,
अपने हरि जी के ज्योना जेंवाती रही।
झांझर गेडुआ गंगा जल पानी,
अपने हरि जी के गेडुआ घुंटाती रही।
लौंगा इलायची का बीरा जोरायों,
अपने हरि जी के सेजिया सोआती रही।
बंसी काहेंको बजाया मैं तो आती रही।

श्रीकृष्ण का जन्म वर्षा ऋतु में हुआ था, इसीलिए यह ऋतु हो गई, त्यौहारों की ऋतु हो कई, हिण्डोला झूलने, मेंहदी रचाने की ऋतु हो गई। राधा और नन्दकिशोर झूला झूल रहे रहे हैं। उस कवि का बखान करते हुए लोक भाषाओं के कवि थकते नहीं—

झूलत राधे, नवल किशोर।
घेरि घन घहरात बादल, घटा उठी घनघोर।
पवन मंद सुगन्ध डोलत, बरसि रह्यो चहुँ ओर।
जड़ित मणि दोउ खंब राजत, झोंक लेत झकोर।

मुकुट इत उत चन्द्रिका, इत स्याम उत तन गोर।
मनहुँ घन पर तड़ित चमकत, देखि नाचत मोर॥

श्रीकृष्ण नृत्य देवता हैं। साहित्य, कला और संगीत सब में उनकी लीला के अगणित प्रसंग हैं। एक ऐसा ईश्वर जो सबके साथ नृत्य करता है और हर एक को यह आभास देता है कि वह मेरे ही पास है। ऐसे लोक रंजक कन्हैया की उपस्थिति मन को आनन्द से सराबोर कर देती है। श्रीकृष्ण के इसी आनन्दी सहज स्वरूप ने पूरे विश्व को सम्मोहित कर रखा है। आज हर आस्थावान के मन में वृन्दावन है, पनघट है, कदम्ब है यमुना तट है और उसके मध्य उस महारास की कल्पना है, जो संसार में रहते हुए भी संसार को नहीं, केवल हरि को देखती है।

जन्माष्टमी का पर्व इसी अधिदेवता के बार-बार जन्म लेने की आकांक्षा और स्वप्न के साथ मनाया जाता है।

गोपियाँ कृष्ण के मार्ग रोकने पर उनके कदम पत्र तोड़ने और उसमें दही चखने का आग्रह करती है। वे आंचल में ही दही चखने के इच्छुक हैं—

घर से निसरी गुवालिनी, गुवालिनी बेंचन दान दही रे दही।
आंतर मिलि गै कन्हैया, गुवालिनी रोकत राह गली रे गली॥
तोड़ौ कदम कै पाता, गुवालिनी चीखउ दान दही रे दही।
पत्ता लागे हैं झाँझा, गुवालिनी अँचरे म चिखबै दही रे दही,
आँचर है मेरो जूग, गुवालिनी लरिकन लार बही रे बही,
कहिया गयू तूँ गवनवाँ, गुवालिनी कब तुहरे लरिका भये रे भये।
नैहर भैया भतिजवा, गुवालिनी वनहीं कै लार बही रे बही॥
झूँठ बोला न गुवालिनी, गुवालिनी दे देहु अँचरे दही रे दही।

आँचल में दही चखने का वर्णन प्रतीकात्मक है। गोपियाँ आँचल को बच्चों की लार गिरने से जूठा हुआ बताती हैं। कृष्ण उनसे

प्रश्न करते हैं कि कब गौना हुआ ? कब बच्चे हुये ? इन प्रश्नोत्तरी में संकेत हैं। गोपियाँ अन्त में सफाई देते हुए कहती हैं कि छोटे भाई भतीजों की लार गिरी है और तब कृष्ण बरजोरी करते हैं।

श्रीकृष्ण-राधा के केलि का वर्णन नागर अपभ्रंश में भी इस प्रकार हुआ है—राधा कहती हैं-हे कान्ह नाव को खेकर ले चलो, ले चलो, इस छोटी सी नाव को डगमगाओ नहीं, नदी से पार कर दो, जो चाहो ले लेना।

अररे वाहहि कान्त नाव, छोड़ि डगमग कुगति ण देहि।
तहं इथि नदिहि संतार देह, जो चाहसि सो लेहि॥

यही प्रसंग एक अवधी सोहर-गीता में भी प्रतिध्वनित हुआ है जिसमें गोपी द्वारा कृष्ण से नदी पार किये जाने की प्रार्थना है, बदले में गोपी सारे आभूषण देना चाहती हैं पर कृष्ण का एक ही हठ है—केवल आज की रात रुक जाओ, भोर होते ही उतार दूँगा। गोपी कहती हैं—घर में मेरी प्रतीक्षा हो रही होगी, मैं नहीं रुक सकती, लेकिन बरबस कृष्ण उनकी बाँह थाम लेते हैं और गोपी के साथ यमुना जी में उतरकर स्नेह जोड़ते हैं—

गोरी ग्वालिन बड़ी सुन्नरि, बात बोल चौकस,
भौंहन चढ़ी है कमान, दहिय बेंचै निसरैं।
दहिया बेंचि गुवालिनि लौटैं, कन्हैया रहिया रोकैं।
ग्वालिनि! दै देहु मोरी उतरैया मैं परवाँ उतारौं।
लै लेहु कनवा कै कुण्डल, हथवा कै मुन्नर
कान्हा लेहु गजमोतिया कै हार त परवा उतारौ
अगिया लगावौं कनवा कुण्डल, बजर परै मुन्नर
सुन्नरि! आजु रैनि बसि जात्यू, मैं भोरवै उतारौं।

(गोरी ग्वालिन बहुत सुन्दरी है, बात-बोल में चतुर-चौकस है, भौंहों की कमान खिंची है, दही बेचने जाती है। दही बेचकर

लौटती है, कृष्ण राह रोकते हैं। अरे ग्वालिन! मेरी उतराई दे दो तब पार उतरूँगा। वह कहती है, हाथ का कंगन, अँगुली की मुंदरी और गजमुक्ता का हार ले लो, मुझे पार उतार दो। कृष्ण कहते हैं इन सब आभूषणों में आग लगे, वज्र पड़े, मुझे ये सब नहीं चाहिए। सुन्दरी! तुम बस आज की रात रुक जाओ, भोर होते ही पार उतार दूँगा। गोपी कहती है—मेरे घर पर नौ सौ बछड़े भूखे होंगे। बच्चे रो रहे होंगे और तुमसे भी सुन्दर मेरे पति मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। पर कृष्ण बरजोरी करते हैं, उन्हें बतरस में विभोर करते हैं और यमुनाजल के भीतर मिलकर स्नेह जोड़ते हैं।)

इसी प्रकार चीर-हरण के सरस प्रसंग लोक गीतों में स्वाभाविक ढंग से वर्णित है। श्रीकृष्ण वस्त्र लेकर वृक्ष पर बैठ जाते हैं, राधा अपने वस्त्र माँगती हैं, उनके बार-बार प्रार्थना करने पर कृष्ण शर्त रखते हैं- जल से बाहर आ जाओ तो मैं तुम्हारे वस्त्र लौटा दूँगा। राधा पुरइन पत्र (कमल पत्र) पहनकर जल से बाहर आती हैं। कृष्ण बजाते हैं और वस्त्र दे देते हैं।

नटवर नन्दलाल गिरधारी, दैद्या चीर हमारी ना
चीर कँ लइके कदम चढ़ि बइठैं, जल मा नारी उधारी ना।
चीर तो तुहरी तबै हम देबै, जल से होव्यू न्यारी ना।
पुरइन पात पहिरि राधा निसरीं, कृष्ण बजावैं तारी ना॥

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि लोक-गीतों में कमलिनी जैसी राधा कमल पत्र (पुरइन) के वस्त्रों में लिपटी निकलती है। यहएक मौलिक उद्भावना है जो राधा की सहजता और विदग्धता दोनों का निर्वाह करती है।

लोक-साहित्य की राधा का स्वरूप निस्सन्देह एक गौरवपूर्ण और समर्पण की अद्वितीय नारी का रूप है। वह प्यार सम्पूर्ण है, उसमें न कोरी माँसलता है न कोरी आध्यात्मिकता। यह केवल प्रतीकात्मक

अध्यात्म नहीं है।

कुँवर कन्हैया के नाम के साथ राधा का नाम वैसे ही है जैसे पानी और लहर, रूप और छाया। राधा का नाम राधा इसलिए पड़ा कि वे रास मण्डल में प्रकट हुई थीं। पुराण कथा है कि एक बार भगवान कृष्ण रास की तैयारी किये बैठे थे, इतने में उनके बाँयी ओर सोलहर वर्ष की एक अनुपम सुन्दरी बाला प्रकट हुई जिनका सौन्दर्य वर्णन कर पाना कठिन था। ''रा'' अक्षर इसलिए उनके नाम में आया। प्रकट होते ही वे फूल चुनकर भगवान के चरणों में अर्पित करने के लिए 'धा' पड़ी (दौड़ पड़ी) इसलिये नाम का अगला अक्षर ''धा'' मिलकर राधा नाम पड़ा। ब्रह्मवैवर्त पुराण में इस तथ्य का उल्लेख है—

रासे सम्भूय गोलोके सादधाव हरेः पुरः।
तेन राधा समाख्याता पुराविदिभर्दिजतम॥
कृष्णेन आराध्यति इति राधा।
कृष्णं समाराधयति सदोति राधिका।

श्रीकृष्ण इनकी नित्य आराधना करते हैं इसीलिए इनका नाम राधा है और श्रीकृष्ण की ये सदा सम्यक रूप से आराधना करती हैं, इसलिए राधिका नाम से प्रस्तुत हुई हैं।

(डॉ. बलदेव उपाध्याय-भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा)

राधा का कृष्ण के प्रति और कृष्ण का राधा के प्रति प्रेम स्वार्थ मूलक नहीं। कहीं भी कुटिलता या दुराव छिपाव की छाया नहीं है। उनकी इच्छा पर वे न्यौछावर हैं। वे मान भी करती हैं तो उन्हें खिजाने के लिए नहीं, उन्हें रिझाने के लिये।

राजा सुचन्द्र बृषभानु गोप के रूप में जन्मे। उनकी पत्नी कलावती का दूसरा जन्म कीर्तिदा गोपी के रूप में हुआ। इन दोनों का विवाह हुआ। इन्हें ब्रह्मा ने वर दिया था कि स्वयं श्रीराधा तुम्हारी

बेटी के रूप में जन्म लेंगी। कीर्तिदा रानी गर्भवती हुईं। भाद्रपद की कष्टकी को राधा का जन्म हुआ। विचित्र संयोग देखिये कृष्ण भाद्रपद की कृष्ण अष्टमी को आते हैं, राधा भाद्रपद शुक्ल पक्ष की अष्टमी को। दोनों का रूप भी उसी के अनुरूप है। कृष्ण तो कृष्ण वर्णी राधा शुक्ल वर्णी। एक लोक गीत में यह भाव प्रकट है—

राधा प्रकट भई बरसाने, गोकुल में कुँवर कन्हाई,
चलो सखी दान लै आई।
भादौं मास अन्हारी अष्टमी मथुरा में जन्म कन्हाई,
चलो सखी दान लै आई।
भादौं मास अँजोर अष्टमी, वृषभान रानी कन्या जाई,
चलो सखी दान लै आई।
पाख अन्हियारा मा कारो कृष्ण, राधा उज्जर जोन्हाई,
चलो सखी दान लै आई।

राधा वृषभानु की कन्या राधिका का रूप बखाना नहीं जा सकता था। उनकी सखियों ने भी गोपियों बालाओं के रूप में अवतार लिया।

राधा और कृष्ण की मनोहर जोड़ी सदैव से भक्तों के हृदय को आनन्द देती आयी है जैसे सीता के साथ राम, पार्वती के साथ शंकर का नाम जुड़ा है उसी प्रकार राधा के साथ कृष्ण का।

इस कथा का अभिप्राय यह है कि श्रीकृष्ण के साथ तन्मयता ही राधा को फूल की तरह इतना हल्का बना देती है कि श्रीकृष्ण के केशों की डोरी पर पैर रखकर यमुना पार कर लेती हैं। साथ ही उनके प्यार का घट ऐसा भरा हुआ है कि सौ-सौ छिद्र भी उस जल को बाहर नहीं निकाल पाते। तभी वह श्रीकृष्ण की मूर्च्छा दूर कर पाती हैं। ये बहाने छिछले रूमानी प्यार के बहाने नहीं हैं। ये बहाने हैं अपने को पूरी तरह मिटाने के। इसीलिए श्रीकृष्ण की पटरानी रुक्मिणी से राधा

के प्यार का पलड़ा भारी पाया जाता है।

पौराणिक आख्यानों पर आधारित एक लोक-कथा मिलती है। रुक्मिणी बार-बार कृष्ण से कहती हैं कि आपकी राधा क्या आपको मुझसे अधिक प्यार करती है, जो रात-दिन उसी की सुध में डूबे रहते हैं? कृष्ण बात टालते हुए कहते हैं, रानी इस समय मेरे सिर में भयंकर पीड़ा हो रही है, यह उत्तर मैं फिर दूँगा। रुक्मिणी विकल हो उठती हैं, उपचार के उपाय करने लगी। कृष्ण ने कहा—'रुक्मिणी! यदि तुम अपने पैर का अँगूठा धोकर मुझे पिला दो तो मेरी पीड़ा दूर जाएगी। रुक्मिणी बोलीं आप मेरे पूज्य हैं मैं ऐसा कैसे कर सकती हूँ? श्रीकृष्ण को सभी प्रेयसी पत्नियों ने मना कर दिया। पर राधा के पास जब यह समाचार पहुँचा तो उन्होंने झट से अपने पैर का अँगूठा धोकर श्रीकृष्ण को पिला दिया। श्रीकृष्ण ने पूछा—राधे! तुम्हें संकोच नहीं हुआ। राधा ने कहा—संकोच कैसा? आप पीड़ा से छटपटाएँ और मैं संकोच में बैठी रहूँ?

यह कथा राधा-कृष्ण के अद्वैत भाव का प्रमाण है, राधा कृष्णमय हैं और कृष्ण राधामय।

राधा-कृष्ण का ब्रज एक व्यापक संसार है, वह सहज खुले ग्रन्थिहीन और छलछलाते हुए प्यार का क्षेत्र है। खेल-खेल में प्यार का प्रारम्भ होता है और इतना गहरा हो जाता है कि सब कुछ उसी में डूब जाता है। श्रीकृष्ण की लीला के माध्यम से ब्रज विस्तार पाता है। ब्रज एक भाव हो जाता है, एक भूमि नहीं रह जाता।

लोक मानस ने राधा-कृष्ण के उदात्त निष्कपट सहज प्रेम को बाल और किशोर सहचर के आदर्श के रूप में ही ग्रहण किया। चाहे संयोग के क्षण हों या वियोग के, राधा एक उदात्त, त्यागमयी गरिमा से युक्त दिखायी देती हैं। राधा के प्यार में अहंकार को तनिक भी प्रश्रय नहीं मिलता, जिसमें तनिक भर भी अहंकार हो, वह कभी

कृष्ण को नहीं पा सकता। यह बात सबसे अधिक राधा जानती हैं। यह तथ्य बार-बार कृष्ण के चरित्र से उद्घाटित हुआ है। इस सन्दर्भ में अनेक कथाएँ, गीत प्रचलित हैं।

श्रीकृष्ण का लोकरक्षक रूप लोकचित्त को अभिभूत करता है। वह एक ऐसे ईश्वर हैं जो नटखट और लुभावने हैं, सौन्दर्य और प्रेम के साक्षात् स्वरूप हैं, कोमलता के आगार हैं, सबके रक्षक हैं, जो अपनी वंशी की धुन पर सबको ऐसा सम्मोहित कर लेते हैं कि संसार उनके पीछे सब कुछ छोड़कर मंत्रमुग्ध सा चला आता है। श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व के अनेकानेक पहलुओं को अवधी लोक साहित्य ने वाणी दी है। लोक-मानस ने राधा के प्यार में उन्मुक्त उन्माद दिखलाया है, श्रीकृष्ण के प्यार में विदग्धता और रस-नागरता दिखलायी है।

एक गीत में श्रीकृष्ण गोदना गोदने वाली का रूप धारण करके आते हैं और उन्हीं से राधा कहती हैं— '***मेरे अंग-प्रत्यंग में श्रीकृष्ण का नाम गोद दो।*** 'राधा प्यार के भाव में ऐसी डूब जाती हैं कि सामने प्यारे हैं और वे उन्हें पहचान नहीं पातीं—

हरे रामा कृष्ण बने लिलिहारी, त लीला गोदवाय लेव प्यारी।
गाल पै लिखा गोविन्द, माथ पै लिखि द्या मुरलीधारी रामा,
हरे रामा होंठ हठीले स्याम, त लीला गोदवाय लेव प्यारी।
कान पै कुंज बिहारी लिखिया, गले पै लिखा गोपाला रामा,
हरे रामा पलक पियारा स्याम लीला गोदवाय लेव प्यारी।....
नाक पै नाग नथैया लिखि द्या, कान्हे रास रचैया रामा,
हरे रामा बाहैं लिखा ब्रिजराज त लीला गोदवाय लेव प्यारी।...
कलाई कृष्णा छलिया लिखि द्या, कोहनी कुँवर कन्हाई रामा,
हरे रामा अँगुरिन बन्सी बजैया त लीला गोदवाय लेव प्यारी।...
छाती पर छविराज छबीले, उर पर माखनचोर रामा,
हरे रामा कमर काली कमली वाला लीला गोदवाय लेव प्यारी।.

अंग-अंग पै मोहन की छवि, लिखि द्या तूँ लिलिहारी रामा,
हरे रामा सरबस दैबै दान, जाव बलिहारी रे प्यारी।

(कृष्ण लिलिहारी (गोदना गोदने वाली) बनकर राधा से कहते हैं—प्यारी! गोदना गुदवा लो। राधा कहती हैं—मेरे गाल पर गोविन्द लिख दो, माथे पर मुरलीधारी, होंठ पर हठीले श्याम, कान पर कुंजबिहारी, गले पर गोपाल, पलकों पर प्यारा श्याम, नाक पर नागनथैया कन्धे पर रास रचैया, बाँह पर ब्रजराज, कलाई पर छलिया कृष्ण, कुहनी पर कुँवर कन्हाई, अँगुलियों पर वंशी बजैया, छाती छबीले छविराज, उर पर माखनचोर, कमर पर काली कमली वाला लिख दो। मेरे अंग-प्रत्यंग पर मोहन की छवि अंकित कर दो, मैं तुम्हें सर्वस्व दान दे दूँगी, मैं तुम पर वारी जाती हूँ।)

कृष्ण लिलिहारी बने मुग्ध भाव से देख रहे हैं, अपनी भोली राधिका को। गोदना किसे गोदना है, किसे गोदवाना है, दोनों ही भूल गये हैं। कृष्ण देखते हैं कि राधा कृष्ण से ही कह रही हैं—लीला गोद दो, लीला गुदवा लो, कृष्ण सुन रहे हैं और सोच रहे हैं अंग-अंग में कृष्ण ही तो हैं, गोदना कहाँ गोदूँ? क्या गोदूँ? राधा यह शाश्वत लीला हर पल हर साँस में लिखवा रही हैं, वह अब मैं क्या लिखूँ और कैसे लिखूँ?

गोपियों के अंग पर कृष्ण की छवि अंकित करवाने का अभिप्राय गाथाओं में भी मिलता है। एक गाथा का भाव है—एक गोपी के कपोल पर कृष्ण का चित्र अंकित है, दूसरी गोपी चित्र का चुम्बन लेकर सुख पाती है।

दूसरी लीला मनिहारिन लीला है। वे चूड़ी पहचाने वाली श्यामा युवती बनकर राधा के सम्पर्क का सुयोग प्राप्त करने, चूड़ी पहनाने चलते हैं—

हरे रामा कृष्ण बने मनिहारी ओढ़ि लिये सारी रे हारी।
कानन में झुमका बारी रामा, माथे पै बिंदिया निराली रामा,
हरे रामा गले म सोहै हार, चाल मतवारी रे हारी।
लइके डलिया भरकै चुरिया, घूमै ब्रिज की खोरयाँ रामा,
हरे रामा कोई सखि पहिरन हार, पहिरि लेव प्यारी, रे हारी।
जब दुई चुरिया कलैया म डारैं, धीरे से हथवा ऊपर बढ़ावै रामा
हरे रामा चौंकि परीं प्यारी हँसी ब्रिजनारी रे हारी।

(कृष्ण साड़ी ओढ़कर मनिहारिन बन गये हैं, उनके कानों में झुमका, बाली हैं, माथे पर निराली बेंदी है, गले में हार है, मतवाली चाल है। डाली भर कर चूड़ी लिये हैं, ब्रज की गलियों में घूम रहे हैं। कोई सखी चूड़ियाँ पहनने वाली हो तो आकर पहन ले। राधा चूड़ी पहनने बैठती हैं। दो चूड़ियाँ कलाई में डालने के बाद मनिहारिन का हाथ ऊपर की ओर बढ़ता देख राधा चौंक पड़ती है। सभी ब्रजनारियाँ यह देखकर हँसने लगती हैं।)

राधा कृष्ण की झूला लीला तथा श्रीकृष्ण के छलिया रूपों के अनेकानेक प्रसंग हैं। श्रीकृष्ण वैद्य का वेश बनाकर बरसाने आये हैं। सखियाँ उन्हें लेकर बीमार राधा को दिखाने जाती हैं। वैद्य के नाड़ी देखने के ढंग से राधा चौंक पड़ती हैं, सखियाँ हँस पड़ती हैं—

हरे रामा हरे रामा बने कन्हैया वैद्य नन्द के लाला रे हरी।
दबा बटोरी भरिकै झोरी, घूमैं वृज की खोरी रामा।
हरे रामा कोई सखी बीमार बिरज की बाली रे हरी।
सुनी गुहारी ब्रिज की नारी बैद को लीन पुकारी रामा।
हरे रामा पड़ी राखी बीमार हाल बेहाला रे हरी।
पकरि पफलाई कुँवर कन्हाई, जतन से दियो दबाई रामा।
हरे रामा चौकि परी राध प्यारी, हँसी ब्रिज बाला रे हरी।

ईश्वर को भक्त आदेश भी कर सकता है ऐसा उसे विश्वास

है। वह कहता है कि आपके द्वार से कोई भी याचक खाली नहीं जाना चाहिए।

श्रीकृष्ण मैं तेरे सहारे से।
कृष्णा दुआरे एक मँगता पुकारै, झोली खाली न जाये दुआरे से।
कृष्णा दुआरे एक बाँझिन पुकारै, गोद खाली न जाये दुआरे से।
कृष्णा दुआरे एक कोढ़ी पुकारै, काया खाली न जाये दुआरे से।
कृष्णा दुआरे विद्यार्थी पुकारै, झोली खाली न जाये दुआरे से।

(हे कृष्ण! मैं तेरे सहारे हूँ। आपके द्वार पर एक भिखारी, वंध्या स्त्री, कुष्ठ रोगी, विद्यार्थी सभी खड़े हैं किसी की भी झोली खाली मत लौटाना।)

श्रीकृष्ण की विनय करते हुए भक्त कहता है—

नटवर नंदलाल बनवारी, सुन लो विनय हमारी ना।
भीर पड़ी प्रहलाद भगत पै, तब हरि नाम पुकारी ना।
खंभ फारि हरिनाकुश मारे, ऐसे भक्त हितकारी ना।
जग गजराज ग्राह गहि लीन्हों, तब हरि नाम पुरारी ना।
सुनि गुहारि नंगे पग धाये, तजिके गरुड़ सवारी ना।
भरी सभा में द्रौपदी पुकारैं, जाती लाज हमारी ना।
खींचत चीर दुसासन हारे, इतनी चीर बढ़ाई ना।
नटवर नंदलाल बनवारी, सुनलो विनय हमारी ना।

(हे नटवर! नंदलाल बनवारी मेरी विनय सुन लो। भक्त प्रहलाद पर जब भीर पड़ी तब खंबा फाड़कर प्रकट हुए और हिरण्यकश्यप को आपने मार दिया। जब गजराज को ग्राह ने जकड़ लिया तब अपने नाम की पुकार सुनते ही गरुड़ छोड़कर नंगे पग दौड़कर रक्षा करने आये। भरी सभा में अपनी लाज के लिए गुहार लगाती द्रौपदी की रक्षा आपने चीर बढ़ाकर की और दु:शासन हार गया।)

श्रीकृष्ण की अलौकिकता से अधिक उनकी लौकिकता से लोक मानव विमुग्ध होता है।

श्रीकृष्ण के दूर चले जाने पर भी लोकमन उनसे दूर नहीं जा पाता। वे साथ रहते हैं तो संसार हरा-भरा लगता है, वसंत सा खिलता है और वे दूर चले जाते हैं तो बिलख-बिलख कर रोने को लोक विवश हो जाता है। किन्तु वे दूर जाकर भी जा नहीं पाते हैं।

इस प्यार के देवता पर लोक रीझता है और न्यौछावर होकर उनकी लीला का बखान करता है। यह बखान केवल कण्ठ से नहीं रोम-रोम से अभिव्यक्त होता है। ऐसे चरित्र की गरिमा से समूल अवधी लोक साहित्य में वात्सल्य, प्रेम, मैत्री, सौहार्द्र और पराक्रम तथा भक्तवत्सलता के साकार विग्रह श्रीकृष्ण जन-जन के अपने हैं। वे लोक में ऐसे आत्मसात् हो गये हैं कि उनके बिना जीवन अधूरा लगता है। ये बड़े मन से विनम्र और साधारण होकर हमारे आराध्य के रूप में लोक मन में आस्था की ज्योति जला रहे हैं।

●●

भोजपुरी लोक गीतों में लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का स्मरण

❀ मदन मोहन सिन्हा 'मनुज'

जनसाधारण द्वारा अपने भावोद्‌गारों की सहज सामूहिक अभिव्यक्ति की परम्परा से उद्‌भूत है लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा, लोकोक्तियाँ और लोक नाट्य परम्पराएँ। इनसे अभिजात वर्ग के संस्कारित, सुसंस्कृत और परिमार्जित दिव्य अभिव्यक्तियों को अलग श्रेष्ठ तथा श्रेयस्कर सिद्ध करने के लिये उन्हें शिष्ट साहित्य की संज्ञा दी गई। वेद यदि भारत में प्राचीनतम उपलब्ध मानवीय भावनाओं से सृजन का प्रमाण हैं तो उससे पूर्व भी परम्परा से बोलने-सुनने, वादन, नृत्य और सोचने की भी परम्परा रही होगी, जिसका प्रतिफलन तत्कालीन सहज अभिव्यक्तियों के रूप में उस समय होता रहा होगा ऐसा अनुमान किया जा सकता है। आम धारणा यह है कि वेद यदि दिव्य अनुभूतियों का प्रतिफलन हैं तो परम्परा से पीढ़ी दर पीढ़ी उनके साथ-साथ आम आदमी की अनगढ़ सहज अनुभूतियाँ भी प्रसूत होती रही होंगी, जिन्हें यत्र-तत्र गाथा भी कहा गया होगा। इसी सोच को आगे बढ़ाते हुये लोक साहित्य मर्मज्ञ भाषा शास्त्रियों और विद्वानों ने लोक साहित्य को परिभाषित करते हुये कहा था—**''लोक-गीत मानवीय कृतित्व की वह सामान्य धरोहर हैं, जो विश्व मानव की भूमि पर प्राप्त हुई हैं—डॉ० सत्येन्द्र। सामूहिक गायन में इसके बीज सन्निहित हैं—देवेन्द्र सत्यार्थी। ''सहज स्फूर्त, प्रागैतिहासिक संगीत ही लोकगीत हैं''—लोकगीत न नये होते हैं न पुराने, वे वन वृक्ष की जड़ों की तरह गहरे होकर भी समय के**

साथ नये डालों पत्तों की बाढ़ द्वारा फूलते फलते रहते हैं—रायफ वी० विलियम्स।'' लोक वार्ता को लौकिक और स्वत: स्फूर्त जनसाधारण के आवेगों, हर्ष, विषाद, सूचना शिक्षण और रंजन का साधन मानकर इसे सदा सायास लोकोत्तर दिव्य और सुव्यवस्थित सुसंस्कृत और परिष्कृत मानने से गुरेज किया गया। यह शास्त्रीय न होकर मौखिक, वाचिक, श्रव्य और आम आदमी की धरोहर मानी गई है। इसमें अलंकरण की जगह पुनरावृत्ति पाई गई। व्यक्ति विशेष की कृति न मानकर इसे सबकी साझी-सम्पदा विरासत मानी गई और इसमें व्यक्ति परिस्थिति प्रयोजन और स्थान-काल-भेद से परिवर्तन किया जाना भी अस्वाभाविक नहीं माना गया। लय, छन्द पर ध्यान अधिक न देकर वस्तु-विषय और लोक लुभावन वर्णन तथा लोक मंगल कामना को महत्व दिया गया। उपलब्ध साधनों में संतुष्ट रहकर भी अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु सोने-चाँदी की वस्तुओं, मानिक दिया का उल्लेख और देवी-देवताओं को और अदृश्य शक्तियों को मूर्तिमान करने हेतु जन-साधारण की तरह उनके आचरण को सहज सामान्य माना गया है। सच पूछिए तो नीति, आचार, धर्माचरण और सामाजिक नियमन का आधार पीढ़ियों से सुना गया। लोक शिक्षण का अन्तर्मन पर प्रभाव ही बनता चला जाता है। लोक मानस को उसकी गहराई में जाकर समझने के लिए लोक साहित्य का संग्रह-सम्पादन-प्रकाशन समय की सबसे बड़ी जरूरत बन गई हैं, जिसे सामाजिक सरोकार से जुड़ी संस्थाएँ और सरकारें जितना जल्दी करायें कम हैं।

इसके पूर्व कि हम सैद्धान्तिक विश्लेषण और शास्त्रीय चर्चा में और अधिक उलझें, अपने आस-पास के परिप्रेक्ष्य का अवलोकन करें तथा यह महसूस करें कि किस प्रकार बसंत ऋतु प्रकृति को प्रभावित कर जनमानस पर अपने प्रभाव प्रसार रही है। इस प्रसंग में

एक गीत स्मृति में कौंधता है : इस लोक गीत में सलाह दी जाती है कि बरसाने मत जाओ कान्हा, राधे तुम्हारा पीताम्बर रंग देंगी, बाँसुरी छीन लेंगी और क्या-क्या हाल करेंगी, गीत में सुनें-

राधे पितम्बर रंग देईहें
जिन जा बरसाने की ओरी कन्हैया राधे पितम्बर रंग देइहें
नीला बदन लाल करिहें हो, बोरि अमीर के बोरी कन्हइया
तुम तो लालन वृन्दावन के, वो बृजमान किशोरी कन्हइया
तोहरे संग अहिर के बलकवा, उनके ग्वालिन गोरी कन्हइया
तो हरि ठकुराई इहाँ ना लागी, **लेइहें बँसुरिया छोरी कन्हइया**
राधे पितम्बर रंग देइहे
ये दिन ब्रज में बचिके रहना, जै दिन महीना है होरी, कन्हइया,
राधे पितम्बर रंग देइहे
राधे पीताम्बर रंग देइहें॥

बसंत के आते ही फागुन होरी की ध्वजा गाँव-गाँव हर चौराहे पर गाड़कर होलिका दहन, धरती बंदन, होली का राग रंग आरम्भ हो जाता है। एक-दूसरे लोकगीत में बात आगे बढ़ती है-

बरसाने की खोरी कन्हैया खेले बाम संग होरी
कबहू राधे श्याम बनत हैं, लिये सखा रंग घोरी,
ब्रज बनिता सब वन ठान आई,
मातपिता की चोरी।

होरी की धूम मची तो ऐसी कि वर्णन करना कठिन हो जाय किन्तु लोक रंग गाढ़ा होता चला जाए ऐसा ही एक प्रसंग निवेदन किया है-

''मार रहे पिचकारी श्याम बृजमान दुलारी तेरी गली
अंगड़ित गागर रंग भरे सागर में यदुवीर
मारत रंग भरि देह पर, भिगो देत तन चीर

सब बनवारी फेंके अबीरन रंग ढारी
घेर लेत फुलवारी श्याम बृजमान दुलारी तेरी गली
ग्वाल बाल के साथ में मार-मार किलकार
घेर लिया सारी गली खेलत फाग मुरार....''

ऐसे अनेकानेक रंजक लोकगीत यद्यपि गाँव-घर, गली गली, गाने की परम्परा प्रचलित है किन्तु बहुधा भोजपुरी लोकगीतों में कृष्ण लीला से सम्बन्धित वर्णन उतने नहीं उपलब्ध होते जितने भगवान श्रीराम के जीवन चरित्र से सम्बन्धित अथवा अवढर दानी शिवशंकर, भोलेनाथ, देवी दुर्गा, गंगाजी, तीज त्यौहार, पुत्र जन्म विवाह आदि संस्कार के गीत गाये जाते हैं। भगवान श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं के प्रसंग में, गोपी विरह और कृष्ण जन्माष्टमी के दिन गाये जाने वाले सोहर आदि गीतों भजनों में अवश्य बढ़-चढ़कर भगवान श्रीकृष्ण का स्मरण किया जाता है। यहाँ तक कि निर्गुण ब्रह्म उपासना के क्रम में गाये जाने वाले निर्गुन भजनों का भी चलन संतों के प्रभाव से वहाँ पर्याप्त है। कबीर आदि सन्तों के प्रभाव से भोजपुरी गीतों में जीवन की नश्वरता और हरि भजन की आवश्यकता पर बल देने वाले भजन प्रचलित हैं। जिस प्रकार ब्रज भाषा में बहुधा श्रीकृष्ण स्मरण व्याप्त हैं उसी प्रकार राम भक्ति परक रचनायें अवधी में सहज ही गाई सुनी जाती हैं। इसी प्रकार भोजपुरी भाषी क्षेत्र में शिव शक्ति और निर्गुन ब्रह्म को केन्द्र मानकर रचनाओं का गायन स्वाभाविक प्रतीत होता है। यहाँ तक कि लौकिक दैनंदिन प्रसंगों में भी प्रकारान्तर से राम का स्मरण किया जाता रहा है। संस्कार गीतों में भी ऋतु गीतों, फसल गीतों, श्रम गीतों में भी जहाँ-तहाँ श्रीराम सीता, देवी दुर्गा, शिवजी का उल्लेख होता रहता है। श्रीकृष्ण का स्मरण बाल लीलाओं, होली फाग, कृष्ण जन्म प्रसंग, गोपी विरह और उनके पुरुषार्थ तक सीमित हैं, जो लगता है कालान्तर में समय-समय पर पड़ने वाले

प्रभाव का द्योतक है, यही बात भाषा के प्रभाव के रूप में दृष्टिगोचर है। ब्रजभाषा का प्रभाव भोजपुरी की उन रचनाओं पर पड़ना भी इसकी पुष्टि करता है। यथा यह उदाहरण लें—

होरी खेलन जनि जा हो लाल केहू रंग डारि दे इहें
ब्रज की नारी बड़ा मदमाती नकभेसर पहिरइहें हो
केहू रंग डारि दे इहें।। आदि

भोजपुरी को विदेशी भाषाशास्त्री ग्रियर्सन आदि तथा स्वदेशी विद्वानों सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा तथा डॉ० उदय नारायण तिवारी आरोपीय भाषा समुदाय के अन्तर्गत हिन्दी की एक ऐसी बोली मानते हैं जो क्षेत्र विशेष तथा उससे बाहर दुनियाँ के कई देशों में प्रमुखता से बोली जाती है। भारत के उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल के जिलों बलिया, गाजीपुर, बस्ती, आजमगढ़, देवरिया, गोरखपुर, वाराणसी, संतकबीरनगर, चन्दौली, जौनपुर, सोनभद्र, मिर्जापुर, कुशीनगर, महाराजगंज, सिद्धार्थनगर, बलरामपुर, श्रावस्ती, अम्बेडकर नगर, बिहार के पश्चिमोत्तर जिलों भोजपुर, रोहतास, कैमूर, सारण, सीबान, गोपालगंज, पूर्वी चम्पारण, पश्चिमी चम्पारण, बक्सर, वैशाली, मध्य प्रदेश के सीधी, जसपुर, छत्तीसगढ़ के सरगुजा, झारखण्ड के पलामू जिलों में भोजपुरी बोली जाती है। साथ ही नेपाल के चार जिलों में भी उसका चलन है। ठीक उसी प्रकार जैसे फिजी, मारिशस, ट्रिनीडाड, सूरिनाम, टोबैगों गायना, वेस्टइण्डीज, जमैका, दक्षिण अफ्रीका और नीदरलैण्ड आदि देशों में बड़ी संख्या में भोजपुरी बोली समझी जाती है। ऐसा समझा जाता है कि भोजपुरी का एक स्वरूप है जो प्रवासी भारतीयों द्वारा अपने-अपने क्षेत्र में बोली जाने वाली अन्य बोलियों के प्रभाव के कारण विरूपित होकर प्रचलित हो गया है।

जहाँ तक लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण से सम्बन्धित गींतों का

है, वहाँ, कृष्ण यशोदा का प्रसंग, गोपी ग्वाल बाल प्रसंग, माखन चोरी, दही बेचने वाली ग्वालिन से छेड़छाड़ के अनेक रस रंग पूरित प्रसंग भोजपुरी में उपलब्ध है। ग्राम गीतों की पारम्परिक कतिपय रचनाओं को राग-रागिनियों में बाँधकर पूरब अंग की हिन्दुस्तानी गायकी का प्रयोग पूर्वी, चैती, कजरी, दादरा, ठुमरी रूप में सामने आया है। उनके मनहर बोल कभी-कभी मनमानस को मथते देर तक और दूर तक भी श्रोता को टेरते से रहते हैं। यथा—

''कोयलिया मत कर पुकार, मनवा लागे कटार.....'' (ठुमरी)

''बरसन लागी बदरिया रूम झूम के...........'' (कजरी)

''एही ठहयाँ झुलनी हेराइ गइले रामा, कहवाँ में ढूंढूँ....'' (चैती)

''झुकि-झुकि बहारे अँगनवा..........'' (पूर्वी)

''सइयाँ छोड़ दे नोकरिया...........'' (दादरी)

लोकप्रिय कुछ लोक धुनों और पारम्परिक लोकगीतों के बोल को उठाकर थोड़े फेरबदल के साथ उपयोग करते हुए कुछ फिल्में भी बनी, जिससे लोकगीतों के व्यापक प्रभाव का आंकलन किया जा सकता है।

सावन-भादों के महीने में गाये जाने वाली कजलियों में श्रीकृष्ण का स्मरण मनोहारी ढंग से हुआ है।

''झूला पड़ा कदम की डारी फूलैं कृष्ण मुरारी ना''......

अथवा

''रुनझुन बाजेला पैजनियाँ गोरी राधे रानी के
राधे झूलै सखि सब गावें, कान्हा झुलावें ना
पेंग बढ़ावै हँसि हँसि कान्हा सखि सब कजरी गावें ना
कथिकेर झूला कथिकेर डोर चानी के पाटा रेशन डोरी कृष्ण झुलावे ना
झूलेली राधा गोरी सब सखि मंगल गावेला।''

गोपियों के विरह का उल्लेख इस चौताल में देखते बनता है—

मोरी का तकसीर बिचारि तज्यो बनवारी
जेठ मास तन तपे अंग भावे ना सारी
बाढ़े बिरह असाढ़ बुन्द अदरा झनकारी
सावन सेज भयावन लागत, प्रीतम बिन बुन्द कटारी।
तज्यो बनवारी,
भादव गगन गंभीर प्रीति अति हृदय मझारी
करि गये क्वार करार गोपिन संग रहे मुरारी
कातिक रास रचत मनमोहन सब बिलखि कहैं ब्रजनारी।
तज्यो बनवारी,
अगहन अमित अनेक विकल वृखमान दुलारी
पूस लगे जाड़ देत कुब्जा को गारी
माघ बसंत हमें नहि भावत झूमर-बौतार धमारी
फागुन उड़त गुलाल कुमकुमा केसर डारी
नहि आयें, बिन कन्त चैत्र बिरहानल जारी
आपन जोर-बैसाख जनावत अब कैसे जिये ब्रजनारी॥
तज्यो बनवारी......''

चलते-चलते फाग की एक अन्य बानगी से कृष्ण लीला का स्मरण कर लें—

''मोहन नन्दलाल खेले बिरज में होरी
बरसाने की गुजरिया दहिया लेले जाय
बीच भेटइले कन्हइया हो दही ले ले उतार
ले गये कदम जुड़ छइंया हो, जूड़ चले बयार
ग्वाल बाल चले थाई हो सुनली ब्रजनार
मोहन नंदलाल खेलै होरी हो अपनी ससुरार

पिचकारिन रंग डारें, हो रंग उड़े गुलाल
रंग गई कोठा अटारी, हो रंग गये चहुद्वार
रंग गईली सारी सलूका हो गोरी हो गइली लाल
लाल धार जमुना के हो बहेली हाहाकार
मोहन नंदलाल खेले बिरज में होरी......''

''हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता'' का स्मरण करते हुये लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में भोजपुरी लोकगीतों की भावांजलि स्वरांजलि का यह प्रसंग यही अपनी पूर्णता को प्राप्त करता है, आशा है कि विद्वत्जन इसको हरिस्मरण का एक अध्याय मानकर हृदयंगम करना चाहेंगे।

●●

मणिपुरी लोक-जीवन में कृष्ण

❀ डॉ० देवराज

विश्व भर में अपनी लोक-संस्कृति, वैष्णवी-चेतना, कलाप्रियता, स्त्री-शक्ति, सामाजिक व आर्थिक भूमिका, खेलों में अतुलनीय कौशल, प्रकृति-सौन्दर्य, समृद्ध साहित्यिक परम्परा आदि के लिए प्रसिद्ध मणिपुर राज्य भारतवर्ष की पूर्वोत्तरी सीमा पर स्थित है। बाईस हजार तीन-सौ छप्पन वर्ग किमी० क्षेत्रफल वाले इस राज्य का नब्बे प्रतिशत भाग पर्वतीय है। इसमी सीमाएँ म्याँमार, असम, नागालैण्ड और मिजोरम से मिलती हैं।

अस्तित्व में आने से लेकर अब तक इस राज्य को कङलैपाक, सनालैबाक, मैत्रबाक, युवापलि, चक्पा, लङ्बा, कत्ते, मेखले, मोगले आदि नामों से पुकारा जाता रहा है। वर्तमान में यह 'मणिपुर' नाम से विख्यात है। इस राज्य के सभी नाम ऐतिहासिक और पौराणिक संदर्भ रखते हैं। उदाहरण के लिए इसका कङ्लैपाक नाम कङ्बा (सूखना) और लैबाक (भूमि, धरती, क्षेत्र) के मेल से बना है। लौकिक और पौराणिक मान्यता है कि जल-प्रलय के पश्चात् यह स्थान सबसे पहले जल से बाहर आया और सूखकर जीवन की सम्भावनाओं से युक्त बना। इसी प्रकार मणिपुर नाम के साथ शिव-पार्वती के नृत्य से सम्बन्धित पौराणिक प्रसंग जुड़ा हुआ है। मान्यता है कि राधा-कृष्ण के रासलीला स्थल पर शिव को प्रहरी नियुक्त किया गया था। संयोगवश वहाँ पार्वती भी आ पहुँचीं। शिव ने बहुत चाहा कि वे राधा-कृष्ण की रासलीला न देखें, किन्तु पार्वती ने किसी प्रकार देख ही लिया और शिव के साथ वैसा ही नृत्य करने

के आग्रह पर डट गईं। निरुपाय शिव पार्वती को लेकर किसी एकान्त स्थान की खोज करते-करते सुरम्य पर्वतों से घिरी एक विशाल झील के किनारे पहुँचे। पार्वती के साथ नृत्य के लिए उपयुक्त प्रकृति-मंच के निर्माण के प्रयोजन से उन्होंने अपने त्रिशूल से पर्वत में छेद कर दिया। सारा जल बाहर निकल गया और वह स्थान सूखकर एक मनोहर उपत्यका बन गया। नृत्य की उत्तम संपूर्ति हेतु गन्धर्वों ने संगीत प्रदान किया और नृत्य-स्थली को प्रकाशित करने के लिए स्वयं शेषनाग ने मणि का प्रकाश फैलाया। इस सुरम्य वातावरण में शिव-पार्वती सात दिन तक लास्य-नृत्य करके आनन्द मनाते रहे। मान्यता है कि शेषनाग की मणि के कारण इस स्थान का 'मणिपुर' पड़ गया।

प्राचीन मणिपुर में राज्य-व्यवस्था के निर्माण और विकास का श्रेय मीतै (मीतै) जाति को है। इस जाति में सात वंश-धाराओं के लोग सम्मिलित हैं, ये हैं—खाबा, चेङ्लै, लुवाङ्, खुमन, मोइराङ, अङोम और निङ्थौजा। कहा जाता है कि कभी ये सातों वंश मणिपुर के सात भू-भागों पर शासन करते थे। कालान्तर में निङ्थौजा वंश सबसे शक्तिशाली बन गया और अन्य सभी वंशों के राज्य उसके अधीन आ गए। ऐतिहासिक प्रमाणों के अनुसार सत्रहवीं शताब्दी के आस-पास संयुक्त मीतै-समाज अस्तित्व में आ गया था। उसके बाद का इतिहास सर्वज्ञात है।

मणिपुर और वैष्णव संस्कृति-धारा

मणिपुर के शेष भारत से सम्बन्ध, वहाँ वैष्णव-संस्कृति के आगमन, उसकी जन-स्वीकृति तथा प्रचार-प्रसार के सम्बन्ध में वर्तमान में प्रामाणिक रूप से किसी विचार या सिद्धान्त को मान्यता देना कठिन कार्य बन गया है। विद्वानों का एक वर्ग ऐसा है, जो सांस्कृतिक इतिहास और संस्कृति व पुराण से जुड़े कथा-प्रसंगों को आधार-सामग्री के रूप में ग्रहण करके इस मत का प्रतिपादन करता

है कि मणिपुर प्रारम्भ से ही वृहत्तर भारत से जुड़ा रहा है। प्रसिद्ध विद्वान् और स्थानीय इतिहासकार राजकुमार झलजीत सिंह का मानना है कि मणिपुर कभी भी शेष भारत से अलग-थलग नहीं रहा। सन् 1074 से लेकर 1469 के मध्य दोनों राज सत्ताओं के बीच सम्बन्ध अवश्य ही कमजोर हो गये थे, किन्तु इसे वे महत्वपूर्ण नहीं मानते। उनके लिए अधिक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक कारण हैं, जो मणिपुर को भारत से जोड़ता है। वे एक पौराणिक कथा का उल्लेख करते हैं, जो पात्रों के नाम की भिन्नता को छोड़कर पूरी तरह समान है। यह कथा धर्म देवता की है। धर्म अपने तीन पुत्रों, ब्रह्मा, विष्णु और शिव की परीक्षा लेने के लिए शव का रूप धारण करके एक नदी में बहता हुआ एक-एक कर तीनों पुत्रों के निकट पहुँचता है। ब्रह्मा और विष्णु उसे नहीं पहचान पाते, जबकि शिव देखते ही पहचान जाते हैं। उनके बाद में अन्य दोनों भाई भी अपने पिता को पहचान लेते हैं और तीनों मिलकर शव का अन्तिम संस्कार करते हैं। यह पौराणिक कथा बंगाल में बहुतायत से लोक-समाज में कही-सुनी जाती है। इसे मूलतः संस्कृत और प्राकृत से ग्रहण किया गया है। ठीक ऐसी ही एक पौराणिक कथा मणिपुर में भी प्रचलित है। इसके अनुसार आदि देवता, गुरु सिदबा ने अपने पुत्रों की परीक्षा के लिए साँड की मृत-देह का रूप धारण कर लिया और इम्फाल नदी में बहते हुए क्रमशः एक-एक पुत्र के निकट आए। बड़े और मँझले पुत्र ने उन्हीं नहीं पहचाना, किन्तु छोटे पुत्र ने देखते ही अपने पिता को पहचान लिया। उसके बाद अन्य दोनों ने भी पहचाना और तीनों ने मिलकर शव को बाहर निकालकर उसका अन्तिम संस्कार कर दिया। इस एक ही पौराणिक कथा के दो समाजों में प्रचलित रूपों से उनकी निकटता का अनुमान करना कठिन नहीं है। यहाँ शोधार्थियों के लिए यह संकेत करना आवश्यक है कि राजकुमार झलजीत सिंह ने अपनी खोजी हुई

कथा में किसी भी पुत्र का नाम नहीं दिया है। साधारण जन अतिया गुरु सिदबा के दो पुत्रों से ही परिचित हैं, वे हैं—सनामही और पाखङ्बा। तीसरे पुत्र का नाम प्रकाश में आना अभी शेष है, जो इस आलेख का विषय नहीं है।

लाइरेनमयुम इबुङोहल सिंह मणिपुर की राजकुमारी, चित्रांगदा और अर्जुन के विख्यात प्रसंग के आधार पर मानते हैं कि मणिपुर और वैष्णव-धारा का परिचय कराने वाले मूलतः चित्रांगदा और अर्जुन से उसे प्राप्त पुत्र, बभ्रुवाहन थे। वेयह भी मानते हैं कि सन् 424 ई० में मणिपुर के राजा खोइयोन तोम्पोक ने देवी दुर्गा की पूजा प्रारम्भ की थी। इस देवी को मणिपुरी भाषा में लाइखुरेम्बी-लाइखुत्लोङ्बी कहा जाता था। लाइरेनमयुम इबुङोहल सिंह ने यह जानकारी भी दी है कि मणिपुर के राज-परिवार में प्रागैतिहासिक-काल से ही गृह-देवता के रूप में विष्णु की पूजा की जाने लगी थी। ऐतिहासिक जानकारी के अनुसार एक बार ऊपरी बर्मा के पोङ राज्य का राजा मणिपुर को युद्ध में हराकर विजय-प्रतीक के रूप में विष्णु की प्रतिमा अपने देश ले गया था। पराजित मणिपुर के लोगों को अपमानित करने के प्रयोजन से वह उस प्रतिमा से शरीर खुजाने का काम लेने लगा। लोक विश्वास है कि ऐसा करने से उसके शरीर पर जहाँ-जहाँ खुजली थी, वहाँ-वहाँ फोड़े बन गए। कालान्तर में पोङ के किसी अन्य शासक, खिखोम्बा और मणिपुर के शासक, कियाम्बा के मध्य मैत्री स्थापित हो गई तथा पोङ के राजा ने मित्रतास्वरूप वह विष्णु-प्रतिमा मणिपुर के राजा को भेंट कर दी। यह विष्णु-विग्रह मणिपुर के विष्णु मन्दिर में प्रतिष्ठित किया गया। यह घटना सन् 1467 की है।

महाभारत में मणिपुर की चर्चा आदि-पर्व और अश्वमेघ पर्व में की गई है। आदि-पर्व में अर्जुन और मणिपुर के राजा, चित्रवाहन की पुत्री, चित्रांगदा के विवाह का प्रसंग है, जबकि अश्वमेघ पर्व में

अर्जुन और उसके पुत्र बभ्रुवाहन के युद्ध तथा उससे जुड़े अन्य प्रसंगों का वर्णन किया गया है। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि महाभारत के आदि-पर्व में मणलूरपुर और अश्वमेघ-पर्व में मणिपुर नाम का प्रयोग किया गया है। शोधकर्ताओं का मानना है कि ये दोनों नाम वर्तमान मणिपुर के ही हैं। इधर विद्वानों ने श्रीमंद्भागवत पुराण, भविष्य पुराण आदि में भी मणिपुर सम्बन्धी उल्लेख खोज निकाले हैं। इन सबसे यह पता चलता है कि मणिपुर का सांस्कृतिक और राजनैतिक सम्बन्ध प्राचीन काल से ही बृहत्तर भारत के साथ रहा है।

किन्तु इस मत से असहमति व्यक्त करने वाले अध्येताओं की भी कमी नहीं है। जिस मणिपुर की चर्चा इस आलेख में की जा रही है, वह महाभारत या अन्य पुराण-ग्रन्थों में उल्लिखित मणिपुर नहीं है, यह विचार तेजी से फैल रहा है। आज से लगभग पचास वर्ष पूर्व एडवर्ड गेट ने अपने इतिहास-ग्रन्थ में इस विचार का प्रतिपादन किया था कि महाभारत में जिस मणिपुर की चर्चा है, वह वर्तमान ओडिशा राज्य में है। इसका अर्थ था कि पूर्वोत्तर भारत में म्याँमार की सीमा से सटे मणिपुर को महाभारत से जोड़कर नहीं देखा जाना चाहिए। मणिपुर में ऐसे अनेक लेखक हैं, जो मणिपुर की मूल प्राचीन संस्कृति की स्वतन्त्र-स्वायत्त स्थिति पर जोर देते हैं तथा उसके प्रतीकों, मिथकों, पौराणिक-प्रसंगों, सांस्कृतिक-चरित्रों आदि की अन्य किसी भी व्याख्या को बलात् आर्यीकरण या इससे भी अधिक हिन्दुत्वीकरण मानते हैं। वर्तमान में तो इसे मणिपुर पर एक सुनियोजित सांस्कृतिक-आक्रमण में रूप में भी देखा जाने लगा है। इस परिवर्तन को हठात् अस्वीकृत करने या देश को तोड़ने वाला मान लेने वालों का यह ध्यान रखना चाहिए मणिपुर के इतिहास और राजनैतिक घटनाओं के प्रामाणिक ग्रन्थ, चैथारोल कुम्बाबा में भी जनता के धार्मिक-प्रतिरोध का उल्लेख मिलता है। इस विषय को बहुत सावधानी

के साथ चर्चित किया जाना चाहिए।

मणिपुर : लोक-जीवन में कृष्ण

लाइरेनमयुम इबुङोहल सिंह का मानना है कि मणिपुर के महाराज चराइरोङ्बा ने सन् 1698 में वैष्णव-धारा की मध्वाचार्य-शाखा को अपना लिया था और राधा-कृष्ण की उपासना प्रारम्भ कर दी थी। अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मणिपुर की राज्य-सत्ता संभालने वाले गरीबनिवाज भी पहले कृष्ण-भक्त ही थे। उन्होंने सन् 1713 में मध्वाचार्य-शाखा को छोड़कर रामानन्दी-शाखा अपना ली थी। इतिहास से पता चलता है कि इस परिवर्तन का साधारण लोगों ने एकजुट होकर विरोध किया था। जन-विरोध का नेतृत्व करने वाले तत्कालीन धर्म-गुरु, लौरेम्बा खोङ्नाङथाबा की सूझबूझ के कारण गरीबनिवाज रामानन्दी धर्म को राज-धर्म नहीं बना सके। अपनी इस असफलता के चिढ़कर उन्होंने प्रजा और दरबारियों को तरह-तरह से दण्डित किया था। इसी में यह आदेश भी शामिल था कि कोई भी धार्मिक गायन मणिपुरी भाषा में नहीं किया जा सकता, उसे बांग्ला-भाषा में करना होगा। यहाँ तक कि आदेश का उल्लंघन करने वालों के लिए शाप का निर्धारण भी किया गया था। यह जानकर आश्चर्य होता है कि इस राजकीय और धार्मिक दबाव का रामानन्दी-शाखा को कोई लाभ नहीं पहुँचा, उल्टे इससे मध्वाचार्य-शाखा और राधा-कृष्ण के प्रचार-प्रसार को ही बल मिला। हुआ यों कि मणिपुरी जनता ने बांग्ला की धार्मिक-गायन में अनिवार्यता के चलते बंग्ला-पदावली और ब्रजबुली-पदावली को कण्ठस्थ करना प्रारम्भ किया। इन दोनों में ही राधा-कृष्ण के विलक्षण रूप तथा उनके दिव्य-कलात्मक और अध्यात्मिक प्रेम का सहज व लोक-रुचि के अनुकूल चित्रण किया गया था। स्मरणीय है कि मणिपुरी जन-जीवन में पहले सह ही कलाप्रियता, सौन्दर्यप्रियता और लालित्य के

प्रति यथेष्ठ आकर्षण विद्यमान था, अतः राधा-कृष्ण के इस रूप को जनप्रियता प्राप्त होने में किसी बाधा का सामना नहीं करना पड़ा। वैसे भी मणिपुर में आदिकाल से लाईहराओबा नामक धार्मिक नृत्य प्रचलित था, जो नाट्य और नृत्य का मूल आधार है तथा जिसमें सृष्टि-निर्माण और स्त्री-पुरुष के प्रकृत-प्रेम की समस्त संभव भंगिमाएँ विद्यमान हैं। राधा-कृष्ण के प्रेम के स्वरूप से इसकी सहज संगति है। दूसरी ओर राधा-कृष्ण को केन्द्र में रखकर मणिपुर पहुँचने वाला गौड़ीय वैष्णव मत तत्कालीन मणिपुरी लोक-जीवन की शैली से दूरी बनाकर नहीं चला। इसके लिए उसने अपने को थोड़ा-बहुत परिवर्तित भी किया। इससे भी उसे जनप्रियता प्राप्त करने में आसानी हुई। यही काम रामानन्दी शाखा नहीं कर सकी। वह अपनी लक्ष्मण-रेखा से बाहर नहीं आई, अतः एक बार राज्य-सत्ता का सहारा पाकर भी मात्र कुछ मन्दिरों तक सिमटकर रह गई। इससे पता चलता है कि कोई भी धर्म, धार्मिक-शाखा अथवा धार्मिक चरित्र साधारण जनता और लोक-जीवन से कटकर जीवित नहीं हर सकता।

लालित्य और सौन्दर्यप्रिय मणिपुरी लोक-जीवन में कृष्ण को सबसे अधिक प्रचारित-प्रसारित करने का श्रेय महाराज भाग्चन्द्र को है। भाग्यचन्द्र प्रारम्भ से ही बंगाल के गोस्वामियों के सम्पर्क में थे। उन्हीं के समय सन् 1977 के लगभग मणिपुरी लोक-जीवन में कृष्ण के प्रति अद्‌भुत आकर्षण देखने को मिला। इसके मूल में राधा-कृष्ण की परकीया-भाव पूजा का प्रचलन था। राधा को लीला-रस के आस्वादन की आधार माना जाता है। परम स्वतन्त्र पुरुष कृष्ण भी राधा के वशीभूत हैं। राधा रासेश्वरी और कुंजेश्वरी हैं। इसी के साथ वे कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति भी हैं, अतः कृष्ण की उपासना के लिए राधा को प्रसन्न करना अनिवार्य है। इससे लोक-जीवन में कृष्ण और राधा की युगल मूर्ति स्थापित हुई। यहाँ

वृन्दावनवासी हो जाते हैं। जो गायक-गायिकाएँ होते हैं, वे भी साधारण के स्तर से ऊपर उठकर श्रीनिवास, मुकुन्द आदि माने जाते हैं, जो चैतन्य महाप्रभु के संग कीर्तन किया करते थे। रास में जो बालक कृष्ण का अभिनय करता है, उसका भी साधारणत्व तिरोहित हो जाता है तथा माता-पिता उसे कृष्ण के रूप में ही देखते हुए भक्ति और प्रेम से सराबोर होकर रास के आध्यात्मिक आनन्द में लीन हो जाते हैं। स्पष्ट है कि इस पूरे आयोजन में शास्त्रानुमोदित कृष्ण और राधा की नहीं, बल्कि लोकानुमोदित राधा-कृष्ण की प्रमुखता है। यही कारण है कि वर्तमान में इस प्रसंग पर खोज किए जाने की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी है कि मणिपुरी रास पर वहाँ के पारम्परीण लाइहराओबा नृत्य का कहाँ तक प्रभाव है तथा उसके गठन में शास्त्रीयता और लोकोन्मुखी कला-प्रवृत्तियों की भूमिका का स्वरूप क्या है?

कृष्ण-चरित्र से गोष्ठ-लीला का अभिन्न सम्बन्ध है। यह मूल रूप से श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के पन्द्रहवें अध्याय से प्रेरित है तथा इसका सम्बन्ध कृष्ण की बाल-लीलाओं से है। मणिपुर में भक्तों ने कृष्ण की गोकुल-लीला, वृन्दावन-लीला, किशोर-लीला आदि को अपनी लोक-रुचि के अनुसार ढाला है। वहाँ गोष्ठ-लीला के दो रूप प्रचलित हैं—नन्दालय-लीला और जन्म थोकपा (खुले स्थान पर की जाने वाली लीला)। मणिपुरी लोक-वृत्ति ने कृष्ण द्वारा बलराम को गाय दुहना सिखाने, सखाओं द्वारा कृष्ण बलराम को खेलने के लिए बुलाने आने, यशोदा द्वारा मना करने, श्रीदामा और सुबल द्वारा कृष्ण को छोड़ देने की विनती करने, बलराम के कहने पर मान जाने, कृष्ण-बलराम द्वारा खाने की चीजें माँगने, खुले मैदान में गोष्ठ भंगी अचौबा तथा गोष्ठ वृन्दावन भंगी नृत्य आदि में पुराण और शास्त्र को बहुत पीछे छोड़कर लोक-रुचि

को प्रमुखता दी है तथा कृष्ण को अपने हृदय में बसाने का प्रमाण प्रस्तुत किया है। गोष्ठ-लीला का प्रारम्भ कुछ लोग भाग्यचन्द्र महाराज के समय से मानते हैं और कुछ गम्भीर सिंह के काल से।

लाइरिक हायबा-थीबा मणिपुर की एक अन्य महत्वपूर्ण परम्परा है। इसका सम्बन्ध मुख्यत: चैतन्य चरितामृत और राधा-कृष्ण सम्बन्ध ग्रन्थों के लयात्मक वाचन तथा उनकी व्याख्या से है। इस परम्परा में एक व्यक्ति चयनित ग्रन्थ से किसी वाक्य अथवा अंश का सस्वर गायन करता है और दूसरा उसकी व्याख्या करता है। यह व्याख्या वाला अंश पूरी तरह लोक-रुचि से प्रभावित होता है। इसका प्रमाण यह है कि व्याख्याकर्ता श्रोताओं की रुचि व स्तर को ध्यान में रखते हुए संदर्भित प्रसंग में अपनी ओर से आवश्यकतानुसार जोड़ने-घटाने को स्वतन्त्र होता है। इसके अतिरिक्त वह व्याख्या को आकर्षक रूप देने के लिए कथा की अभिनयात्मक प्रस्तुति को महत्व देता है। यह अभिनय-तत्व लोक-नाट्य के अभिनय-तत्व के अनुकरण पर टिका होता है, जिसके निर्धारण में लोक-रुचि ही निर्णायक होती है। सबसे बड़ी बात यह कि इस पूरी प्रस्तुति में लोक-जीवन में बसे कृष्ण ही भक्त-दर्शकों के समक्ष आते हैं।

मणिपुरी लोक-जीवन में कृष्ण की उपस्थिति वैष्णवी संस्कृति से जुड़े पर्वों-त्यौहारों में बहुत अधिक दिखाई देती है। याओसङ मणिपुर का बहुत बड़ा लोक-पर्व है। इसकी आधार-कथा कृष्णावतार चैतन्य महाप्रभु के जन्म से जुड़ी है। इस पर्व के अन्तर्गत हलंकार का दिन विशेष होता है, जिसमें मणिपुर घाटी के कोने-कोने से होली-पाला (होली गायकों के दल) आकर इम्फाल नगर के केन्द्र में स्थित श्रीगोविन्द जी के मन्दिर में बने विशाल मण्डप में श्रीकृष्ण के जीवन प्रसंगों का गायन करते हैं। यह गायन संगीत, नृत्य और नाट्य तत्वों से भरापूरा होता है। होली-पाला एक श्वेत अश्व पर भगवान विष्णु

की प्रतिमा लेकर एक विशेष पताका लेकर चलता है। इसे विधि का पालन दूसरा होली-पाला भी करता है। श्रीगोविन्द जी के मन्दिर के मण्डप में गायन करते समय गायक भक्तों पर वहाँ बने जलाशयों और विशाल पात्रों में भरा रंग पिचकारियों से बरसाया जाता रहता है। याओसङ का समापन-आयोजन श्रीविजयगोविन्द के मन्दिर के परिसर और उससे लगे मैदान में सम्पन्न होता है। यहाँ भक्तों के विशाल समुदाय के समक्ष कीर्तन-गायन और बरसाने की होली का आयोजन होता है। यह सूचना रोमांचकारी हो सकती है कि बरसाने की लट्ठमार होली की अभिनय-प्रस्तुति में भाग लेने वाली मणिपुरी युवतियाँ गोपियों के विशिष्ट वेष में होती हैं और हाथों में सजी हुई डण्डियाँ लिए रहती हैं। कृष्ण-लीला का गायन करते हुए होली-पाला के लोग जैसे ही उन्हें गाते हुए छेड़ते हैं, वे ऊन पर बड़ी कोमलता से प्रहार करने लगती हैं। उस क्षण पूरा वातावरण कृष्णमय हो जाता है और लोग भाव-विभोर अपने घरों को लौट जाते हैं।

यहाँ एक तथ्य का उद्घाटन आवश्यक है, जो यह सिद्ध करता है कि मणिपुरी लोक-जीवन को कृष्ण से बांग्ला और ब्रज-बुली के माध्यम से परिचित कराया गया, किन्तु उसने उसे अपनी मातृ-भाषा में ग्रहण करने में अधिक रुचि दिखाई। इतिहास को खंगालने से पता चलता है कि प्रारम्भ में तत्कालीन शासन-सत्ता ने स्थानीय कवि-भक्तों को मणिपुरी भाषा में कृष्ण-चरित्र सम्बन्धी प्रसंगों की रचना से दूर ही रखा था। श्रीगोविन्द जी के मन्दिर में तो दीर्घ-काल तक मणिपुरी भाषा में कोई भी धार्मिक-गायन नहीं किया जा सकता था। धीरे-धीरे जनता ने अनुभव किया कि उसे मातृ-भाषा में इसका अधिकार मिलना चाहिए। भक्त जनता की इस भावना को स्वर प्रदान करते हुए जोन्स्टन हाईस्कूल के छात्रों ने मणिपुर के महाराजा के सामने भारी विरोध प्रदर्शन किया और माँग

की कि लोगों को डोल-जात्रा (याओसङ) के अवसर पर मणिपुरी महाराज को इसी विरोध-प्रदर्शन से पहली बार पता चला कि मणिपुरी भाषा में भी धार्मिक-गायन उतने ही स्वाभाविक एवं प्रभावशाली रूप में किया जा सकता है, जितना किसी अन्य भाषा में। उन्होंने आश्चर्यजनक प्रसन्नता के साथ छात्रों की माँग मान ली। तब से अन्य अवसरों पर भी मणिपुरी भाषा के प्रयोग का मार्ग खुल गया। इस घटना से कृष्ण और मणिपुरी लोक-जीवन के सम्बन्ध का एक नया रूप सामने आता है।

रथ-यात्रा, झूलन और जन्माष्टमी के अवसर पर भी विभिन्न रूपों में लोक-रुचि देखने में आती है। रथ-यात्रा की परम्परा ओडिशा से बंगाल होते हुए मणिपुर पहुँची है। इसमें शास्त्रीय-पक्ष के अलावा भक्तजन घी में डूबी बत्तियाँ जगन्नाथ, बलराम और सुभद्रा की मूर्तियों पर चढ़ाते हैं। पुरी आधी जली बत्तियाँ वापस भक्तों को लौटा देते हैं, जिन्हें वे अपने घर के द्वार पर रख देते हैं। लोक मान्यता है कि इससे भगवान कृष्ण उनकी संकटों से रक्षा करते हैं। यहाँ कृष्ण मणिपुरी लोक-जीवन में रक्षक के रूप में विराजमान हैं। इस अवसर पर खुबाक इर्श नामक कीर्तन भी किया जाता है, जिसमें लोक-गायक अपनी कल्पना से कृष्ण के जीवन सम्बन्धी कुछ बातें जोड़ते चलते हैं। इसी प्रकार जन्माष्टमी के अवसर पर भक्तजन मन्दिरों में एकत्र होकर ब्राह्मणों के मुख से कृष्ण-जन्म की कथा का श्रवण करते हैं, जिसकी प्रस्तुति पर निश्चित रूप से लोक-रुचि और लोक-मानस का प्रभाव देखा जा सकता है। झूलन का त्यौहार कृष्ण और राधा को झुलाने से सम्बन्धित है। इसे इङेल (श्रावण) की शुक्ल तृतीया से पूर्णिमा तक श्रीगोविन्द जी के मन्दिर में और शुक्ल एकादशी से पूर्णिमा तक मुहल्लों में मनाया जाता है। इसमें छोटी लड़कियों, कुमारी-युवतियों, विवाहित नवोढ़ाओं और वृद्धाओं के गायन-दल

(इन्हें पाला कहा जाता है) विशेष वेशभूषा में सजकर सजे हुए मंजीरे लिए राधा और गोविन्द सम्बन्धी गायन प्रस्तुत करते हैं। इस अवसर के लिए प्रचलित गीतों की रचना में कृष्ण का वह रूप सामने आता है, जिसे मणिपुरी लोक ने अपनी भावना के अनुसार गढ़ा है। कृष्ण-चरित का मूल ढाँचा सबका जाना-पहचाना है, किन्तु उसके रंगों में मणिपुरी लोक-जीवन की छटा अलग दिखाई देती है।

मणिपुरी लोक-समाज में अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियों के साथ ही कृष्ण और राधा की मूर्तियों की भी प्रतिष्ठा है। वहाँ के प्रमुख मन्दिरों, श्रीगोविन्द जी और श्रीविजय गोविन्द जी (इम्फाल) के साथ-साथ श्रीगोपीनाथ जी (निङ्थौखोङ) और मदनमोहन जी (कोङ्बा बाजार के निकट) में कृष्ण की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की गई हैं। इनमें से प्रथम दो मन्दिरों में महाराज भाग्यचन्द्र द्वारा कायना नामक पर्वत पर उगे कटहल के वृक्ष के काष्ठ से निर्मित कराए गए विग्रह हैं। किंवदन्ती है कि असम के शासक स्वर्गदेव की राज-सभा में अपनी सत्यता सिद्ध करने सम्बन्धी घटना के प्रसंग में स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने भाग्यचन्द्र के स्वप्न में आकर निर्देश दिया था कि वे उनके विग्रह बनवाकर प्रतिष्ठित करें। इसी अवसर पर भाग्यचन्द्र ने रास-परम्परा भी प्रारम्भ की थी, जिसमें उनकी पुत्री बिम्बावती मंजरी ने श्रीराधा की भूमिका अभिनीत की थी। मणिपुरी में राधा-कृष्ण के युगल तथा श्रीकृष्ण के एकल धातु-विग्रह भी प्राप्त हैं, जिनमें से कुछ को मणिपुर सरकार द्वारा संरक्षित कर लिया गया है और कुछ का विवरण संजोकर उन्हें उनके स्वामियों के पास ही रहने दिया है। इसी प्रकार का राधा-कृष्ण का एक युगल-विग्रह (MNP/C-317-318) सरकार द्वारा संरक्षित है, जिसमें कृष्ण की ऊँचाई 18 सेमी० और राधा की ऊँचाई 16 सेमी० है। यह कृष्ण की त्रिभंगी मुद्रा का विग्रह है। पंजीकरण सं० 133 एवं 134 के अन्तर्गत राधा-कृष्ण

का एक विग्रह इम्फाल नगर के मोइराङ्खोम मुहल्ले में श्रीनारायण शर्मा के गृह-देवालय में है। इसमें श्रीकृष्ण 15 सेमी० के हैं, जबकि राध 17.5 सेमी० की। कृष्ण त्रिभंगी मुद्र में हैं और राधा सम-पद मुद्रा में खड़ी हैं। दोनों की आँखों की भंगिमा पर बंगाल का प्रभाव है। यह विग्रह उन्नीसवीं शती का माना जाता है। इम्फाल नगर के केन्द्र में विद्यमान पं० पूर्णानन्द सरस्वती की ठाकुरबाड़ी में प्रतिष्ठित राधा-कृष्ण का विग्रह (MNP/1-294 & 295) बाँसुरी बजाते कृष्ण और लास्य-मुद्रा वाले हाथों से युक्त राधा का है। बाल कृष्ण (गोपालदेव) का एक विग्रह (MNP/C-162) श्री बी० नारायण शर्मा के मोइराङ्खोम स्थित घर के मन्दिर में है, जिसमें बालकृष्ण के बाएँ हाथ में लड्डू हैं और एक घुटना भूमि पर टिका है। इसी मुद्रा वाला बालकृष्ण का एक विग्रह (MNP/C-133) इम्फाल नगर के ब्रह्मपुर नहाबम लैकाई नामक मुहल्ले में श्रीमधुमंगल शर्मा के गृह-मन्दिर में भी प्रतिष्ठित है। इम्फाल के ही खगेमपल्ली मुहल्ले में श्री बी० अचौ शर्मा एवं श्रीमती बी० अङौबी देवी के घर के मन्दिर में बालकृष्ण का विग्रह है, जिसमें कृष्ण का एक हाथ भूमि पर टिका है, एक हाथ ऊपर को उठता हुआ खाली है, एक घुटना भूमि पर, जबकि दूसरा उठने की कोशिश का संकेत करता हुआ तथा गर्दन ऊपर उठी है। इन विग्रहों के विषय में यह जानना आवश्यक है कि ये सभी काँसे के हैं, इनकी शारीरिक भंगिमा पर अधिकांशत: बंगाल की सौन्दर्य-दृष्टि का प्रभाव है, इनमें से कुछ नग्न हैं, कुछ में कृष्ण विशेष प्रकार का शिरोभूषण धारण किए हुए हैं, कुछ में वे घने घुँघराले केश वाले हैं तथा इनमें से अधिकांश उन्नीसवीं शताब्दी, अर्थात् मणिपुर में वैष्णव-धारा के स्वर्ग-युग से सम्बन्ध रखते हैं।

कृष्ण और राधा-कृष्ण के इन विग्रहों के इतिहास, स्थिति और वर्तमान में भी इनके प्रति भक्तजनों के लगाव को देखकर कहा

जा सकता है कि मणिपुरी लोक-जीवन के एक बड़े हिस्से पर कृष्ण-चतना का अमिट प्रभाव है। कुछ पारम्परिक-देवता ऐसे भी हैं, जिन्हें कृष्ण की भाँति ही लीलाधारी माना जाने लगा है। मणिपुर की सांस्कृतिक राजधानी मोइराङ् में थाङजिङ् देवता का मन्दिर है। कहा जाता है कि विश्व प्रसिद्ध लोकगाथा, खम्बा-थोइबी के नायक-नायिका का जीवन थाङजिङ् देवता की ही लीला थी। अनुमान किया जा सकता है कि यह कृष्ण की मणिपुर के प्राचीन देवताओं की पंक्ति में स्थान बनाने और उनके स्वरूप को प्रभावित करने की घटना है। इससे भी मणिपुरी लोक-समाज में कृष्ण की गहरी पैठ का पता चलता है।

मणिपुरी लोक-वृत्त में कृष्ण

मणिपुरी लोक-जीवन में कृष्ण की गहरी पैठ देखकर हमें इस भ्रम का शिकार नहीं होना चाहिए कि मणिपुरी भाषा की लोक-गाथाओं, लोक कथाओं, लोक-नाट्य आदि में भी कृष्ण रचे-बसे हैं और ये गीत लोकगीतों की भाँति ही लोक-कण्ठ में विद्यमान हैं। कृष्ण सम्बन्धी गीतों के कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

श्री राधा-गोविन्द झूलन के गीत—

ऊजबदा मित्‌की पेनबा नाईदबा
श्री नन्दगी मपारि श्याम शक्हेनबा।
श्री यमुना मपाल रास मएडलदा:
थेकना नौना जगोई थेल्लिबा॥
पाप चेल्लबी लाइबक थीरबी;
अनीगी चरनदा चङ्जबा हेतबी ननाइबु।
अनीगी श्रीचरन काउहनबीगनु;
शिरमदाइदा अनीबु उइहनबियु॥
हे हे।

श्री राधा-गोविन्द होली—

नुङाइना होली शानै नन्दगी मचा कृष्णना।
शान्नरि नन्दगी मपारि श्रीराधिका लोयनना॥
श्रीगोविन्द इबुङो आबिरना पुमङाङ ङाङ्लै॥
श्रीमति राधिकासु आबिरना पुमङाङ् ङाङ्लै॥
नुङाइबा ङमखै लैतरे हराओना होली शान्नरे॥

फाक (ग) —

होली शानै गोपीशिङ्ना माइकै मरिदा कोयदुना।
ब्रजगोपीशिङ्ना आबिर चाड़रि शङ्बान्नबा श्यामदा।
कानूना आबिर चाइरि फजबी माइथोङ्दा
हन्ना चाइरे श्यामदा आबिर खुबाम खुबाम।

होली पाला का गीत—

हरि शान्नरि; गौर शक्हेलबना,
येङ्उ नबद्वीप असिदा
गौरगदाधरगा; लोइनना शान्नै
नुङाइबा ङम्खैलैतरे॥
थौगल्लि रस खङ्लबा; भक्तशिङ लोइनै,
असुम्ना गौरकिशोर नुङाइन् शान्नरि॥

महाभारत के कथा-प्रसंगों और चैतन्य महाप्रभु के जीवन को आधार बनाकर मौखिक-पाठ और व्याख्या की जो परम्परा में विद्यमान है, उसके कारण वाचिक-परम्परा की कृष्ण सम्बन्धी सामग्री भी लोक-वृत्त का अंग बन गई है, किन्तु अन्य विधाओं में कृष्ण अनुपस्थित हैं। इस अभाव के मूल कारणों का संकेत आलेख में कई जगह किया गया है। यह संकेत अपने आपमं पूर्ण है, ऐसा मानना भूल ही होगी; अत: शोधार्थियों और उनके सहारे शोध संस्थानों को ठोस कदम उठाने चाहिए। इस तथ्य का पता लगाया जाना चाहिए कि जो

कृष्ण लोक-व्यवहार में गहरे पैठ गए, वे ही लोक-साहित्य का व्यापक विषय क्यों नहीं बन सके। यह ध्यान दिलाना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है कि जैसे-जैसे इतिहास के अध्ययन की नई-नई दृष्टियाँ प्रयोग में आ रही हैं और जिस गति से तथ्यों पर से पर्दा उठ रहा है, वैसे-वैसे ही समग्र वैष्णवी संस्कृति-धारा को कटु प्रश्नों के घेरे में खड़ा किए जानें की घटनाएँ हो रही हैं। स्थिति इतनी भयावह हो गई है कि प्रश्नों को प्रति-प्रश्नों से काटने, प्रश्नकर्ताओं को निहित स्वार्थी कहने, विषय का राजनीतिकरण करके राष्ट्रीय-संस्कृति को नुकसान पहुँचाने का हौवा खड़ा करने, शत्रु-शक्तियों के हाथों में खेलने जैसी बातें कहने से काम चलने वाला नहीं है। इस प्रकार की थोथी, किन्तु बड़ी-बड़ी बातें करके सामाजिक-सांस्कृतिक सामरस्य को अब तक काफी नुकसान पहुँचाया जा चुका है; अतः इस प्रवृत्ति पर रोक लगनी चाहिए और यथार्थवादी तथा खुली विचार-दृष्टि से सच का सामना करते हुए पारस्परिक समझ विकसित करने के विषय में सोचना चाहिए। भारतवर्ष की समग्र संस्कृति को नये सिरे से समझने की कोई सार्थक कोशिश प्रारम्भ हो, तो यह महादेश नई चुनौतियों पर विजय पाने की शक्ति पा सकेगा।.......

संदर्भ-स्त्रोत :

1. The Lost Kingdom: Royal Chronicle of Manipur, L. Joychandra Singh, 1995, P. 37.
2. A History of Assam, Edward Gait, 1963, P. 322.
3. Encyclopaedia of North-East India, P. 189.
4. Sources of the History of Manipur, Editor - Dr. S.N. Pandey
5. Introduction to Manipur, L. Iboongohal Singh, 1987, P. 31
6. Bronzes of Manipur, Dr. K. Indrani Devi, 2005.
7. मणिपुर : विविध संदर्भ, 1988, पृ० 94
8. मणिपुर : भाषा और संस्कृतिए 1988, पृ० 67

मगही लोकवार्ता में श्रीकृष्ण

❀ डॉ० रजनीश प्रसाद मिश्र

मगध लोकभाषा का शब्द है। मगध संस्कृत, पालि, प्राकृत और हिन्दी खड़ी बोली में स्वीकृत शब्द है। यह मगध क्षेत्र के लिए प्रयुक्त होता है। मगही सम्प्रति मगध क्षेत्र की बोली भाषा है। पहले मागधी प्राकृत बोली जाती थी। मगह की राजनैतिक सीमा अस्थिर रही है।

संस्कार गीतों में श्रीकृष्ण का अत्यन्त भाव प्रवण एवं लोक लुभावन का चित्रण हुआ है। एक सोहर श्रीकृष्ण जन्म के आख्यान पर आधारित है, देवकी की वेदना से अभिभूत होकर यशोदा प्रतिज्ञा करती है कि वह इसके पुत्र का लालन-पालन करेंगी और जैसा भी होगा कंस से इसकी रक्षा करेंगी। कृष्ण के जन्म होने पर देवकी स्वयं बच्चों को लेकर आती हैं और यशोदा की गोद में रख आती हैं। यहाँ वासुदेव के द्वारा कृष्ण को ले जाने का कोई उल्लेख नहीं है। इस गीत के अन्त में काव्य के शिवेतर रक्षतए के आदर्श का अनुपालन करते हुए अन्य मंगल काव्यों के समान यह निर्देश किया गया है जो इस गीत को गाकर सुनाती है। उनका सौभाग्य जन्म-जन्मान्तर तक अचल रहता है तथा उन्हें पुत्र फल प्राप्त होता है कई गीतों में इस प्रकार के निर्देश मिलते हैं—

घरवा से इकसल यशोदा रानी संभु दिन सावन हे,
ललना जमुना के इरि-झिरि पनिया पनिया सोहावन हे
सात पाँच मिलालन संगतिया से सोने घइला माथे लेलन हे
गावहि मंगल गीत देखत सुर मोहहि हे

केउ सखी मुँह धोवे केउ सखि हॉसि हॉसि पानी भरे हे
ललना केउ एक बार तिरियवा कपसि लोर ढारइ हे,
नइहकई नाबोडिया अउरो मलहवा मइया है
ललना के विधि उतरव पार तिरिया एक रोवड़ है
बॉधि के काछ कछोटा अउर छाती धइला लेइ है
जाई जुगल जमुना पार काहे गे तिरिया रोवाहि हे
कि तोहर दूर कि सासुर कि नइहर दुःख पड़ल हे
नई मोरा नइहर दूर न सासुर दुख पड़ल हे
नई मोरा कंत विदेश कोख दुख दुखित हे
सात पुत्तर दइब देलन कंस सभीह लेलन है
ललना आठवे गरभ नगिचायल से भरोसा नइहे
चुप रहुॅ चुप रहुँ देवीकी त सुनहू वचन मोरा है
अपना बलक मोरा दंहिए हम पोस पाल देवो
मोन चाठरतेल पइचा मेल सभी चीज पाइचा भेल हे
कौखवा उधार नई सुन लो कइसे धीरज बाधव हे
किया साखी सुरजवा त किया साखी गंगा माता हे
ललना किया साखी सुरुज के जोत धरम मोर साखी हथि हे
हो गैल कौल करार वचन हम पालन हे
लाख देवन मोरा करस तइयों नई मानव हे
आयल भादो के रात किसन पख अठमी है
लि हलन कृष्ण अवतार सकल जग जानुहू है
खुल गेल बजर के बाड़ पाहर सब सूतल हे
छेवकी ले भगलन जसोदा के द्वार महल उठे सोहर हे
जे एहि मंगल गावहि गाई सुनावयीं
जलम जलम अहियात पुतल फल पावहि

एक दूसरे सोहर गीत में पौराणिक तथ्य के विपरीत देवकी

के गर्भ से नहीं वरन् यशोदा के गर्भ से ही श्रीकृष्ण का जन्म हुआ है। यशोदा के गर्भ के लक्षण पाने पर सूचना पाकर नन्द अपने पंडित से यह मालूम होने पर स्वयं त्रिभुवननाथ ही शिशु के रूपमें अवतरित होंगे सभी हर्षोल्लास में जुटाने लगते हैं और आनन्दोत्सव प्रारम्भ हो जाता है। यह भी जनमानस में पौराणिक तथ्यों को अपने अनुकूल कर लिया। सब ओर जहाँ नागर नाचने आते हैं वहाँ पमडिया आकर नाचने-गाने लगते हैं।

एक सोहर में दशरथ के पुत्र नन्दलाल हैं जो ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वथा विपरीत है। लोकगीत तो भावधारा का वाहक मात्र है। वहाँ सभी पिता वसुदेव और दशरथ हैं। सभी नवजात शिशु नन्दलाल और राम हैं।

एक अन्य सोहर में नाउन नंदजी से पियरी रंगा देने को कहते हैं। नंद जी ने सभी गुणियों को संतुष्ट कर दिया और नाउनियों को अयोध्या का राज देने को कहा किन्तु वह सोने की सिकड़ी पर अड़ी रही। जसोदा ने सोने की सिकड़ी एवं रोहिणी ने हँसुली दे दी। राजा ने पाट-पीताम्बर दिया। यहाँ नंद, यशोदा, रोहिणी और सुनयना का उल्लेख हुआ है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से गलत होने पर लोक गीत की दृष्टि से क्षम्य हैं

एक दूसरे गीत में प्रसव वेदना के समय देवकी के मन में अपने किये पर पश्चाताप होता है। सखियों के समझाने-बुझाने के साथ वह पति के पास जाती है। देवकी रात्रि की पहली पहर में द्वार पर केले के थंम गाड़ने दूसरे पहर में तुलसी के पौधे लगाने, तीसरे पहर में कटोरे में दही रख जाने और चौथे पहर में **'श्यामल कुमार'** को सेज पर रख जाने का स्वप्न देखती हैं। उसी समय वसुदेव जी हँसते हुए कहते हैं अब यदुनाथ श्रीकृष्ण अवतार होगा और हमारा जन्म सार्थक हो जायेगा। यहाँ हरे थंम तुलसी और दही का स्वप्न

किसी अच्छी वस्तु के प्राप्ति का द्योतक है। भारतीय परम्परा में बड़े पुरुषों के अवतार से पहले उनकी माताओं के स्वप्न का उल्लेख होता आया है।

एक गीत के कथन में रुक्मिणी के पुत्र कामना का आश्रय लेकर बालक के आयुष्य की शुभाकांक्षा की गयी। रुक्मिणी ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव के पास जा-जाकर पुत्र-सम्पति की भीख माँगती है। ब्रह्मा पुत्र देना चाहते हैं किन्तु कुछ दिन के लिए। इस पर शिशु पृथ्वी पर नहीं आना चाहता है। अन्त में अजर-अमर का वरदान पाकर शिष्य प्रद्युम्न पृथ्वी पर अवतीर्ण होता है।

मेरी दादी प्रभाती गाती थीं। उनका आत्म निवेदन दीनता और करुण की निष्पत्ति आज भी हृदय में रोमांच पैदा कर देता है। इसमें कृष्ण के वृन्दावन छोड़ने के बाद की स्थिति का वर्णन है–

भाव हई भवनवा मोर श्याम बिनु भाव हई भवनवा मोर

एक अन्य गीत में भगवान शिव कृष्ण के बाल रूप का दर्शन करने योगी रूप में आये हैं। यशोदा उनको भिक्षा देना चाहती हैं पर वे बालक कृष्ण को दिखाने का आग्रह करते हैं। यशोदा उनके रूप को देखकर बालक के डर जाने की आशंका व्यक्त करती हैं। अन्त में शिव के आग्रह पर यशोदा बालक कृष्ण को लाती हैं। दोनों एक-दूसरे को कृत-कृत्य करते हैं।

●●

कुमाउनी लोकवार्ता में श्रीकृष्ण

❀ प्रो० देवसिंह पोखरिया

नव सहस्राब्दि में 9 नवम्बर 2000 ई० को भारत के 27वें राज्य के रूप में उत्तरांचल नामक नये हिमालयी राज्य की स्थापना हुई। 1 जनवरी 2007 को केन्द्र सरकार द्वारा 'उत्तरांचल प्रदेश का नाम बदलकर 'उत्तराखंड' कर दिया गया। इस राज्य के पूर्व में नेपाल, पश्चिम में हिमाचल प्रदेश, उत्तर में तिब्बत, चीन और दक्षिण में उत्तर प्रदेश के पीलीभीत, बरेली, रामपुर, बिजनौर और सहारनपुर जनपद स्थित हैं।

उत्तराखंड राज्य दो प्रशासनिक इकाइयों—कुमाऊँ मंडल और गढ़वाल मंडल में विभक्त है। इस राज्य के पूर्वी भाग को **कुमाऊँ** कहा जाता है। कुमाऊँ क्षेत्र में कुमाउनी भाषा बोली जाती है। कुमाउनी मिश्रित संस्कृत का प्रथम अभिलेख चंद शासक थोहर चंद का प्राप्त होता है, जिसका काल 989 ई० है। यहीं से कुमाउनी भाषा विकसित मानी जाती है। कुमाउनी का लोक साहित्य समृद्ध है, कुमाउनी में लोक-साहित्य के गीत, लोककथाएँ, लोकगाथाएँ, लोक-नाट्य, कहावतें, मुहावरे, पहेलियाँ आदि सभी रूप प्राप्त होते हैं।

भारतीय लोक जीवन में कृष्ण अपने शास्त्रीय और ईश्वर रूप के साथ ही एक लोकरंजक नायक के रूप में जीवन्त मिलते हैं। भला कृष्ण का व्यक्तित्व लोक-मानस के आकर्षण का विषय बनने से कैसे रह सकता है? कुमाऊँ की लोकवार्त्ता में भी कृष्ण लोकोपकारक के साथ ही लोकरंजक रूप में दृष्टिगत होते हैं। कृष्ण के जिस महान् अलौकिक व्यक्तित्व ने संतों, भक्तों, सूफियों को रिझाया,

उसी ने उत्तराखंड की लोकमानसिकता को भी गहरे प्रभावित किया। यहाँ की लोकवार्ता में कृष्ण परम पुरुष रूप के साथ ही समस्त मानवीय गुणों और दुर्बलताओं के रूप में भी चित्रित मिलते हैं। कुमाउनी लोकगीत मध्यकालीन भक्ति काव्यधारा की सगुण भक्ति शाखा के कृष्ण रूप से विशेषतया प्रभावित हैं। इन गीतों में कृष्ण के चरित्र का कथात्मक प्रभाव मात्र न होकर उसकी प्रतीकात्मक व्यंजना भी हुई है। कुमाउनी लोकगीतों में कृष्ण के श्रवण काव्य परम्परा का अधिक प्रभाव दिखलाई पड़ता है। यहाँ के लोकजीवन ने जिस भाव, तय, ताल, संगीत से कृष्ण लीलापरक आख्यान सुने या देखे उन्हें अपनी स्थानीय भाषा शैली तथा वर्गगत मानसिकता के अनुरूप लोकगीतों में तथा नीतियों में रचा-बसा लियो।

कुछ कुमाउनी लोकगीत मूलत: परिनिष्ठित कृष्ण काव्य के कवियों—चैतन्य, सूर, मीरा, रसखान आदि से गृहीत होकर लोक-व्यापी बने हैं। इस श्रेणी के गीतों में कुमाउनी के होली गीतों को रखा जा सकता है। इन गीतों में भाव ही नहीं भाषा के स्तर पर भी ब्रजभाषा का प्रभाव भी परिलक्षित होता है।

कुमाऊँ में दो तरह के लोक गीत प्रचलित हैं—मुक्तक गीत और लोकगाथाएँ। मुक्तक गीतों के अन्तर्गत झोड़ा, चांचरी, बैर, छपेली, भगनौल, फाग (शगुनाखर) तथा अन्य स्फुट धार्मिक गीत आते हैं। लोकगाथाओं के अन्तर्गत—जागर, घड्याली, भाड़ौ, रमौल, मालूशाही आदि गाथारूप आते हैं। इन दोनों प्रकार के गीतों में सकुन आँखर (मंगलगीत) और होली गीत तथा गाथाओं में जागर, घड्याली और रमौल गाथाओं के अन्तर्गत कृष्ण के विविध रूप देखने को मिलते हैं। स्फुट और मुक्तक गीतों की अपेक्षा लोकगाथाओं में कृष्ण का वर्णन अधिक आया है। इन गाथाओं में कुछ गाथाएँ महाभारत और श्रीमद्भागवत की कथाओं से सम्बन्धित हैं और कुछ गाथाएँ

नितान्त स्थानीय हैं। जिन गाथाओं में कृष्ण नायक अथवा पात्र के रूप में आये हैं वे इस प्रकार हैं—**कृष्ण सत्यभामा, कृष्ण रुक्मिणी, उषा अनिरुद्ध, बाणासुर, कृष्ण चंद्रावली, कुसुमा कोलिन, गंगू रमोल, सिदुआ बिदुआ रमोल, ब्रह्म कमल, सूरज कमल** आदि।

कुमाउनी लोकगीतों और लोकगाथाओं में श्रीकृष्ण चरित के विविध रूपों की सरस अभिव्यक्ति हुई है। यह अभिव्यक्ति कुछ सीमा तक भाव रूप में और कुछ सीमा तक प्रतीक रूप में हुई है। श्रीकृष्ण चरित के अनेक रूपों का ग्रहण लोक ने जिस रूप में किया है, उस भाव तथा प्रतीक के अभीष्ट अर्थ से जनमानस को असीम आनन्द की अनुभूति होती रही है। इन गीतों में कृष्ण की बाललीला, माखनचोरी, मुरलीवादन, ग्वालबालों की दिनचर्या, गोप-गोपी संवाद आदि का मनोहारी वर्णन मिलता है।

बाल कृष्ण—मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में कृष्ण धारा के कवियों ने कृष्ण के बाल रूप की सुन्दर झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं। सूरदास आदि कवियों के बाललीलापरक अनेक पद भजन रूप में लोगों द्वारा गाये, सुनाये एवं सुने जाते हैं। लोक ने कृष्ण के जीवनवृत्त और उसकी विशेषताओं यथा वेशभूषा, बाँसुरी, खेल-क्रीड़ाएँ, माखनचोरी आदि को बड़ी तन्मयता से अपनाया है। सावन में झूले झूलकर, कृष्ण जन्माष्टमी के पर्व एवं व्रत को महत्व देकर, लोक-जीवन में कृष्ण की महानता को अपनाया गया है।

कृष्ण के बाल रूप का सहज वर्णन कुमाउनी लोकगीतों में भी उपलब्ध होते हैं। कुमाउनी के एक होलीगीत में जब गायक सस्वर भाव व संगीत की मृदु संयोजना के साथ लीला गान करता है, तो समूचा वृत्त हमारी आँखों के सम्मुख उभर आता है, जिसमें भादों की भरपूर रात में कृष्ण के जन्म लेने, जिन बारह स्थानों पर राजा ने पहरा बैठाया था, उन बारह स्थानों के पहरेदारों व कोतवालों के सो जाने

तथा भगवान कृष्ण के जन्म की शुभवेला पर जय-जयकार होने का प्रसंग वर्णित है—

''भलो भलो जनम लियो स्याम राधिका भलो जनम लियो मथुरा में,
भरत भादो की राती में हो, भर भादो की राती में
कृष्ण लियो अवतार राधिका भलो जनम लियो मथुरा में।
बारै चौकी राजा की, हो बार चौकी राजा की,
नगर फिर कोतवाल, राधिका भालोजनम लियो मथुरा में।
बार चौकी सोइ गई, हो बार चौकी सोई गई
सोये नगर कोतवाल, राधिका भलो जनम लियो मथुरा में।
यसि सुभ घड़ी विचारी भगवन हो गइ जै जै कार''

बाल लीला— कुमाउनी लोकगीतों में कृष्ण की बाल लीला विषयक कई प्रसंग मिलते हैं। लोक कवि पुत्र जन्म के हर्षोल्लास की व्यंजना करने तक ही सीमित नहीं रहा है, बल्कि उसने कृष्ण जन्म कथा जैसी सुनी है, वैसे ही उसका गायन किया है और गीत में पिरोया है। लोककवि श्रीकृष्ण की बाल लीला का वर्णन करते हुए कहता है कि मथुरा में कन्हैया लीला रचा रहे हैं। उनके हाथ में चाँदी की गेंद है तथा सोने का डंडा है। उन्होंने गेंद को उछाल कर मारा तो गेंद यमुना में गिरी। कृष्ण गेंद लेने यमुना नदी में गये। वहाँ उन्होंने नाग की छाती पर चरण रखकर नाग-मर्दन किया। कालिय-दमन के इस प्रसंग को लोकगीत में इन शब्दों में व्यक्त किया गया है—

''मथुरा मंडल बीत कान्हा लै ख्याल रचो है।
काहे को गेंडुवा हात काहे को डन्ड बनो है?
रुपि को गेंडुवा टोल जमना में जाय गिरी है।
धर छतिया पर पांव नागै नांथि लियो है।
कीनो अरज भगवान मांफी मांगि लियो है।
ऐसो किसन भगवान मथुरा उजारि कियो है।।''

माखन लीला व मुरली वादन—कुमाउनी होली गीतों में माखन चोरी और गोपियों से माखन माँगने का मनोरम वर्णन हुआ है। कृष्ण की मधुर मुरली बज रही है और यदुपति खेल रहे हैं। कृष्ण गूजरी से कहते हैं कि तुम कहाँ से आ रही हो और दही बेचने कहाँ जा रही हो ? गूजरियाँ उनसे कहती हैं कि हम मथुरा की गूजरियाँ दही बेचने गोकुल जा रही हैं, तो कृष्ण उनसे कहते हैं कि तुम्हें दही और माखन दान में देना होगा। दान देने से गूजरियाँ मना कर देती हैं। तब कृष्ण और उनके बीच इस बात को लेकर बहस होती है। अन्त में कृष्ण कहते हैं कि हम जबरदस्ती दान लेंगे, तत्पश्चात् वे दही और माखन खाकर उनकी मटकियाँ भी तोड़ देते हैं। यह भाव लोकगीत में इस प्रकार व्यक्त हुआ है—

''हरजी बाजत मउवा बीत बांसुरी खेलत जादोराय।
हरजी बाजत मउवा बीन बांसुरी
बाजत मउवा बीन
हरजी मथुरा के हम ग्वाल गुजरिया गोकुल बेचन जाय। हरजी
बाजत मउवा बीन
गूजर तुम पर हमरो दान लगत है, दान दिए घर जाए। हरजी
बाजत मउवा बीन
हरजी, हमन जो लादो दहि अपनूं दान काहा को लेय, हरजी
बाजत मउवा बीन
गूजर या बन के पूरे हम दानीं दान हि लें बरजोर हरजी
बाजत मउवा बीन
दहिया खायो मटक मेरि तोड़ी नाहक रार बड़ाय। हरजी
बाजत मउवा बीन''

ग्वाल-बालों की दिनचर्या—ग्वाल-बालों की दिनचर्या को कुमाउनी लोक गाथाओं में भी स्थान मिला है। निम्न

पंक्तियों में ग्वाल-बालों की दिनचर्या व पशुओं के साथ दिन भर वन में रहकर उनके साथ मनोविनोद करने का वर्णन आया है।

''नडरों का ग्वाल-बाला गै-भैंसी मुचाला,
लुड छुड़ न्है जाला मधु-विन्दराबन॥
उच्चत वृंदावन बैठी ग्वाला-द्योक सभा,
सोवन बैठ्यांछ बार बिसी ग्वाला,
सोल सै गै-भैंसी सोबन चराला।
मथुरा का नारी ह्वाला, बैराठों क ग्वाला,
गोपी ग्वालनैं को खेल-माल लाग्यूंछ,
गिनुवां खेलला, पुथुवा छ खेलला।
सारी दिन बितौ खलमालों क ध्वाका।''

कृष्ण का लौकिक रूप—कुमाउनी लोकवार्ता में कृष्ण के लौकिक रूप का भी चित्रण हुआ है। लोकजीवन के सुख-दु:ख, राग-विराग, लोभ-मोह, क्रोध-ईर्ष्या के सहज भाव कृष्ण के चरित्र में सन्निविष्ट हैं। रमौल गाथाओं के अन्तर्गत गाई जाने वाली **उदा रौतेली** गाथा में कृष्ण एक धनलोभी पिता के रूप में चित्रित हुए हैं। कृष्ण सत्यभामा की पुत्री उदा का पालन पोषण सिदुआ रमौला द्वारा होता है। कन्या जब ब्याह योग्य हो जाती है, तो कृष्ण धन लेकर उसका ब्याह हूंण देश के राजा सुनपाल के बेटे फुलोचन के साथ तय कर देते हैं और सिदुआ को पत्र लिखते हैं कि वह उनकी पुत्री को तुरन्त द्वारिका पहुँचा दें। गाथा में यह प्रसंग इस प्रकार आया है—

पैंली की पङति, आदली, कुशली
दूसरी पङति, किस्न का पतर।
उदा रे रौतेली, याँई पुजै दिया।
राई का रमौला, टल टल रुनु।
नैतर बहूनूँ, शिबू-शिबू रामू।

माण् माणा नेतर, नालि नाली नेतर।
बहुरा पराण, हिकुरी लागैंछी।
बालि् उदा रौतेली कसीकै पुजूँलो।
ऐंल हैगो जेठू, येस ब्यवे दिनूँ।
चीन-महाचीन, मतै-जतै बेरा।
केसै पुजै ऊँलै बालि् उदा रौतेली।
बालि् उदा रौतेली, कसी केरी जाली।
धरम को पाप, ये पापी पराणी।
किर्सनू का पास, मतै-जतै बेरा।
गुपूत कारण, बट्यून पैगैन।

इसी प्रकार **गंगू रमोला** गाथा में कृष्ण एक सामान्य व्यक्ति की भाँति रमोलीगढ़ में स्थित गंगू की संपत्ति को देखकर ईर्ष्या के वशीभूत हो जाते हैं और गंगू से उस जगह पर स्थान माँगते हैं, गंगू द्वारा मना किए जाने पर उसकी संपत्ति का हरण कर लेते हैं। कृष्ण यहाँ मानवीय दुर्बलताओं के साथ सम्मुख आते हैं।

कुमाऊँ का लोकजीवन कृषि प्रधान है, अत: कृष्ण के गोपालक रूप पर भी वह आकर्षित हुआ है। यहाँ के लोकगीतों में कवि ने कृष्ण को अपने स्थानीय रंगों में ढाल लिया है।

ईश्वर रूप—कुमाऊँ के लोक मानस में कृष्ण ईश्वर रूप में प्रतिष्ठित हैं। इस क्षेत्र में उनके अनेक मन्दिर हैं, जैसे—जिला बागेश्वर में राधा-कृष्ण मन्दिर, अल्मोड़ा में मुरली-मनोहर मन्दिर। कुमाऊँवासी कृष्ण को भगवान विष्णु का अवतार मानते हैं। जिसकी पूजा देवराज इन्द्र व अन्य देवता भी करते हैं। यहाँ के धार्मिक गीतों में इस भाव की अभिव्यक्ति हुई है। भगवान कृष्ण कल्याणकारी हैं, कृपालु हैं और भक्त वत्सल हैं। वे तीनों लोकों के स्वामी हैं। वे सारे प्राणियों के दु:खों का हरण करने वाले हैं। समस्त देवगण और

भक्तगण सदा उनकी प्रार्थना और आराधना करते हैं। विनय और भक्ति विषयक गीतों में कृष्ण के ईश्वर रूप की अभिव्यक्ति हुई है।

एक भक्ति गीत में कृष्ण के अपने भक्त विदुर के घर साग खाने, गज का उद्धार करने और द्रौपदी की लज्जा बचाने का वर्णन आता है।

रंग केसर की पिचकार भरी।
दुरयोधन घर मेवा त्यागे, साग बिदुर घर खायो हरी।
गज और ग्रह लड़ैं जल भीतर लड़त लड़त गज हारे हरी।
जौं भर सूंड रहे जल बाहर तब हरि नाम पुकारो हरी।
गज की टेर सुनी द्वारिका में आपुं गरुड़ तजि आयो हरी।
कौरव पांडव चौपड़ खेलें, खेलत खेलत हार पड़ी।
द्रौपदि चीर दुसासन खैंचे, चीर का अंत न पायो हरी।

एक अन्य गीत में कृष्ण को देवताओं के दु:खहर्ता के रूप में चित्रित किया गया है—

''सिबो हरि नैरैंण जगदीस, तुम देबतान कि दुख छन देखणि महाराज।
द्वारीका का नाथ भगवानो वरदैंण है जाया।
ये वरदैंणा है जाया स्वामि तुम धनि नाथ ला भगिवाना॥''

लोकगाथाओं में सर्वत्र द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण की वंदना की गई है और उनसे कृपालु एवं वरदायी होने का निवेदन किया गया है। द्वारिका में उनकी बारह पंक्तियों की कचहरी और नौ पंक्तियों की सभा का बार-बार उल्लेख आता है।

रमौलों की गाथाओं में सर्वप्रथम कृष्ण की वंदना की जाती है। सिदुवा-विदुवा रमौल को कृष्ण के वरदायी कहा गया है।

पराक्रमी रूप—कृष्ण ने जीवन पर्यन्त दुष्टों, अत्याचारियों व राक्षसों का संहार किया। जब उन्होंने चलना भी नहीं सिखा था, तभी से उन्होंने कंस द्वारा गोकुल भेजे गये राक्षसों का वध करना

आरम्भ कर दिया था। मथुरा जाने पर अत्याचारी कंस मामा का वध किया। जरासंध व उसकी मित्र सेना द्वारा मथुरा पर अनेकों बार आक्रमण किये गये, लेकिन प्रत्येक युद्ध में जरासंध को कृष्ण व बलराम के हाथों हार का सामना करना पड़ा। कृष्ण द्वारा अपने बुआ के पुत्र शिशुपाल के 100 अपराध पूरे होने पर उसका सिर सुदर्शन चक्र से काट लिया गया। एक कुमाउनी लोकगाथा **कृष्ण-रुक्मिणी** में कृष्ण के इसी पराक्रमी रूप के दर्शन होते हैं। वे कहीं दुष्टों का संहार करते नजर आते हैं, कहीं अपने भक्तों की और अहंकारी व्यक्तियों की छल-बल से परीक्षा लेते हैं। **गंगू रमौला और सिदुआ-बिदुआ रमौला** गाथा में कृष्ण पहले उनके पराक्रम् की परीक्षा लेते और फिर उन पर दया भी दिखाते हैं। उनके अहंकार का नाश कर वे उन पर कृपा कर उन्हें क्षमा कर देते हैं। **कृष्ण सत्यभामा** गाथा में कृष्ण द्वारा जामवन्त के बल की परीक्षा लेने का वर्णन आता है। कृष्ण, सत्राजीत की मणि की खोज में गुफा के भीतर जाते हैं, गुफा के भीतर जाते-जाते कृष्ण के मन में अपने भक्त जामवन्त का बल तौलने का विचार उठता है। जामवन्त के निकट पहुँचकर वे मणि की माँग करते हैं। जामवन्त बोलता है-"अरे बालक! यह मणि मैंने शेर से जीती है। यह तभी तुम्हारी हो सकती है, जब तुम मुझे जीत लो।" इस पर कृष्ण ने जामवन्त की ललकार स्वीकार कर ली। दोनों में द्वन्द्व युद्ध प्रारम्भ हो गया। यह प्रसंग लोकगाथा में इस प्रकार आया है-

"तै बखत में कूनू देखो झानू आजू गुफा भितेरु जब पुजि ग्यो,
क्रस्ना ले देखि हाल्यो जामवानै जामवंतै भलोई,
अहा क्रस्ना का दिल में यो बातै जगैछ इजा,
अहा भल मैं अपुण छेदै
मैं जल्दी नैं बतूनू तैसऽ, आ पैंली तैको बल अंताजै करूँछू
मैं त ऽ, धैं म्यार भक्त को बल तिरेता भटी द्वापर धैं कतुकू

बलै कमै होई रिछ दिगऽ, आज लेकै उसो होलो मेरा भक्त
जसो छोड़ि आयूँ कूँछै मैं अयोध्या नङरा ऽ हा ऽ ऽ ऽ.........।
कि जाना-जाना क्रस्ना पूज्यो, कि आज यो जामवानै पासै में,
तो ऽ तै बखत में क्रस्ना पुछमर्यानऽ देख रे जामवंतै भल तैं तो ल्यै रिछै
हमारी मणी कूनू दिगौ, तैं जल्दी मेरी मणी ला मैंसै ल्येई दी दे ऽ हा ऽ ऽ ऽ.........।
आज कूनू दीगो बखत में बल जामवान बोलमर्यान, देखारे बालक भल यो
मणि भल मैं जङलै सेर भटी जीती बेराल्यायूँ कूँछैऽ आ मणी मैं खाली जैं नैं दिनूँ
त्वेस ऽ या तो मणी ल्हैच्छै मैं त्वे धैं भल के रुकावट नैं कर्नू कूनू, ल्हैजन
पड़ैली मणी त्वेले ला मैं जीती भरना ऽ हा ऽ ऽ ऽ.........।
अहा ऽ ऽ हा सावधानै ह्वे गीछै जामवानै
आबै लड़ैनैं की ऽ हा ऽ ऽ ऽ.........।
इजा ऽ ऽआ जामवानै कीरसना गुफा भितरा
यूधै होई गीछ ऽ हा ऽ ऽ ऽ.........।

इसी प्रकार **कृष्ण-रुक्मिणी** की गाथा में कृष्ण के पराक्रम का वर्णन हुआ है। जरासंध, रुक्मिणी के पिता भीष्मक के यहाँ कन्यार्थी बनकर आये हैं। यह बात रुक्मिणी को पता चल जाती है। वह चिंतित होकर जल देवी की आरती करने लगती है। द्वारिका में बैठे अन्तर्यामी कृष्ण को यह बात पता चल जाती है। वे रुक्मिणी का हरण करने के लिए कुंडलपुर में आ जाते हैं, रुक्मिणी की पूजा पूरी नहीं हो पाती। कृष्ण रुक्मिणी को रथ में बैठाकर शंखध्वनि कर देते हैं। कृष्ण का रथ रुक्मिणी को लेकर चल पड़ता है। जरासंध,

शिशुपाल और रुक्मि की सेना कृष्ण का पीछा करती है, लेकिन तब तक बलराम सेना लेकर आ जाते हैं। दोनों पक्षों में घमासान युद्ध होता है। अंततः जरासंध और शिशुपाल की सेना पराजित होती है।

हार कूनू भगवती माता पुजि ग्या जो भगवान,
अहा तै जाग में क्रस्ना की जय पुकार की वास्ते जलदेवी की राधना पूरी जब न ह्वे रै
राधा रुक्मिणी की, अहा क्रस्ना को रथै तै जाग में पुजि ग्यो,
तै बखत में क्रस्ना ले भलू ऽ संखै दिगौ ला संखै ध्वनी करी ऽ हा ऽ ऽ ऽ......... ।
आ संखै ध्वनी की आवाजू जब सूनी भल ये तो ऽ, हा
सिंधूराजोल सिसूपालूँ ले, तै बखत में बोलनमर् यानू युवराज रुक्मैं, जैको खतरै होलो ऊ पैली ऐगी बल, यो संखै तो द्वारिका क्रस्नै की होलो, शायद क्रस्ना रुक्मिणी ले ला भजै ल्हैजै ऽ हा ऽ ऽ ऽ......... ।
तब पाछ ऽ पड़ि गै सिसुपाल की सेना जरासंधों की सेना रुक्मै की सेना भलूऽ,
अहा रुक्मै यो हुकुम लगायो, जाओ सेनापती तुमि क्रस्ना पकड़ो बल,
बाट में पड़ी बलरामै सेना, तै बखत में पछिल कै पल्टी चामर्यानू बलराम की सेना
ले जरासंध और सिसुपालै सेना रोकी, तब क्रस्ना का पास पड्यो दीगौ युवराजै
रुकमा ऽ हा ऽ ऽ ऽ......... ।

संस्कार गीतों में कृष्ण—कुमाऊँ में संस्कार गीतों का विभिन्न संस्कारों के अवसर पर विशिष्ट महत्व है। जन्म से लेकर मृत्यु तक यहाँ अनेक संस्कार सम्पन्न किए जाते हैं। सुवा (तोता) पक्षी को शुभ प्रतीक माना जाता है। विवाहोत्सव के अवसर पर तोते

का चित्र वर की चौकी में भी अंकित किया जाता है। जिस घर में मंगल कार्य हो रहा है, उस घर की मालकिन सुवा पक्षी से देवताओं के देवता कृष्ण को निमन्त्रण देने का आग्रह करती है।

(तोता कहता है) : मैं नाम नहीं जानता, गाँव नहीं पहचानता, किस घर व किस नारी को निमंत्रण दूँ?

(मालकिन कहती है) : राधा जिसका नाम है, मथुरा जिसका गाँव है, उसके पति का नाम श्री कृष्ण है, जिसके मकान के आगे आँगन व पीछे फुलवाड़ी है। उस घर व उसमें रहने वाली नारी को निमंत्रण दे आ। इस भाव को एक संस्कार गीत में इस प्रकार व्यक्त किया है–

''नौं नी जाणन्यू मैं, गौं नी जाणन्यू,
कै घर कै नारी न्यूत दिऊँ?
राधादेई नौं छ, मथुरा तै को गौं छ,
तैक स्वामी कणि श्री कृष्ण नौं छ।
अघिल अधवाड़ी, पछिल फुलवाड़ी,
तू तै घर तै नारी न्यूत दिआ।''

संस्कार गीतों में दो भाइयों के परस्पर प्रेम, सौहार्द्र और मित्रता के लिए प्रायः कृष्ण बलराम का दृष्टान्त दिया जाता है। पारिवारिक सम्बन्धों की दृष्टि से इन मांगलिक गीतों में कृष्ण–यशोदा कृष्ण–नंदबाबा आदि का चित्रण एक आदर्श पुत्र और माँ तथा आदर्श पुत्र के रूप में हुआ है।

इसके अतिरिक्त रसिक बिहारी कृष्ण के **रसिक रूप** के दर्शन **कृष्ण चंद्रावली** तथा **कुसुमा कोलिन** गाथाओं में मिलते हैं। इन दोनों गाथाओं में कृष्ण के परकीय प्रेम का वर्णन हुआ है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि शैव और शाक्त प्राधान्य क्षेत्र होने पर भी यहाँ लोकमानस में कृष्ण विविध रूपों में विद्यमान

हैं, यह कृष्ण के सर्वव्यापी व्यक्तित्व का परिचायक है। कुमाऊँ के लोकजीवन ने कृष्ण के उस लोकोन्मुखी चरित्र से आज भी सहजता से स्वयं को जोड़े रखा है, जो भारतीय संस्कृति के सम्पूर्ण काल प्रवाह को अपने में समेटे है।

संदर्भ :

1. उत्तराखंड लोकसंस्कृति और साहित्य, देव सिंह पोखरिया, नेशनल बुक ट्रस्ट दिल्ली, 2010
2. उत्तराखंड के लोक देवता, डी०डी० शर्मा, अंकित प्रकाशन हल्द्वानी, 2007
3. कुमाउनी लोकगाथाएँ (भाग-1), प्रयाग जोशी, युगल किशोर एवं कम्पनी देहरादून, 1971
4. कुमाउनी लोकगाथाएँ (भाग-2), प्रयाग जोशी, युगल किशोर एवं कम्पनी देहरादून, 1973
5. कुमाउनी लोकगाथाएँ (भाग-3) प्रयाग जोशी, प्रकाश बुक डिपो बरेली, 1994
6. कुमाऊँ का लोक साहित्य, डॉ० कृष्णानंद जोशी, प्रकाश बुक डिपो बरेली, 1971
7. कुमाऊँ के संस्कार गीत, जुगल किशोर पेटशाली, लता कुंजवाल
8. कृष्ण रुक्मिणी गाथा, डॉ० देवसिंह पोखरिया, भा० नाट्य अकादमी उ०प्र०, 1995
9. कृष्ण सत्यभामा की गाथा, भा० नाट्य अकादमी उ०प्र० 1995
10. रमोला (कुमाऊँ की लोकगाथा), डॉ० कृष्णानंद जोशी, प्रकाश बुक डिपो बरेली, 1989

मैथिली लोकगीतों में श्रीकृष्ण

❀ डॉ० नरेन्द्र झा

श्रीकृष्ण शब्द का सबसे पहले उल्लेख ऋग्वेद के आठवें मण्डल के पचासीवें सूक्त में ऋषि या रचयिता के रूप में हुआ है। बौद्ध ग्रन्थ 'घटक जातक' (तीसरी शती ई०पू०) में उपसागर और देवगब्भा के ज्येष्ठ पुत्रों के नाम वासुदेव और बलदेव हैं। यद्यपि इसके गद्यभाग में अन्य नामों की चर्चा नहीं है, परन्तु संलग्न पद्य में केशव और काण्ह का उल्लेख किया गया है। जैन परम्परा में कृष्ण अरिष्टनेमि किंवा नेमिनाथ के समकालीन बतलाये गये हैं। वैदिक परम्परा के नाम पर जिस रूढ़िवाद, याज्ञिक हिंसा और विधि-विधान से आबद्ध, शास्त्रीय धर्म का प्रचलन हुआ था, उसकी जगह सहज मानवीय धर्म के स्वाभाविक विकास के परिणामस्वरूप जिस नवीन धर्म का आविर्भाव हुआ वही भागवत धर्म कहलाया। जिसमें हिंसा की जगह अहिंसा पर बल दिया गया था। जिसे पांचरात्र, एकान्तिक, नारायण, वासुदेव, सात्वत आदि अनेक नामों से अभिहित किया गया है। वैष्णव धर्म सही अर्थों में इसी भागवत धर्म का विकसित रूप है, जो अनेक आध्यात्मिक चिन्तनधाराओं और उपासना पद्धतियों के संयोग से निर्मित है। तैत्तिरीय आरण्यक के दशम प्रपाठक में जो विष्णु गायत्री दी गयी है, उसमें नारायण और विष्णु की एकत्र स्थिति है—'नारायण विद्महे, वासुदेवाय धीमहि। तन्नो विष्णुः प्रचोद्यात।' अस्तु, वासुदेव को यहाँ विष्णु के एक नाम के रूप में स्वीकृति दी गयी है। गीता में भी वासुदेव को वृष्णिवंश से उद्भूत होना बतलाया गया है—'वृष्णीनां वासुदेवऽस्मि।' (गीता अ०

10/37)। वृष्णिवंश की चर्चा पाणिनी की अष्टाध्यायी एवं कौटिल्य के अर्थशास्त्र पर्यन्त में की गयी है। तैत्तिरीय संहिता, तैत्तिरीय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण तथा जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में भी वृष्टि का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार वृष्णिवंश और उसमें उत्पन्न वासुदेव श्रीकृष्ण की प्राचीनता स्वयंसिद्ध है।

मध्यकालीन साहित्य पर दृष्टि डालें तो पता चलेगा कि यह वह काल था जब इस देश पर चारों ओर से इस्लाम का आक्रमण तीव्र हो रहा था। यह आक्रमण न केवल राजनीतिक था, न ही सत्ता के संघर्ष के लिए था, अपितु भिन्न-भिन्न जीवन दृष्टि में आस्था रखने वाले इस्लामी सनातन धर्म की ध्वजा हाथ में थामे भारतवासियों की सभ्यता, संस्कृति और कला-साधना पर एक ही बार टूट पड़े थे। सदियों से आती हुई हिन्दू-सभ्यता टूट रही थी, जर्जर हो रही थी। उस पर बाहरी आक्रमण उसे जड़ मूल से उखाड़ रहा था। उस समय के कवियों, चिंतकों और विचारकों के समक्ष यह चुनौती थी कि ऐसी ढलान की ओर जाती हुई हिन्दू सभ्यता से जन-सामान्य को शक्ति मिले, ताकि विरोधी परिस्थितियों का जमकर विरोध कर सके। पृथ्वीराज, महाराणा प्रताप और शिवाजी जैसे वीर-योद्धा समरभूमि में स्वातंत्र्य की बेदी पर जीवन की आहूति दे रहे थे। राजनीतिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में एक अजीब घटना हुई, वह इस्लामी आक्रमण की प्रतिक्रिया थी। चाहे वह आक्रमण होता या न होता, भक्तिकाल में जिस भक्ति-भाव- पूर्ण स्वस्थ साहित्य की रचना हुई, उससे हिन्दू जाति को निजत्व को धारण करने का अवसर मिला। घटना हुई अवश्य कि सूर, मीरा और तुलसी आदि कवियों ने इस प्रकार के भक्ति साहित्य की रचना की, जिसने बहुत बड़े समुदाय को अन्तर्मुखी बना दिया। एक ओर वीर- योद्धा युद्ध-भूमि में जीवन का मोह त्यागकर स्वतंत्रता की रक्षा के लिए जीवन-दान भी करते रहे

थे, तो दूसरी ओर ये कवि भी भक्ति के माध्यम से जन-जागरण का काम कर रहे थे। वह भक्ति चाहे दास्य भाव की हो या सरल भाव की, उसमें एक शक्ति थी आत्मबल की कि गाँव-गाँव, डगर-डगर राम और कृष्ण की महिमा का गायन कर इस अंधड़ और तूफान में भी पतनोन्मुख जाति को किंचित् बचाया जा सके।

मैथिली लोकगीत में श्रीकृष्ण विषय पर विचार करने के पूर्व यह आवश्यक है कि संक्षेप में ही सही कृष्ण-काव्य परम्परा का सिंहावलोकन किया जाये।

वैष्णव धर्म की सगुण भक्ति की दो प्रमुख धाराएँ राम काव्य धारा और कृष्ण काव्य-धारा है। कृष्ण के वीरता पूर्ण जीवन का समारम्भ महाभारत काल से हुआ और उनके जीवन कीर्ति की पताका हरिवंश तक लहराती रही। वे वीरता, सौन्दर्य, कलात्मकता और जीवन की कार्य कुशलता के अद्वितीय व्यक्तित्व के रूप में चित्रित किए गए हैं। महाभारत काल में ही उनकी महिमा देशान्तरों में फैल चुकी थी। सारे पश्चिम भारत में ऐसी कोई जगह नहीं है, जहाँ प्रेममूर्ति श्रीकृष्ण की महिमा के प्रतीक-रूप में मन्दिर न हो। जिनके व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा कोटि-कोटि लोगों के हृदय में न हो और सदियों तक वह भला काव्य-रचना का विषय क्यों न बनता! महाभारत और हरिवंशपुराण के सदियों बाद श्री श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण के जीवन, सौन्दर्य, रासलीला, प्रणय-लीला आदि का बड़ा ही विशद् चित्रण हुआ है। वस्तुत: विचारकर देखें तो कृष्ण-काव्य में जो कुछ बाद में लिखा गया उसका स्रोत श्रीमद्भागवत ही है। श्रीमद्भागवत वैष्णव धर्म के अनुयायियों के लिए वेद गीता की तरह पावन ग्रन्थ बन गया, महाकवि विभापति ने इसकी प्रतिलिपि तैयार की और इनसे दो सदी पूर्व जयदेव ने अपने 'गीत-गोविन्द' में श्रीकृष्ण और राधा के यौवन, सौन्दर्य, प्रणय, मिलन, विरह आदि का इतना

कोमल, करुण और शृंगार रस-समृद्ध चित्रण किया जो बाद के कवियों के लिए विशेषतः विद्यापति के लिए, स्रोत ग्रन्थ ही बन गया। हरिभक्ति एवं लौकिक प्रीति दोनों का माधुर्यपूर्ण सामञ्जस्य एवं भाषा की सुलक्षणता, मधुरता, कोमलता, भावों का माधुर्य, कल्पना की चमत्कारातिशयता और अनुभूति का वैलक्षण्य सब कुछ जयदेव की पीयूषवर्षी वाणी के कारण विद्यापति में जैसे एकाकार हो गया।

श्रीकृष्ण के जीवन के मधुर रूप को दृष्टि में रखकर लोक-गीतों की विशाल परम्परा हमारे देश में रही थी, मिथिलांचल भी उससे अछूता नहीं था। शैव, एवं वैष्णव भक्ति की पूर्व से चली आ रही परम्परा आज भी यहाँ ज्यों-की-त्यों विद्यमान है। श्रीराम और सीता के साथ-साथ श्रीकृष्ण की युगलमूर्त्ति से सम्बन्धित लोकगीत इसके प्रमाण हैं। मैथिली लोकगीत में श्रीकृष्ण के वात्सल्य एवं शृंगार दोनों ही पक्षों का चित्रण सम्भव हुआ है। शृंगार में विप्रलम्भ की बहुलता के दर्शन होते हैं। जन्म-संस्कार से लेकर मुण्डन, यज्ञोपवीत एवं विवाह-संस्कार से प्रकृति-चित्रण पर्यन्त इसका विस्तार देखा जाता है। पौराणिक देवता होने के बावजूद मिथिला की लोकभूमि एवं संस्कृति के संस्पर्श से दीप्त राधाकृष्ण से सम्बन्धित इन गीतों को विष्णुपद के नाम से भी जाना जाता है।

मिथिला के लोकजीवन में वैदिक और लौकिक संस्कारों का समन्वयन देखा जाता है। यही कारण है कि गर्भाधान से अन्तयेष्टि पर्यन्त शास्त्रीय विधि-निषेध तथा परम्परागत व्यवहारों के अनुरूप कर्म करने का विधान है। शास्त्रीय कर्मों का सम्पादन जहाँ पुरोहित कराते हैं, वहीं लौकिक कर्मों का सम्पादन प्रायः स्त्रियाँ ही कराती हैं, जिसमें लोकाचार की प्रधानता होती है। इन लौकिक कर्मों के सम्पादन क्रम में कदम-कदम पर लोकगीत की अनिवार्यता का अनुभव किया

जाता है। इन गीतों के अनुष्ठानिक और औपचारिक दो रूप उपलब्ध होते हैं। जन्म-संस्कार के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में सोहर एवं खेलौना प्रमुख हैं। श्रीकृष्ण से सम्बन्धित गीतों में सोहर की ही प्रधानता है। यद्यपि मिथिलांचल में किसी शुभ कर्म का आरम्भ कुल देवी के गीत से ही होता है। गर्भाधान विषयक एक गीत में देवकी की उसकी सास स्नान करने जाते देखती है तो 'तन से झामर मुख पीयर रहलि गरभ सओं रे' का अनुभव होता है, मगर उसे तत्काल इस बात की आशंका भी होती है कि पुत्र प्रवासी है तो फिर गर्भ कैसा ? देवकी इसके समाधान के लिए पति की ही एक मात्र प्रमाण के रूप में उपस्थिति चाहती है तथा पास-पड़ोस के लोगों से सहयोगतार्थ याचना करती है—

घर 'पछुआर बसय सोनरा कि तोहे मोर हित बंधु रे
ललना रे, गढ़ि दीअ सोना केर जाल की भ्रमर बझायब रे
भ्रमरा जब लौटलि सासु घर पैसलि रे
ललना रे, चिन्हि लीअ अपन पुत्र कलंक किए जोड़ल रे।

(मिथिला-संस्कार-गीत 43)

श्रीकृष्ण के जन्म विषयक एक गीत में तो समस्त गोकुल उनके जन्म से इतना सुहावन लग रहा है कि 'नन्द महर घर सोहर सकल सुर हरखिल रे।' दमरिन (चमारिन) कन्हैया के नार कटने के बदले में 'हंसुली' मात्र से यशोदा को मुक्त नहीं करना चाहती, अपितु पीला पीताम्बर एवं यशोदा के गले के हार की माँग के साथ ही सवारी हेतु घोड़ा एवं नाक के बेसर तक प्राप्त करने की अभिलाभा लिए बैठी है। सब कुछ मिल जाने के बाद, ऐसे अवसर बार-बार आयें, ऐसा आशीष देती हुई कहती है—

पहिरि-ओढ़ि दमरिन ठाढ़ि भेलि देव लागन आशीष रे
सोने फुल फुलय हवेलिया कि फेरि हम आएब रे

(वही गीत 63)

आज गोकुल के लोग अचम्भित भी हैं और आनन्दित भी यह जानकर कि श्रीकृष्ण के जन्म से जिसके जितने 'शोक' थे वे 'खण्डित' हो गये। घर-घर में नारियाँ व्यग्र-विकल हैं कि कब 'हरि' के दर्शन करेंगी। उनके एक बार स्पर्श मात्र कर लेने से यम-यातना से मुक्ति मिल जायेगी। सभी नारियाँ राज के आँगन में जाकर यशोदा से कहती हैं 'अधमोचन जनि नाम ताहि दिय, देखने रे।' इतना ही नहीं, 'हाथहि उकटन तेल लेलनि सब नागरि रे/पहिरन अनुपम चीर सकल गुन आगरि रे/आनि यशोमति मोहन कोर कय देलनि रे/कवि मनिलाल विचारि गहिचरण धेलनि रे।' (वही गीत 55) 'छन्दपरक सोहर' (जो चौरासी पंक्तियों के हैं, के बीच-बीच में ग्यारह बार जो छन्द प्रयुक्त हुये हैं वे अठासी पंक्तियों के हैं—कुल मिलाकर इसमें एक सौ बहत्तर पंक्तियाँ हैं) में भादव मास की कृष्णाष्टमी तिथि को बुधवार के दिन रोहिणी नक्षत्र जैसे शुभ संवत में कृष्ण के जन्म लेने से लेकर 'गदा पद्म कर शोभित चक्र सुदर्शन रे/ललना रे किरीट मुकुट मणि मंडित जो अति आनन्दक रे।' (वही गीत 69) इस गीत के माध्यम से श्रीकृष्ण के रूप सौन्दर्य एवं उस काल की देवकी की डरी-सकुचायी हुई दशा से लेकर पहरूए के सोने, वासुदेव द्वारा यमुना पार कर नन्द गृह तक पहुँचाने, यमुना को कृष्ण के चरण-स्पर्श हेतु बेचैन देखकर कृष्ण द्वारा उसे शान्त करने से लेकर नन्द पुत्री के रूप में उत्पन्न जगज्जननी को लेकर पुनः मथुरा लौटने से पहले और बाद तक की घटनाओं का बड़ा ही विशद् चित्रण किया गया है। इस सोहर के माध्यम से मिथिला में कृष्णाष्टमी के समय भगवती योगमाया के पूजने की प्रचलित परम्परा का प्रमाण तो मिलता ही है, साथ ही मिथिला के लोजीवन में पौराणिक प्रभाव की गहराइयों को भी जाना जा सकता है। नन्द-गृह कृष्ण के पहुँचने के बाद के एक छन्द को देखिये—

गन्धर्व गावए, दक्ष नाचय अलापे अप्सरा
बाजत मृदंग ताल वीणादुन्दुभि दुपिघरा
चौदह भुवन के संपदा सब नन्द के गृह आइयो
होत ताल तरंग नयना विविध भाँति बधाइयो

(वही गीत 69)

इस सोहर के भाषा की सुलक्षता, शैलीगत सौष्ठव, कथ्य एवं तथ्यगत विशिष्टता आदि के क्या कहने! (कवि मंगनीराम झा (1687 ई०) के काव्य-कौशल के दर्शन कराने में सर्वथा सक्षम हैं) कृष्ण के जगतपालक रूप का इससे विलक्षण एवं व्यापक वर्णन मैथिली लोकगीत में अन्यत्र प्राय: दुर्लभ ही है।

साँझ (सांध्य) के समय गाये जाने वाले एक गीत में श्रीकृष्ण के बालकोचित भावनाओं का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्र समक्ष हुआ है। आज श्रीकृष्ण दिनभर बहुत प्रसन्न चित्त थे, लेकिन साँझ होते ही रोने लगे हैं। नन्द बाबा ही इन्हें समझा सकते हैं—

आजु रे ललन गति कहलो न जाइ
भरि दिन छलाह कृष्ण नीकहि खेलाइ
साँझखन क देलनि कननि लगाइ
कहाँ गेलाह नन्दबाबा कहब बुझाइ
हम लेब चन्दा खेलौना गे भाइ

(वही गीत 107)

यहाँ श्रीकृष्ण सूरदास के श्रीकृष्ण की तरह 'मैया मोहि चन्द्र खिलौना लैहों' की हठ ठान बैठे हैं। वहीं साँझ हो चुकने के बाद भी कृष्ण घर नहीं लौटे हैं, तो माता यशोदा की चिन्ता स्वाभाविक है। वे घर-घर जाकर नहीं आने का कारण पूछती हैं। कृष्ण के बिना बछड़े, गाय एवं यशोदा माता की स्थिति एक अन्य गीत में देखने के लायक है—

घर रोबे बछरू बाहर धनु गाइ
मचिवा बैसल रोवे यशोमति माइ
औंटल दूध सेहो भेल बासि
ने जानि कोने बन पड़ल उपास।

(वही गीत 108)

मण्डप-निर्माण के लिए (यज्ञोपवीतादि के अवसर पर) बाँस काटने के समय गाये जाने वाले 'बँसकट्टीक गीत' में 'वृन्दावन' से बाँस काटकर लाने एवं 'मड़वा' (मण्डप) निर्माण करने की बात कही गयी है। विवाह के अवसर पर आम और बहुआ (वृक्ष) के साथ ब्याह की रस्म पूरी करने के बटगमनी गीत में पथ से जो नायिका (राधा) जा रही है, वह 'नागरि' होने के साथ ही 'आगरि सुबुद्धि सयानि' भी है। ब्रह्मा ने उसे कनकलता के समान रूपवती बनाया है। जिसकी चाल हस्तिनी की तरह है, देखने में राजकुमारी की तरह मालूम पड़ती है। जिसकी ऐसी सौभाग्यशाली स्त्री होगी, वह चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) एक साथ प्राप्त कर लेगा। वहीं अन्यत्र पुरुष जाति के प्रति नायिका का आरोप है कि वह 'सपत' को 'परमान' (प्रमाण) नहीं बना पाता। खासकर जब वह अपनी प्रियतमा से दूर होता है तो अपनों के साथ बिताई हुई जिन्दगी को भी स्मरण नहीं रख पाता। प्रवास-गमन से पहले उसकी सूचना पर्यन्त देना उचित नहीं समझता। नायिका की विकलता इतनी बढ़ गयी मालूम पड़ती है, कि वह यहाँ तक कह जाती है कि एक प्रकार की पीड़ा हो तब न किसी से कहा जाये। उसकी पीड़ाएँ तो अनन्त हैं, जिसके बगैर वह दिन-रात बेचैन रहती है, वही जैसे उससे रूठ गया मालूम पड़ता है। उसके नहीं होने से जैसे दिन में ही अंधेरा छाया रहता है। इसी कारण उसे लगता है कि—'पुरुष वचन एहन थिक सजनि गे/सपतक नहि परमान' (वही गीत 132)।

आज कृष्ण समय से घर नहीं आये हैं, यशोदा माता की चिन्ता इतनी बढ़ गयी है कि साँझ के समय वह घर-घर जाकर उनके नहीं आने के कारणों को जानने की चेष्टा करती हैं। उन्हें इस बात की भी चिन्ता है कि कंस की असुर मण्डली कृष्ण के विरुद्ध है। तब तक गोपियाँ पूरी जमात के साथ उनके समक्ष होती हुई, गालियों के स्वर में कहती हैं—'बरजू यशोदा तू अपने ललन को फाड़ि देलति पट सारी' कि उसी समय 'रोवत-रोवत मोहन आये नयनहिं नीर बहाई' और कहने लगे कि सब गोपियाँ मिलकर मुझे मारी हैं। गोपियाँ खींझकर कहती हैं—'तुम जीतो हम हारी।' (मि०सं० गीत 153)

आश्विन पूर्णिमा के दिन नव विवाहित के चौपड़ खेलने के समय के गीत में 'श्यामा' का प्रतिनिधित्व कर रहे ससुराल से आए साले की जगह श्रीकृष्ण रूपी नवविवाहित को विजय दिलाने की कोशिश का चित्र उपस्थित किया गया है—

हारथि राधा हारथि रुकमिनि
जीतथि कृष्ण मुरारि री।

(वही गीत 180)

एक पराती गीत में तो जैसे श्रीकृष्ण को सचेत करने का प्रयत्न किया गया है—

अब ने विल-सक बेरि हे माधव
अब ने विलासक बेरि।
मुखहुक पान विरस सन लागत
दीपक ज्योति मलान हेमाधव
अब न विलासक बेरि।
ग्वाला आय गौ दूहन लागे
बछड़ डगरि बन गेल हे माधव
अब ने विलासक बेरि।

सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस को
सूर्य उदय भय गेल हे माधव
अब ने विलासक बेरि।

(मि०सं० गीत 186)

इस पद के अनुरूप विद्यापति के भी एक पद मिलते हैं–

हे हरि रे हरि सुनिय स्त्रवण भरि,
अब न विलासक बेला

मैथिली लोकगीत (तुसारी) में सीता, राधा और गौरी साथ-साथ फूल तोड़ती देखी जाती हैं। सीता आगे-आगे जाती है और राधा पीछे-पीछे, तो गौरी भी पुष्प वाटिका में संग-संग प्रवेश करती हैं एवं अलग-अलग वरों की माँग करती हैं–'सीता राम वर माँगे/राधा कृष्ण वर माँगे/गौरी मंगलनि तपसी भिखरिया/संग में सहेलिया ना'

(मि०सं० गीत 201)

जसोनाथ कवि की भणिता से युक्त एक गीत में कृष्ण जिस अवधि और महीने की बात कहकर गये थे वह निकट आ चुका है, इसीलिए राधा धैर्य करने में असमर्थ अनुभव कर रही है। 'अति सुकुमारि' राधा 'पहु' की आकुल-व्याकुल होकर बाट जोह रही है। उसे यह चिन्ता खाए जा रही है कि–'अजहु न आए मुरारि।' अपनी यह पीड़ा वह किसे सुनाएगी। उसकी स्थिति की तस्वीर देखिये–

खन खन मोन दहो दिस सजनी गे
विरह उठय तन आगि
हरि गुण सुमरि विकल भेल सजनी गे
कौन बुझत दुख मोर
जसोनाथ कवि गाओल सजनि गे
आओत नन्दकिशोर।

(मि०सं० गीत 234)

कन्यादान के समय सीता, गौरी के साथ ही 'रुकमिनी सम्मरि' के गाये जाने की भी परम्परा है। लम्बे छन्दों में 77 पंक्तियों के इस गीत में श्री गणेश, सरस्वती, इन्द्रादि सकल देवों के संग-संग अनेक नगरों एवं पांडवादि को आमन्त्रित करने की कथा 'लोकनाथ कवि' की भणिताओं से युक्त, रुक्मिणी हरण और शिशुपाल वध से सम्बन्ध रखने वाली कही गयी है। रुक्मिणी हरण की बात सुनते ही शिशुपाल कैसे मूर्छित होकर गिर पड़ता है, इसे भी दिखाया गया है। (मि०सं० गीत 249)

नन्दीपति रचित एक 'तिरहुत' गीत में राधा और कृष्ण के प्रथम मिलन के समय नये तन से नये अनुराग होने की वजह से बिना परिचय के ही रस का ऐसा उदय हुआ कि दोनों जिद्द पर अड़कर रात यों ही बीता दिये। नायक के परोक्ष होने के बाद नायिका की स्थिति 'यौवन उपगत' होने के कारण कैसी हो गयी है, वह देखने के लायक है—'आब ने जिअब बिनु कंत रे/हमर जीवन मेल अंत रे।' (वही गीत 279)

अन्यत्र एक गीत में नायिका (राधा) की वियोग-दशा ऐसी हो गयी है कि और तो और चाँद-किरण और चन्दन की शीतलता तक उसे नहीं भाती! उसे भयवश ऐसा महसूस होने लगता है कि—'आंब ने धरम ससि बाँचत मोर/दिनदिन मदन दुगुन कर जोर' (मि० सं० गीत 280)। भोजन कराने के समय गाये जाने वाले एक 'उचिती' गीत में भी 'माधव' के 'मधुपुर' चले जाने के बाद से शयन ही नहीं, भवन तक सूना लगता है। इतना ही नहीं, यदि कृष्ण उसका परित्याग कर देंगे तो वह 'हमहु मरब पथ जोहि रे' तक के लिए तैयार बैठी है। कुब्जा के 'जोग टोन' ने उनके मन को मोह लिया है और श्याम गोकुल का परित्याग करने की स्थिति में आने को मजबूर हो गये हैं—इसमें मेरा क्या दोष है। उसे लगता है कि अब उनके मुरली की टेर

सुनने का अवसर नहीं मिल पायेगा—

'आब ने आओत हरि फेरि रे मुरली सुनब नहीं टेरि रे
अबला सँ कत' दोष अनुप तेजल अभिरोष रे'

(मि०सं० गीत 279)

जैसा कि आरम्भ में ही निवेदन किया गया है कि मैथिली लोकगीत में शृंगार-वर्णन से जुड़े गीत में वियोग विषयक गीतों की बहुलता है, जिसमें कृष्ण के एक-एक क्रियाकलापों का स्मरण करती हुई गोपियाँ उनके बिना अपनी जिन्दगी को व्यर्थ समझती हैं। वह कहती है कि यदि वे फिर से उसी यमुना के तीर पर नहीं आयेंगे, तो मैं 'हरि-हरि' रटती हुई शरीर-त्याग कर दूँगी—'जौं यदुपति नहि आओत रे ओहि यमुनाक तीरे/हमहुँ मरब हरि हरि कय रे छुटि जाएत शरीर' (मि०सं० गीत 313) जब कृष्ण ब्रज को छोड़कर मधुपुर चले जाते हैं तो ब्रज में उदासी छा जाती है। गोपियाँ उनके बिना सिर धुनकर जीने की स्थिति का अनुभव करने लगती हैं। कृष्ण के जाने से जैसे 'प्रेम परसमनि' के भुला जाने की पीड़ा उन्हें साल रही है। वे बची हुई जिन्दगी जीने से बेहतर जहर खाकर मरने को ही समझने लगती हैं—'प्रेम परसमनि छुटि गेल रे पहु भय गेल चोरी/आब जीवन नहि जीअब रे विष पिअब घोरी/धनपति मन धैरज धर रे तोहि भेटत सोहागे/माधव मधुपुर आओत रे तोहि जागत भागे'। (मि०सं० गीत 314) किन अवगुणों ने मोहन को ब्रज छोड़ मधुपुर जाने के लिए विवश किया है, गोपियों की समझ के परे है। मलयपवन के बहने से तन में पीड़ाओं का बढ़ना, तिसपर यमुना के किनारे वृन्दावन में कोकिल की स्वर लहरी, प्रीति की स्मृति को जगाने में सहायक सिद्ध हो रही है, जो उनके हृदय को सालने में तनिक भी कसर नहीं छोड़ रही है। चित्त की चंचलता ऐसी बढ़ गयी है, जैसे कमल पत्र पर पड़े हुए जल हों। (वही गीत 315)

कृष्ण जब गोकुल छोड़कर मधुपुर जाने लगते हैं तो इसकी खबर चारों ओर तत्काल फैल जाती है। दौड़ती हुई गोपियाँ धराशायी होकर रोने लगती हैं। आँसू बेसम्हार हो जाने पर आँचल से पोंछती हैं। अँजली जोड़कर विनती करती हुई कहा-सुना माफ करने का निवेदन करती हैं। हृदय में कभी अपने प्रति कपट का भाव नहीं रखने की बात करती हुई, मनोभावना को भी स्वच्छ रखने हेतु आग्रह करती हैं। इतना ही नहीं, पर्व का अवसर नजदीक आ रहा है उसका स्मरण दिलाती हुई जल्द लौटकर आने हेतु कहती हैं—'अवसर पावनि लगीच अबैत अछि/झट पथ आयब घूरि/सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस को/आयब गोकुला बहूरि।' (मि०सं० गीत 320)

विद्यापति के पद 'चानन भेल विषम सर रे भूषण भेल भारी' के अनुरूप यहाँ राधा अपने बँधे हुए केश को परिस्थिति की प्रतिकूलता की वजह से 'विषम' हुआ महसूस करती है और वियोग के अश्रुजल से काजल के धुलने की बात कह रही है। आँगन जैसे 'विजुवन' हो गया और घर में जैसे दिन में ही अंधेरा पसर गया है। शयन के लिए रखा हुआ पलंग और तकिया (कृष्ण के न होने के कारण) पर्यत नहीं भाता। (वही गीत 321) गोविन्द गोकुल से चले गये हैं, पूरी नगरी जैसे अनाथ हो गयी है। ब्रजवनिताएँ करुणा करती हुई सिर धुन रही हैं। उन्हें यह भी ज्ञात है कि प्रार्थना पूर्वक यदुनाथ को अनुकूल बनाकर अक्रूर ने अपने रथ पर बैठा लिया और चलता बना। उनकी विकलता का आलम यह है कि—

दूइ चारि कोस निवित भय ताकल
हरिजी के लय गेल दूर
एहन विवेक ने चाहिए हरिजी
वारि वयस दुख देल
बालापन हम संगहि गमाएल

तरुणि बिछुड़ि हरि गेल
कहथि खगेश सुनु हे भुसुण्डी
कृष्ण सकल तेजि गेल।

(मि०सं० गीत 322)

विद्यापति की भणिताओं से युक्त एक गीत में तो गोपियाँ इतनी व्यग्र-विकल हो गयी हैं कि कृष्ण के मधुपुर चले जाने के बाद वह किसके भरोसे जियेंगी और किससे आशा रखेंगी। उनके होते हुए दिन क्षणभर में बीत जाता था, सो अब 'पहर लागत एक मास।' अब मुरली की धुन कौन सुनाएगा एवं ब्रजवासियों के हृदय में अब कौन निवास करेगा? किससे इस कठिन दु:ख की चर्चा करूँगी? जिस तरह की निराशा की परिस्थिति पैदा हो गयी है या कृष्ण ने पैदा कर दी है। उन्हें इस बात के लिए सर्वाधिक बेचैनी है कि—

ब्रजवनिता संग लय वृन्दावन सखि हे
आब के रचत नित रास
भनहि विद्यापति सुनु ब्रजवनिता
आओत कन्हैया पास।'

(मि०सं० गीत 323)

'मलार' शैली के पदों, जैसे 'आलि रे प्रीतम बड़ा निरमोहिया' (वही गीत 347) 'अलि रे विधि लिखि कौन मेटाइ' (वही गीत 348) 'अलि रे बिन पिया विरह सताई' (वही गीत 349), हे ऊधो लिखब कोन विधि पाती' (वही गीत 350) 'अलि रे लय जनु जाह सयनमा' (वही गीत 353) 'हे उधो बरिसन चाह बदरबा' (वही गीत 354) 'हे ऊधो ककर नारि हम बाला' (वही गीत 355) में गोपियाँ उद्धव को भला-बुरा सुनाती नजर आती हैं। इन गीतों में अनेक-अनेक भंगिमाओं में गोपांगनाएँ अपने अन्तर की पीड़ा का बखान करती हैं। यौवन-काल में धोखा दिया, जीवन-नौका को बीच धार

में छोड़कर कृष्ण रूपी घटवार बड़ी चतुराई में चल दिया। अनेक पदों में सूर के वियोग विषयक पदों का-सा आनन्द उपलब्ध होता है—

हे उधो लिखब कौन विधि पाती
अंचल पत्र नयन जल कज्जल नख लिख नहि थिर छाती
चन्द्र किरण बध करत एतय पिय ओतय रहू दिन-राती
रेशम वसन कनक तन भूषण तेसर पवन जिबघाती
कहथि रमानन्द सुनु विरहिनि आओत श्याम विरहाती।

(मि०सं० गीत 350)

विरह की तीव्रता इतनी है कि पत्र लिखने में अनेक प्रकार की बाधाओं की ब्यौरेबार चर्चा अनेक गीतों में की गयी है। इनकी कथावस्तु, भाषा-शैली आदि को देखकर शिष्ट साहित्य की विशिष्ट रचनाओं को सामने रखकर इनका मूल्यांकन सम्भव है। 'पावस' विषयक इस गीत में जैसे कालिदास की तरह मेघ को ही दूत बनाया गया है—

नव घन गरजत माला
एक सघन तिमिराछन रजनी कूजिय दुतिय मराला
तेसर सेज सून लखि पहु बिनु उठत अन्तर ज्वाला
रहि-रहि चहुदिश चपला चमकत विरहिनि जन जिमि भाला
खेपब राति कोन विधि सखि हे चिन्ता हृदय विशाला
हे जलधर अहाँ जाउ ततय झट जहाँ बसथि नन्दलाला
करबनि विनय चरण धय लबि क' आवथु निमिष अभेला
तौं ब्रज मे एको नहि जीउति बिरहिनि सब ब्रजवाला।'

(मि०सं० गीत 358)

इसी प्रकार की पीड़ाओं का इजहार गोपियाँ पावस विषय 'त्रिमासा' गीत में भी करती हैं। इसी से मिलती-जुलती वेदना व्यक्त हुई है 'झूलन' गीत में, जहाँ गोपियाँ सावन जैसे मनभावन महीने में

प्रियतम श्रीकृष्ण पर घर छोड़कर भूल जाने का आरोप लगाती हैं। वे बरसात के मौसम में बिजलियों के गिरने एवं काम के सर से आहत होने की वजह से भयवश थर-थर काँपने की तकलीफ झेल रही हैं, वह भी रात अंधेरी में। मन: स्थिति का चित्रांकन देखिये—

भूषण बसन कुसुम शयन कमल कली कुच मोर
बिन पति रतिपति आय के हरत सकल घन घोर
पाती लीखू ने झट आली रचि रचि सोचि बिचारी ना
अंचल पत्र बनाय के लोचन कज्जल घोर
लिखन देत नहि पत्रिका झरति नयन नितनोर
ऐसो भारी रे विपतिया मोर कोन उवारी ना।
सखि हे सावन में घर छोड़ि प्रीतम गेल बिसारी ना।

(मि०सं० गीत 361)

'रास' से सम्बन्धित गीतों में तो राधा गोपियों से कहती हैं कि 'चलह सखी सुखधाम श्याम जहाँ रास रचे।' (गी० 362) वह एक-एक डेग निहारती हुई गजगामिनी की तरह चलती हैं। श्याम के प्रति प्रेम के कारण पुत्र, पति एवं गृह-त्याग तो पहले ही कर चुकी हैं। वहीं दूसरे गीत में उसे इस बात का एहसास भी है कि जहाँ से बाँसुरी बजने की आवाज आ रही होगी, श्याम वहीं रास रचा रहे होंगे—'वंशी बजे अेहिठान श्याम जहाँ रास रचे' (गीत 363)

एक 'ग्वालरि गीत' में गोपियाँ यशोदा से कहती हैं कि अपने पुत्र को 'वरजिए' वे मुझे गालियाँ दिए हैं। दूर से बुलाकर नाव पर चढ़ाकर रमस-रमसकर रस की बातें पूछने लगे हैं। मटकी फोड़कर जल यमुना में बहा दिए हैं। ग्वालों के साथ गाय चराते एवं वंशी बजाते रहते हैं। इतना ही नहीं—'चट द' चीर पकड़ि क' पट द' फाड़ि देलनि-ए। हमारा गाड़ि देलनि-ए'। गोपियाँ आगे कहती हैं—वृन्दावन की कुंजगली में मगन होकर घूमते-फिरते रहते हैं। चुटकी से

पकड़कर मेरे दोनों गालों को दबा दिए हैं और विरोध करने पर हमें गालियाँ दिए हैं। यशोदा उत्तर देती हुई कहती हैं—

कते बरजू बरजल नहीं मानय नन्दराय जी के डर नहि मानय
गोपी सब समलिया पर यदुआ डारि देलनि-ए हमारा गारि देलनि ए।

(गी० 366)

कहीं वे नाव पर बैठी गोपियों को खेते समय नाव डुलाकर परेशान करते देखे जाते हैं, तो कहीं पर गोपबालाओं को रोककर पार उतारने के बद्‌ले गाढ़ी रकम की माँग करते नजर आते हैं। इतनी दिक्कतों के बाद भी गोपियाँ दूध, दही और माखन बेचने मथुरा नगरी ही जाना पसंद करती हैं। गोरस बेचकर राधा जब लौटने लगती है तो कृष्ण उन्हें आज भर रुक जाने हेतु अनेक प्रलोभन देते दीखते हैं—

देवहु मे आहे राधा हाथ कंगन आर देब गृमहार
आजुक रैनी आहे राधा एतहि रहू भोरे उताख पार

राधा का उत्तर है—

डाहब जारब हाथ के कंगनमा समुद्र भसैव गृमहार
एहन बचन आहे कान्हा जनु बोलु सुनत कन्त हमार।

(मि०सं० गीत 371)

कजली, चौमासा, छौमासा और बारहमासा शैली के गीतों में भी वियोगिनी की वियोगदशा का जो चित्रण उकेरा गया है, वह अतुलनीय है। इन गीतों को किसी श्रेष्ठ रचनाकारों के कृष्ण विषयक गीतों को सामने रखकर तुलित करने पर ही इसकी मूल्यवत्ता से परिचित हुआ जा सकता है। 'वसंत' और 'फाग' से सम्बन्धित गीतों में भी संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों का रूपांकन बड़े ही रुचिकर ढंग से हुआ है। वसंत में कहीं कृष्ण के 'परदेश' में होने के विरह को बर्दास्त करना गोपियों के लिए कठिन हो रहा है, तो कहीं वह उनके स्मरण मात्र से चंचलता को प्राप्त कर लेती हैं और 'मदन दहन तन

दग्ध शरीर' होने लगता है।

वह अपने शरीर की व्यथा किससे सुनायेंगी, जिसका जन्म कृष्ण के प्रवासी बन जाने से हुआ है। वह कृष्ण की दुलारी रही है, भले ही आज अबला कहलाने की स्थिति में आ गयी हों। उनके लिए वियोग के दु:ख को झेल पाना अत्यन्त कठिन हो रहा है। अत: अपनी सहेली से कहती हैं कि—'जौं नहि सखि अब आओत कंत। हमहुँ करब सखि जीवक अन्त।' (मि०सं० गीत 396) एक अन्य गीत में तो राधा को कृष्ण से हार की माँग करते हुए वर्णित किया गया है, जिसे धोखा देकर कृष्ण ने उसके गले से उतार लिया था। उसे इस बात की चिन्ता भी खाए जा रही है कि हार के नहीं मिलने पर सास, ननद की गालियाँ सुनने की तकलीफ झेलनी पड़ेगी।

'फाग' (होली) विषयक एक गीत में श्याम और राधा को यमुना के किनारे होली खेलते हुए दिखाया गया है। श्याम जहाँ अपने हाथों में सोने की पिचकारी लिए हुए हैं, वहीं राधा के 'खोंइछ' (आँचल) में अबीर की झोली है—'श्यामक हाथ कनक पिचकारी राधाक खोंइछ अबीर झोरी। यमुना तट श्याम खेलय होरी यमुना तट।' (मि०सं० गीत 405) ऐसे अनेक गीत हैं जिनमें कृष्ण के लोकव्यापी चरित्र का उद्घाटन किया गया ह।

और अन्त में, मैथिली लोकगीत में वर्णित श्रीकृष्ण के जीवन से सम्बन्धित प्रसंगों के आलोड़नोपरान्त यह बात स्पष्ट होती दिखलाई पड़ती है कि इन गीतों में श्रीकृष्ण के जगतपालक से लेकर लोकजीवन एवं संस्कृति के अन्तर-व्यापित चरित्र के विविध पहलुओं का अत्यन्त विशद् चित्रण सम्भव हुआ है। भले ही कृष्ण भक्त कवियों की-सी सांगोपांगता इनमें नहीं दीखे, परन्तु शास्त्रीयता एवं लौकिकता का सहज समन्वयन अवश्य ही दीखेगा। मिथिला में प्रचलित इन लोकगीतों की मादकता ने ही तो संस्कृत के अन्तिम

गीतकार जयदेव तक को भी अपनी ओर खींचकर संस्कृत में इसके प्रयोग की प्रेरणा प्रदान की और बाद में चलकर (दो शतकोपरान्त) महाकवि विद्यापति ने इन दोनों स्रोतों का उपयोग करते हुए अपने कालजयी गीतों की रचना द्वारा कोमलता एवं रमणीयता का उत्तरदान मध्यकालीन हिन्दी साहित्य को सबसे पहले दिया। बागमती, गंडकी, कौशिकी एवं कमला की धाराओं में धुले इन गीतों में मिथिला के मिट्टी की सौंधी गंध, धानों की सुगंध एवं आमों के बौरों की महक होने के साथ ही, शस्य-श्यामला विदेह भूमि की निंर्दोष ग्रामीण शैली की मुग्धता, मनोहारिता और मौलिकता जैसे लिपटी हुई है।

●●

मालवा जनपद का लोक-साहित्य : श्रीकृष्ण का सन्दर्भ

❀ डॉ० मनमोहन सहगल

भारतवर्ष में कृष्ण नाम के उदय और विकास का एक अलग इतिहास है। अनेक इतिहासकारों ने इस संज्ञा पर खोज करते हुए क्रमश: उसे ऋषि, उपदेशक, नीतिवान् तथा अन्तत: अवतार के रूप में स्थापित किया है। श्रीमद्‌भागवत, वायु एवं हरिवंश पुराणों में श्रीकृष्ण चरित की स्थापना पुरातन भारतीय परम्परा में 'विनाशाय दुष्कृताम्' के लिए अवतरित एक दैवी शक्ति के रूप में की थी, जबकि डॉ० भण्डारकर और डॉ० राय चौधरी ने प्रथम शती ई०पू० में आमीर जाति के बाल-देवता के रूप में कृष्ण को स्वीकार किया है।

पंजाब में कृष्ण-कथा महाभारत के परिमाण में ही प्राचीन कही जा सकती है। कर्ण-पर्व में 'पंचनद' शब्द का होना एवं महाभारत की समूह महत्वपूर्ण घटनाओं का घटना-क्षेत्र पंजाब में होने के संकेत सहज ही पंजाब के कृष्ण के अधिक समीप होने के प्रमाण हैं। राम-कथा पंजाब के लिए उतनी निकट नहीं कही जा सकती, जितनी कि कृष्ण-कथा। पंजाब के ऐतिहासिक स्थानों, स्त्री-पुरुषों, पर्वोत्सवों तथा सांस्कृतिक परम्पराओं में कृष्ण-कथा की संज्ञायें एवं व्यावहारिक पक्ष बहुत दूर तक व्याप्त हैं। अत: इसी नाते पंजाब के लोक और साहित्य में कृष्णत्व के संयोग को भी उसी समय से स्वीकार किया जा सकता है, जब से ऋषि वेदव्यास ने 'महाभारत' का प्रणयन किया होगा।

वर्तमान पंजाब तीन जनपदों में विभाजित है—माझा, दुआबा

तथा मालवा। मालवा जनपद सम्भवतः क्षेत्रफल में सबसे बड़ा है; इसमें पटियाला, संगरूर, भटिंडा, फतहगढ़ साहब और मोहाली के जिले तथा लुधियाना और फिरोजपुर के कुछ क्षेत्र शामिल हैं। रेखांकित प्रदेश का जन-जीवन सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्तर पर कृष्णमय है। यहाँ के जन-साधारण में श्रीकृष्ण-साहित्य में इतना आग्रह है कि उन्होंने महाभारत, श्रीमद्भगवद्गीता, सूरसागर तथा अष्टछाप के अन्य कवियों की रचनाओं के भाषानुवाद एवं गुरुमुखी लिप्यंतरण कर-करके अपने पाठ के लिए संजो रखा है। हस्तलिखित प्रतिलिपियों के रूप में यह सम्पन्न साहित्य आज भी यहाँ के पुराने ग्रंथालयों में उपलब्ध है। गुरुमुखी लिपि में ब्रजभाषा में लिखी अनेक कृष्ण-काव्य की मौलिक पाण्डुलिपियाँ भी यहाँ प्राप्त हैं; क्योंकि ऐसी समूची रचना (मौलिक, भाषान्तरित एवं लिप्यंतरित) का गढ़ पटियाला एवं आस-पास का क्षेत्र है, यह अनुमान लगाना कठिन नहीं कि इस जनपद में कृष्ण के प्रति प्रेम, श्रद्धा, भक्ति और जीवन के सहज की आत्मीयता सर्वाधिक है।

श्रीकृष्ण के जन्म, लीलाओं, विवाह, कृष्ण के लिए रोमानी वृत्ति, कृष्ण की वीरता, कृष्ण के लिए प्रेम-श्रद्धा, भक्ति-भावना तथा ब्रह्मरूप कृष्ण मालवा जनपद के लोक-काव्य के मुख्य विषय हैं। इसी क्रम में हम लोक-भावना का अध्ययन करेंगे।

श्रीकृष्ण-जन्म—मालवा में भारत के अन्य प्रदेशों की तरह पुत्री-कामना की अपेक्षा अधिक रहती है। यशोदा अथवा देवकी के लिए लोक-समाज की शुभकामनाओं के रूप में कृष्ण-जन्म की बात आगे बढ़ती है। स्त्रियों के गान में भावी के लिए शुभ प्रेरणा दी जाती है, अवसर से लाभ उठाने को बढ़ावा दिया जाता है—

एहो बेला नी झोल भरन दा
गिण लै कड़ियाँ लै झोली

पुत्तां दी दौलत, जितनी होवै, उतनी थोड़ी॥

बेटों की दौलत एकत्र करने में मालवा का लोक-चिन्तन दूर तक जाता है। बेटा बाद में अपने बुजुर्गों की चाहे बात भी न पूछे, किन्तु उन्हें घर में पुत्र-रत्न (?) को देखकर न केवल सन्तोष होता है, बल्कि वे लोग हार्दिक उल्लास में फूले-फूले फिरते हैं। मालवा के सुदूर पूर्व में लोक-गीत गाया जाता है—गाने का अंदाज खुशियों भरा होता है। ढोलकी की थाप, छैनों की छनन-छनन और स्वर का आरोह, समां बँध जाता है—

घर नन्द दे मिलण बधाइयाँ जी, घर नन्द दे
अद्धी अद्धी राती मेरा गोविंद जम्मिआ
जग विच धुम्मां पाइआं
मथुरा दे विच जनम लिआ
गोकुल मिलण बधाइआं, घर नन्द दे
देवकी दी कुक्खों जाइआ
जसोदा गोद खिडाइआ, घर नन्द दे

मालवा के भटिंडा प्रदेश में इसी गीत से मिलते-जुलते भाव प्रकट करता यह कथन, भाषा की दृष्टि से हिन्दी के अधिक निकट आ गया है। मालवा के पश्चिम में पड़ती यह भाषा!

देवकी जाए जसोदा खिलाए, सो नंदलाल हुए।
नन्द बाबा के पलना झुलत हैं, घर घर दरब लुटे
मथुरा कन्हैया ने जन्म लियो है, गोकुल पड़ी बधाई।

झूला झुलाते हुए माँ-बहिन लोरी देती हैं, एक उल्लास का वातावरण बना रहता है। जन्माष्टमी उत्सव के अवसर पर मालवा के मन्दिर में स्वर्णिम झूलों में आज भी बाल-गोपाल की मूर्तियों को बिठाकर भक्ति ने झूला हिलाती हुई गुनगुनाती हैं—

सोने दा पंधूडा, सोने दी डोरी
तैनूं माँ देवे लोरी, तैनूं भैण देवे लोरी।

अर्द्धरात्रि का शान्त समय, लोक जीवन में एक उत्साह, उल्लास और अपने इष्ट के लिए असीम प्रेम यों प्रकट होता है कि जैसे सचमुच परिवार में पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई हो। बाल-लीलाओं में पूतना-वध प्रसिद्धतम घटना है। मालवा के साधुजन (साधुदास) ने लोक शैली 'वार' में 'पूतना दीवार' लिखते हुए कृष्ण-भक्ति पर पूर्ण विश्वास प्रकट किया है—

बीड़ा लीता पूतना दृग डाकन वांगु निहारे।
बिहु दा गंढा रगड़ के थन ऊपर चंद्री ढाले।
उस नीगरि सभ खपाइ ओन गड़ मथुरा नगर दुआले।
आइ बड़ी विच गोकले जिस आगे कान समाले।

ध्यान देने की बात यह है कि मालवा के लोक-कवियों ने कृष्ण की बाल-लीलाओं के चित्रण की अपेक्षा ऐसी लीलाओं को अधिक बपनाया है, जो कृष्ण की उदारता, प्रेमलता, परोपकारता एवं उद्धार करने की भावना को दर्शाता है। इसका मूल कारण हमारी समझ में यहाँ की रजवाड़ी व्यवस्था और देशी शासन है। जन-सामान्य श्रीकृष्ण की उन लीलाओं और सुकृत्यों की वृत्तान्त कहते थे, जो वे अपने राजा में देखना चाहते थे। सर्वाधिक बल यहाँ के लोक कवियों ने 'कृष्ण-सुदामा-लीला' पर दिया है। अपने राजा की प्रसन्नता के लिए वे उक्त लीला में जिस उदारता और निर्धनता-हरण को प्रकट करते थे, परोक्ष में उन्हें अपने शासक की उदारता-चित्रण के मिस कुछ पा जाने की आशा रहती थी। कृष्ण की वीर-मूर्ति का चित्रण एवं विवाह में दूल्हा रूप में शोभित कृष्ण उनके वृत्तान्तों में प्रमुख थे, क्योंकि इस बहाने से राजाओं की मिथ्या वीरता और विलासिता में डूबे रजवाड़ों को विवाह-मण्डप के सपने दिखाना

उनका लक्ष्य होता था। यही कारण है कि यहाँ रचित लोक-किस्सों में 'सुदामा-चरित' तथा 'रुक्मिणी मंगल' अधिक हैं। उदाहरणार्थ आलम कवि जब मालवा में आया, तो उसने भी राजा की प्रसन्नता के लिए रुक्मिणी के सौन्दर्य को भड़काऊ बना दिया—

निकसत कुंवरि रूप की रेखा। सहस कला जनु सूरज देखा।
जगमग दरसु दीठी नहि आवै। रूप की जोति लपट जनु धावै।
रवि ससि नखत सहज दुअ जाने। चकचउंधे सब लीक भुलाने।
ससिमुख के सनमुख गिरि परहिं। देवी जान दंडवति करहीं।

इतना ही नहीं, गुरु गोविन्द सिंह जब लोक-स्तर पर उतरकर कृष्ण और राधा की क्रीड़ा को प्रस्तुत करते हैं, तो

कान्ह छुहयों चहै ग्वारिन को सोऊ भाग चलै नहीं देत छुहाई।
जिउ म्रिगनी अपने पति को रति केल समे नहीं देत मिलाई।
कुंजन भीतर तीर नदी ब्रिखभान-सुता फिरै तह धाई।
ठउर तहा कवि स्याम कहै, इह भांत सो स्याम जू खेल मचाई।

इसी प्रकार 'सुदामा-कृष्ण-कथा' को यहाँ के लोक-कवियों ने अपनाया है, लक्ष्य धन-प्राप्त करके जीवन-सुखी बनाने की मूल इच्छा है। द्वारका से खाली हाथ लौटकर जब अपनी झोंपड़ी के स्थान पर महल को देखा तो सुदामा का विस्मित होना सहज बात थी। साहिब दास नामक कवि यह बता बताना भी चाहता है और ब्राह्मण की लक्ष्मी से विरक्ति भी दिखाता है—

पेख भवन बहु लच्छ ब्रह्म-सुत भइओ चिंतजुत।
यह बिखिआ विष को दानु हमै कह दीओ जगतपति।
राज कीये कह होत जात किआ भिछिआ लीनी।
या जग सबै अनित तत सिमरन चित चीनी॥

विवाह प्रसंग—मालवा में कृष्ण (हीरो) के रूप में भी देखा जाता है। प्रसंग कोई भी हो, वह श्रीकृष्ण में ही समाधान खोजते

हैं। कन्या के विवाह के लिऐ वर की खोज है, कैसा वर होना चाहिए? बस कन्हैया जैसा। लोक गीतों में औरतें अपनी इस आकांक्षा को यों प्रकट करती हैं—

बेटी केही जेहा वर लोड़िए
ज्यों चन्ना विचों चन्न, कान्हां विचों कान्ह
कन्हैया वर लोड़िए।

वीर-पूजन भावना (हीरो वरशिप) श्रीकृष्ण के लिए इतनी अधिक प्रबल है कि मुहावरों और लोकोक्ति में कृष्ण छाये हैं। किसी को अगड़ा बनने पर टोकना हो तो कहते हैं 'क्यों वड्डा कान्ह बणदैं।' दो की बात में कोई दखल दे, तो 'तूँ कोई कान्ह हैं' कह देते हैं। इसी प्रकार इस प्रदेश में स्त्री-पुरुषों के नाम-करण पर सर्वाधिक संज्ञायें श्रीकृष्ण से सम्बन्धित होती हैं—कृष्ण, हरि, मोहन, माधव, मुरारी, वंशी, मुरली, राधा-कृष्ण, राधा, रुक्मिणी, कृष्णा, सुभद्रा आदि। विवाहासर पर कुंकुम पर में भी राधा-कृष्ण मिलन या कृष्ण-रुक्मिणी संयोग कहा जाता है। आशीर्वाद में भी राधा-कृष्ण युगल की तरह सानन्द रहने की कामना की जाती है।

कृष्ण लीलायें की जाती हैं, तो उनमें रुक्मिणी-कृष्ण की विवाह-वेला पर मालव-प्रदेश के रीति-रिवाज उसमें मिलाकर एक अच्छी खासी खिचड़ी तैयार कर दी जाती है। नानके (ननिहालवा तथा दादके (ददिसार वाले) शादी में सम्मिलित होते हैं। पंजाब में ननिहाल के लोग वर या कन्या पक्ष को धन-धान्य देते हैं (छक) किन्तु कृष्ण के नाना बंदीगृह में थे और मामा शत्रु। ऐसे में मामा को बुरा-भला कहा जाता है और मामा-मात्र को ही 'कंस' नाम देकर मजाक उड़ाया जाता है। 'कान्ह भगवान दीवार' में लोक गायक तेजभान इस स्थिति को इन शब्दों में प्रस्तुत करता है—

निकल मामा! अन्दरहु, भनेवा खड़ा पुकारे।
निकल काइर! घर अन्दरहु, बाहर कान्ह वंगारे।
किउ मां पिउ मेरे बाधिओ किउं राज कीतो हतिआरे।
नित लोड़ें मैंनूं मारिआ, गोकल दे लोग संघारे।

बारात के सहभोज पर बैठने के समय गालियाँ गाने (सिट्ठणी) का प्रसंग आता है; अपनी लड़की की प्रशंसा, वर की हेठी और बारात पर अधिक खाने के आरोप लगाये जाते हैं। यथा—

कुड़ी तां साडी तिल्ले दी तार वे, मुंडा तां दिसदा कोई धुम्यार वे
जोड़ी तां फबदी नां, नलज्ज्यो, लज्ज तुहानूं ना।

या

जांझीओ मांजीओ किहड़े होए ने
खा खा के रज्जे ना, ढिड ने किटोए ने।
निक्के निक्के मुँह ने, ढिड ने कि खूह ने॥

मालवा के लोक कवियों ने श्रीकृष्ण की बालक जन्य शरारतों, माखन चोरी, गोपियों के मार्ग में तंग करने की अनेक शिकायतों का उल्लेख किया है—

इक फरियाद तेरे लाल दी। इस निक्के जेजे बाल दी।
गल्ल करदा नहीं ए चाल दी। तूं इसनूं नहीं सम्भाल दी।

लोक कवि रामदास श्रीकृष्ण की शठता का चित्र इन शब्दों में प्रस्तुत करता है—

लाल धनईआ पकरी बईआं सिर तों मटकी उतार लई।
दोऊ भांति तांको मुख चूंमिओ कर ते मुंदरी उतार लई।
रामदास मन भावन कीनो बिआकुल भई तब छाड़ दई।

मालवा जनपद में राधा-कृष्ण की अनेक कहानियाँ घर-घर में कही-सुनी जाती हैं। इन कहानियों में युगानुकूल परिवर्तन भी होते हैं। राधा को माँ डाँटती है कि कृष्ण से सम्बन्ध न बनाये किन्तु इश्क-

दीवानी राधा पंजाब के किस्साकारों की दृष्टि में 'जब प्यार किया तो डरना क्या' के प्रश्रय में रहती है, रोकना-टोकना उसे पसन्द नहीं। कृष्ण के प्रेम में दीवानी माँ को भी सपाट जवाब दे देती है—

माँ : **अनी राधे तूं ब्रिस्वभान सुता नी लज्जों गईओं ओह अहीर कहांवदा।**

राधा : **इश्क न पुछदा जाति नी भोली माए लोक परलोक गवावंदा।**

माँ : **अनी राधे संभलि संभलि बोलु नी लज्जों गईओं, तेरा हुणे पिता घर आंवदा।**

राधा : **अनी माए सूरे सती पतंग, इतना मरनो ता डरनु न आवंदा।**

राधा मानती तो बात गली, मुहल्ले, गाँव में चलती है। राधा-कृष्ण के इश्क की चर्चा छोटे-बड़ों के मुँह पर आई तो राधा बदनाम होने लगी। नाम बद्द हुआ, किसे पसन्द ? 'मरने से न डरने' का दावा करने वाली राधा घर-घुस्सू होने लगी। कृष्ण का बरसाने में आना जाना घट गया। सखियों को छेड़ने और तंग करने का बहाना मिल गया। भीतर से वह भी विरह में टूट गयी। लोक गीत की बारहमासा पद्धति में केशों कवि कहता है—

सुण नी राधे इसक दीवानी। जब सी कोले तेरे जिंद जानी।
तद तूं फिरदी रूप गुमानी। छुटदी लहरां लटक जवानी।
मन मगरूरी अलि मसतानी। दिल विच खौफ न करें इआनी।
हुण तूं क्यों मुड़के पछुतानी। तुरीआं सारे जग कहानी।। तेरे नाम दी।

मालवा के किस्साकारों तथा लोक गायकों में भ्रमर गीत प्रसंग या उद्धव-गोपी संवाद प्रसंग बड़ा लोकप्रिय है। इस प्रसंग में गोपियों की मानसिकता, कृष्ण के प्रति गिले-शिकवे एवं मथुरा वालियों के प्रति गोपियों के ईर्ष्या-द्वेष का खूब खुलकर उल्लेख हुआ है। गोपियों को आक्रोश है उस प्रिय पर जो उन सुन्दरियों को छोड़कर

जाने कहाँ, किसके साथ भटक रहा है। उनकी सार नहीं लेता और उसकी अनुपस्थिति में तो उनका पहनना-ओढ़ना भी बोझ बन गया है। गोपियाँ उद्धव से आत्म निवेदन क़रती हैं—

हमारी कह दीजो, हरि से जाए!
नौरंग चुनड़ी, पंचरंग अंगिया, हरि बिनु हमें न सुहाय!
गोरी गोरी बहियाँ, हरी हरी चूड़ियाँ, हरि बिनु हमें न सुहाय!

गोपियों को यह भी चिन्ता है कि कृष्ण ने उनके मनमोहक रूप को त्याग कर कुब्जा से नाता जोड़ लिया। उन्हें यह सह्य नहीं कि सुन्दर का त्याग कर असुन्दर में आसक्ति हो। अतः उद्धव को उपालम्भों के ढेर मिलने लगते हैं। पंजाब में एक लोक शैली है 'भिठड़े', जिसका अर्थ है मिठास-भरे या अनूठे कथन। सोधा नामक लोक गायक ने 'मिठड़े श्री क्रिश्न जी के' में कहा है—

सोहनी नूं छड के कसोहणी दे नाल रत,
कुब्बी जेही नार नित सीने नाल लाउंदा।
रिछ सैदी पुत्तरी लै आइआ डोली विच पाइ,
काले जेहे कान नूं हयाउ नहीं आउंदा।
जग दा है हासो हाना, सावरे दा नाउ काना,
बंसरी बजाइकै है नारी आ रिझाउंदा।
इकना नू साई देंदा इकना वधाई कान,
जणी खणी नाल नेहु काहे नूं लगाउंदा॥

इस 'मिठड़े' में गोपियों की वेदना तो प्रकट है ही, किन्तु उनकी ईर्ष्या उस समय शिखर पर पहुँच जाती है, जब उन्हें कहीं से पता चलता है कि कृष्ण कुब्जा को चाहने लगे हैं। वे कुब्जा मलिन को बुरा भला तो कहती ही हैं, साथ ही उसे आक (अर्क) के फूल से उपमा देतीं, अपने को गुलाब और चमेली समझ रही है—

भस्स जेही मालणी दे फिरदा पिच्छे लग्गा
रात अते दिनें भेस कीता फिरे चोर दा।
केवड़ा, गुलाब ते खिल-सी चंबेली छड्ड,
अक्क संदे फुल्ल उते लोभी चित भोर दा ॥

भ्रमर गीत प्रसंग कृष्ण-काव्य की अनमोल थाती है। इस प्रसंग में विरह की पराकाष्ठा और नारी-चित्त की विवशता अन्तहीन दीख पड़ती है। जब गोपियों के पास तर्क नहीं रह जाते, योग-निर्गुण के उलझे मार्ग उनकी समझ में नहीं बैठते तो विरह की अलग-अलग दशाओं में तड़पती गोपियाँ हताश अश्रुपात करने लगती हैं। स्त्री के अश्रु पुरुष को द्रवित करने के लिए अमोघ अस्त्र का काम करते हैं। मालवा के किस्सा काव्यकारों ने उद्धव-प्रसंग में उद्धव को बदलने के लिए इस तथ्य को आधार बना लिया है। गोपियाँ ऊधो को अपने योग के बारे में कहती हैं–

ऊधो, हम आपही जोग कमाइआ। करम लिखिआ सोई पाइआ।
शबद सुनाइ बंसी को, मोहन, दै उपदेश सिधाइआ।

अश्रु का तो अन्त ही कोई नहीं। ऊधो सरीखे ज्ञानी पर भी बातों का आँसुओं का प्रभाव होता है। हम यहाँ लोक-कवि मस्तराम की रचना 'संवाद ऊधो तथा गोपियों का' में से दो छन्द प्रस्तुत कर रहे हैं–

जिन्ह नेह लग्गा तिन्हां सुख केहा, सुख ढूंढन नेहु विहूणियाँ नी।
हस्स गल्ल न काई निकले नी, नैणी नीर ते निभाझूणीआं नी।
किरम अग्ग दे जिउंसदा अग्ग भालण, विच अग दे ही नित दूणीआं नी।
मस्तराम तिन्हां सभ्भ भुल्ल गया, पच्छी चरखा ते नाले पूणीआं नी ॥

और यह ऊधो–

बिरहनि हाल को देख बिहालु हुआ, ऊधो गिआन विचार भुलाइके जी।
रोम रोम बिओगु परवेसु कीआ, बैठो सरब सरबंस लुटाइके जी।

कहा धनं गोपी, धनं प्रेम है जी, वर मांगिहो सिआम पैजाइके जी।
मसतराम नयी कछू समझ मुझको, सुध परी है तुम पै आइके जी॥

मालवा में श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति-भावना भी बड़ी उत्कट है। जन-मानस में कृष्ण भगवान के रूप में बसे हैं। श्रीकृष्णस्तु भगवान स्वयं की विश्व-मान्यता से मलवई लोग विद्रोही नहीं, तथापि अपने भगवान के प्यार में किसी भी रूप में अपनी व्यथा प्रकट करने का अधिकार भक्त को होता है। कहीं तो लोक-गायक के सुर में भक्ति-महिमा इस प्रकार प्रकट है—

बेनती करें दिआं दे अग्गे-पिच्छे फिरे कान।
दूर है गुमानिआं दे नेड़े नहीं आउंदा।
भगतां अधीन शाम जेहा न प्रवीण कोई,
दीनां नूं निहार मुख आपणा दिखाउंदा।

तो दूसरी ओर भक्ति को रस में ढालकर प्रेममयी भक्ति का स्वर कुछ अलग ही है—

कुंजन बन छोड़ी रे माधो, मेरी क्या रे गुनाह तकसीर।
जो मैं होती जल की मछलिया, मेरे करते स्याम असनान, चरन गेह लेती रे माधो!
जो मैं होती तुलसी की माला, मेरे उर धरते घनश्याम, कंठ लग रहती रे माधो!
जो मैं होती बांस की पोरी, मेरे बंसी बजाते श्याम, अधर रस लेती रे माधो!

इस प्रदेश में लोक-कवि मिलखीराम हुआ है, जिसका रचनाकाल सन् 1974 ई० माना जाता है। विगत वर्णनों की अपेक्षा यह कवि मात्र सौ वर्ष पूर्व का है और इसने 'बारहमाहा श्रीकृष्ण' नामक रचना हमें दी है। इसकी उक्त रचना श्रीकृष्ण के अलग होने पर गोपियों का विरह, बे-पनाह प्रेम में स्मृतियों की माला पहनकर भक्त

को कृष्णमय कर रही है। सावन और असूज के महीनों में गोपी-मनोदशा का रूप देखें—

संयोग : सावण सखिआं नालि सांवला, रल मिल पींधां पांदा ऐ।
सुंदर सोहणा क्रिश्न मुरारी, रल मिल रास रचांदा ऐ।
दिल चुरा के लै जाइ क्रिश्न, बंसी जदों बजांदा ऐ।
मिलखी मालक भेष बदल के, लीला पिआ रचांदा ऐ।

वियोग : अस्सू आस न होरी पूरी, रो रो हाल बंगावां मैं
इह दिल करदा जोगन बनके, बिंदराबन विच जावां मैं।
भोछन फूंक सुट्टां विच वेहड़े, भगवा चोला पावां मैं।
मिलखी कारण भेष बना के, भिछिया दरस लिआवां मैं।।

उपर्युक्त मिलखीराम के कथन भक्ति-भावना के हैं, जिनमें मिलने का सुख और वियोग का दु:ख, दोनों भक्त-मन के लिए आनन्ददायी हैं और इष्ट के प्रति आस्था की आहुतियाँ।

पंजाब में गुरु-साहबवान के चिन्तन और जीवन-दर्शन का बड़ा गहरा प्रभाव है। स्वयं गुरु वाणी में श्रीकृष्ण की समानार्थक संज्ञाओं और विशेषकर 'हरि' शब्द की भरमार है। इसकी पृष्ठभूमि से भी यही सिद्ध होता है कि पंजाब के लोक जीवन में 'कृष्ण' दूर तक समाया हुआ है। गुरु वाणी के जीवन-दर्शन के आधार पर रणजीत सिंह नामक एक लोक-कवि ने 'बारामाहा क्रिश्न वियोग' लिखा है। इसमे कवि ने जीवात्म के विरह-चित्रण में आध्यात्मिक भावों को अभिव्यक्त किया है। इष्ट कृष्ण की प्राप्ति के लिए व्याकुल जीवात्मा अपने बुरे कर्मों को कोसती और शुभ गणों की वृद्धि की अभिलाषा करती है—

सावण सड़दी हरी विछोड़े, लई दुखां ने मार।
क्रिशन तिआगी तूं मंदभागी हुण रोंदी बदकार।

अमलां बाझ ना होण नबेड़े होणा नहीं उधार।
हीरा जनम अमोलक खोइआ की खटिआ संसार॥

जीवात्मा इसी विरह-व्याकुलता में रहकर वर्तमान शुभ कर्मों द्वारा अपने पाप-पूर्ण प्रारब्ध का शुद्धिकरण करती है और सत्कर्मों का शृंगार करती है। फागुन में वसन्तागमन होता है, तब सावन बिछुड़ी, पोष-माघ में दु:खों की उत्कटता में अपने को निखारती हुई, सत्कर्मों से शृंगारित जीवात्मा पर उसका प्रियतम पुन: मोहित होकर उसे संयोग प्रदान करता है—उल्लसित जीवात्मा कहती है—

फगण फलेजिंद भाग तुमारे आई बसंत बहार।
क्रिशन पति के मिलने खातिर प्रेम के लाइ सिंगार।
दुख बीते सुख सहज समाने, होई सुहागन नार।
बोध शाम जिंद सति गुर पूरे मेले क्रिशन मुरार॥

उक्त दोनों पद 'बारहमाहा' के मिस आत्मा-परमात्मा के बिछड़ने और पुनर्मिलन की कथा है, जो कर्मानुसार शुभ प्राप्त करने पर ही सम्भव हो सकता है। सूफी बुल्लेशाह ने कहा था 'अमलां उत्ते होण नबेड़े' और उसी धारणा को लक्ष्य बनाकर कवि रणजीत ने कृष्ण-मिलन की सम्भावना को सत्य में बदला है। यह भक्ति की पराकाष्ठा है। सत्कर्मों के माध्यम से प्रभु-मिलाप का सिद्धान्त ही तो श्रीकृष्ण ने भी श्रीमद्भगद्गीता में प्रचारित किया है।

मालवा जनपद क्या समूचा पंजाब ही चिंतन और चेतना का स्तर पर गीता से प्रभावित है। महाभारत इसी धरती पर लिखा गया ग्रन्थ है और यही कवि श्री वेदव्यास ने लोक जीवन को एक नयी जीवन-शैली प्रदान करने एवं चिन्तन-क्षेत्र में लोक को जागृत करने हेतु युद्ध का वृत्तान्त कहते-कहते अर्जुन और कृष्ण, दो पात्रों के संवाद के मिस एक ऐसे अमर साहित्य की देन भी है, जो आज विश्व व्यापी हो चुका है।

हमारे जनपद में श्रीमद्भगवद्गीता का संदेश अतीव लोकप्रिय है। अठारह अध्यायों में प्रस्तुत विशुद्ध चिन्तन क्योंकि मूल रूप में संस्कृत भाषा में है, इसलिए इस संदेश को नित्य नवीन बनाये रखने के लिए यहाँ के लोक-कवियों ने पचासों की संख्या में गीता के भाषानुवाद प्रस्तुत किए हैं, गीताधारित सैकड़ों कथनों, कथाओं और विचारों को काव्य के चोले में पेश किया है। भक्तों के मन में श्रीमद्भगद्गीता स्वयं भवान का कथन है, उन्होंने महाभारत एवं वेद व्यास को भुला भी दिया हो, तो गीता का एक-एक शब्द उनके लिए आप्त है, संग्रहणीय एवं आचरणीय है। मालवा में आज का जीवन गीतानुसार आचरण का हो या ना हो, गीतानुसार कथनों को स्मृतियों में संजोए रहने का अवश्य है।

अनेक लोक कवियों ने श्रीमद्भगवद्गीता को भाषान्तर करके गाया है। सन् 1935 में श्रीराम सरनदास ने गीता का लोक-भाषा में अनुवाद किया–

अरजन ने जद नजर उठाई। वेखे बंधु मित्तर भाई।
सौहरे चाचे मामे वेदखे। पुत्तर पिता पिताये वेखे।
गुरु सम्बन्धी पोते वेखे। विच मैदान खलोते देखे॥

लेखक ने श्रीकृष्ण अवतार वाले श्लोक 'यदा यदा हित धर्मस्य ग्वानिर्भवति' का अनुवाद कितना सरल कर दिया है–

धरम लोप जद होन ते आवे। नेकी घटे पाप वध जावे।
दुनिया धरमहीन जद पावां। तद मैं आप जनम लै आवां॥

शमशेर सिंह अशोक नाभा के रहने वाले थे। उन्होंने भी गीता को लोकभाषा में पद्यानुवाद किया है। भक्तयोगी का रूप चित्रित करते हुए गीता में श्रीकृष्ण की पुराभिव्यक्ति दृष्टव्य है–

अरजन! नित जो मैंनूं धियावन। ते मेरे विच चित टिकावन।
जोगी शरधावान सु चंगे। मेरे सगुण रूप जो रंगे।

ठीक इसी प्रकार सोहन सिंह ने 'हरि गीता' नाम से महान श्रेष्ठ ग्रन्थ को लोक-भाषा में उलथा किया है। उनकी रचना में से वासांसि जीर्णानि यथा विहाय वाले श्लोक की प्रस्तुति देखें—एक अनपढ़ भी समझ सकता है—

हंढे पुराणे लाह लीड़े जिवें कोई नवीं पुशाक नूं पाए।
इवें उह हंढे सरीर नूं छड्ड के नवे शरीर चा आए।

'नैंनं छिंदंती शस्त्राणि' वाले श्लोक को इसी कवी ने यों लिखा है—

शसतर एस नूं विंन न सकण, अग्ग न सके जला।
पाणी न कर सके एस नूं गिल्ला, ते पौण न सके सुका।

लोक-कवि लालचन्द ने श्रीमद्भगवद्गीता को अधिक सार्थक लोक-भाषा में प्रस्तुत किया है। उसने गीता के श्लोकों को भले ही शब्दशः अपनाने का प्रयास नहीं किया, तथापि उसके द्वारा किए स्वतन्त्र भावानुवाद में भाषा और भाव का स्तरीय सुमेल देखा जा सकता है। प्रथम अध्याय के 26वें से 36वें श्लोका तक के भाव को कवि ने चार पंक्तियों में अधिक सहज बना दिया है—

बंधु भाई कुटंब कबीले। मारां किस पर बान जहरीले।
बुढे दादा गुरुजी नाले। मैनूं बेटे भाई साले।
आखां की मैं क्रिशन मुरारी। इक घर इक फुलवारी।
जितने योंधे राज दुलारे। इक माला दे मणके सारे॥

इसी प्रकार लालचन्द ने आत्मा की अमरता प्रदर्शी श्लोक के भावों को आत्मसात् कर सरल भाषा में प्रस्तुत किया है—

रूह न मरदा मारे कोई। केहड़ी गल दी चिन्ता होई।
रूह दी महिमा अपरंपार। काट न सके कोई हथियार।
अग्ग न साड़े तेग न मारे। रूह जा पहुँचे असल दुआरे।
रूह हमेशा रहने वाला। इक जगह नहीं बहिने वाला।

श्रीमद्भगवद्गीता का सरल भाषांतर करने की परम्परा मालवा प्रदेश में आज तक प्रचलित है। लोक कवियों, श्रद्धालुओं एवं कुछ पढ़े-लिखे भक्ति-भावी लोगों को अपने पाठ के लिए भगवद्गीता की जरूरत पड़ती है। संस्कृत भाषा में नित्य-पाठ करने में वे असमर्थ हैं, इसलिए वे अपने ढंग की सहज भाषा कवीशरी करते और गीता को सहज भाषा में लिख लेते हैं। इसका अद्यतन उदाहरण यहाँ पटियाला के एक एडवोकेट स्व० श्रीमोहनलाल गुप्ता हैं, जिन्होंने अपनी श्रद्धा अभिव्यक्त करने मात्र के लिए सम्पूर्ण गीता को मलवई भाषा में अनुवाद किया और सन् 2002 में प्रकाशित किया। इसकी बानगी में दूसरे अध्याय के 54वें 55वें श्लोक का भाषा रूप देखें—

अर्जुनोवाचः **दस्सो मैंनूं केशव क्रिशन। थिर बुधि वाले दे की लच्छन।**
किहो जेहा होंदा आचरण। किहा बोल ते किहा बचन॥54॥

श्रीभगवानोवाचः **तज दए मन दी चिंता चाह। आपणे आप विच बेपरवाह।**
ऐदां दा है जो इंसान। थिर बुधि तूं उसनूं जान॥55॥

भक्ति-भाव में मैत्री और दीनता, जिसमें उलाहने भी मिले रहते हैं, इस प्रदेश की विशेषता रही है। प्रसिद्ध सूफी कवि सुलतान बाहू लिखता है—जे मैं ऐड गुनाह न करदा, तूं बख्शोंदा केहनूँ'? इस प्रकार का सख्त एवं चुनौती पंजाब के सन्त ही दे पाए हैं। ऐसे सन्तों का अनुसरण करते हुए ही पंजाब के लोक कवियों ने भगवान को चुनौती भी दी है, दूसरों के प्रमाण भी दिए हैं और अपनी दीनता भी दर्शायी है। भगवान की शरण में समर्पित हो जाने के बाद तो जैसे भक्त जीवात्मा प्रतिद्वंद्वी बन उतरती है। लोक-कवि मिलखीराम के ये

शब्द भक्त और भगवान की बीच की चुनौती ही तो हैं–

गज दे बंद छुड़ाए तूं किस तरांसी, मुख मोड़ बैठों मेरी वार नाहीं।
कई हिस्से मैं दुखी प्रहिलाद कोलों देख तोल के तेजे इतबार नाहीं।
जे कर लाज ना रखी तूं आण मेरी, मैं वी जीवणा विच संसार नाहीं।
दरद नाल दरोपदी आखदी ए, भगतां नाल रिहा तेरा पिआर नाहीं।

श्रीकृष्ण के वीर रूप का चित्रण पंजाब में केवल गुरु गोविन्द सिंह ने ही किया है। वास्तव में मालवा जनपद में श्रीकृष्ण के वीर चरित् प्रस्तुत करने का दम लोक-कवियों में इसलिए नहीं बना, कि वे लोग प्रेम, भक्ति, श्रद्धा एवं थोड़ी खिलंदड़ी रोमानी वृत्ति में अपने इष्ट को चित्रित करके ही संतुष्ट हो जाते थे। गुरु गोविन्द सिंह को, इसके विपरीत 'धर्म-युद्ध के चाव' के अनुरूप वीर नायकों की तलाश थी। इसीलिए उनके कृष्ण धनुष-बाण लेकर रण-क्षेत्र में उतरे हैं–

कान्ह कमान लिए कर में रन में जब केहरि सिउ भभकारे।
को प्रगटिओ ऐसो बली जग धीर धरे हरि सों रन पारे।
आउर सु कउन तिहु पुर मै बलि स्याम सिउ बैर को भाउ विचारे।
जो हठके कोऊ जुधु करै सु मरै पल मैं जमलोक सिधारे॥

(कृष्णावतार)

कतिपय अति सुशिष्ट कृष्ण-काव्य हिन्दी में भी मिलता है। यहाँ क्योंकि वह विषयान्तर होगा, इसलिए मात्र नमूने के तौर पर अलग-अलग संदर्भों की पंक्तियाँ हम यहाँ विद्वानों की जानकारी के लिए पेश करते हैं–

1. संवत् 1761 वि० में आनन्दराम ने 'परमानन्द प्रबोध' में लिखा–

कृष्ण कृपा ते होत है, भक्ति मुक्ति को ज्ञान।
तांते बंधन ते छुटे, यह गीता रथ जान॥

2. खुशहाल के 'कृष्ण माधुरी' के पद—

कन्हैया रे! कृष्ण मुरारी रे!
सरन गिरी हूँ, द्वार परी हूँ, अब के मोहि उधारी रे।
दीन हीन गुन छीन करन की, का पै करूं पुकारी रे।
होई 'खुशहाल' टेर सुन मेरी, अपनो बिरद संभारी रे॥

3. संवत् 1925 वि० में प्रकाशित रामदास मिश्र की रचना 'रास-विलास' से एक नमूना—

गोपिका जन जीव-जीवन जान मीर को,
प्रान दान समान दरसन दान दीजै दीन को।
'दास' को नित पास अपने वास दीजै चरन में,
दरस दीजै तरस कीजै राखिए निज शरण में।

4. और कृष्ण द्वारा होली खेलने का चित्र, 'रास-विलास' में से ही—

लाल बनवारी बने छैल छबिधारी हरि हाथ पिचकारी रंग बारी परिपूर है।
पीतपट राजत पटीर नीर रंग सोहे अतर अबीर सों समीर सुंष भूर है।
'दास' ग्वालबाल है असंष सषा संग रंग रंग अलता उड़त धूर मूर है।
आवत हैं गावत-बजावत मृदंग ताल तूर बजै झांज डफ तबला तंबूर है।

5. इसी ग्रन्थ में से कृष्णाभिसारिका रूप में राधा का एक चित्र—

कारी अंधिआरी भारी, सिसरी की रात सारी,
कानी घनघोर घटा कारी छिति छाई है।
कारो बन बेल द्रुम कारो जमना को जल,
जाने जिन कोऊ कारी ओढ़नी सजाई है।
कारी तन साड़ी अंग कारो ही कुरंग सार,
कुंत लहुं कारी नैन काजल कराई है।
स्याम सखी संग स्यामा कारी कुंजन में,
कारी अभिसारी कान्ह सांवरे पै आई है।

कान्हदेश का कान्हा

❀ डॉ० सुरेश माहेश्वरी

प्रस्तावना:—

महाराष्ट्र एक मराठी भाषी राज्य है। मराठी भाषा महाराष्ट्री प्राकृत उद्‌भवा है जो भारत में साहित्यिक दृष्टि सं सम्पन्न और मानक भाषा के रूप में विद्वत् मान्य रही है। महाराष्ट्र का नागर सांस्कृतिक जीवन तथा लोक संस्कृति अतिशय समृद्ध है। सातवाहन राजाओं ने इस भू-प्रदेश को महाराष्ट्र नाम से पहचान प्रदान की। इस प्रदेश पर चालुक्य, राष्ट्र कुल शासकों ने राज्य किया परन्तु यादव शासनकाल (ई.सं. 1100 से 1300 तक) महाराष्ट्र के राजनीतिक दृष्टि से सुवर्ण काल है। संत ज्ञानेश्वर ने लिखा है कि—

तेथ यदुवंशविलासु। जा सकळकळ निवासु
न्यायाते पोषी क्षितिशु। श्रीरामचंद्र[1]

यादव शासनकाल में महाराष्ट्र और कर्नाटक मिले-जुले थे, लोक में मराठी और कन्नड़ का प्रचलन था और कर्नाटक का वीरशैव पंथ तथा महाराष्ट्र का वैष्णव पंथ का समन्वय दृष्टिगोचर होता है। इसलिए यहाँ पर शैव-वैष्णव भक्ति विठ्ठल भक्ति में समाहित होती दिखाई देती है।

महाराष्ट्र में चौमासा के पर्व पर श्रीरामविजय, हरिविजय, भक्तविजय, संतविजय का घर-घर में पठन होता है। आषाढ़ महीने की एकादशी (देवशयनी एकादशी) पर समूचे महाराष्ट्र से पंढरपुर में वारकरियों दिंडी जाती है। सावन में झूले लगते हैं, नागपंचमी, रक्षापूतन, सावन के शुक्रवार को जीवती की पूजा, रविवार को

आदित्य-रानूबाई का पूजन, जन्माष्टमी, दूसरे दिन दही हाण्डी, गोपालकाला, यहाँ के विशिष्ट रिवाज हैं। खंडोबा, तुलजापूर की भवानी मराठी लोगों की कुलदेवता है। मरीमाता (छूत की बीमारी द्वारा अपना क्रोध प्रकट करने वाली), भैराबा (सर्पविष से मुक्ति देने वाला) म्हसोवा (पशु दुग्ध पोषाक) के रूप में अनेक लोकदेवता यहाँ पूजे जाते हैं। दशावतारी खेल, तमाशा, स्वाँग, गोंधल, कीर्तन, जागरण, भजन आदि लोककलाओं द्वारा मराठी जन अपनी आस्था और श्रद्धा को व्यक्त करते हैं। ऐसे में कृष्ण का स्मरण अवश्यंभावी ही है।

कृष्णभक्ति – लोकमानस की अनुभूत श्रद्धा

भक्ति आन्दोलनः—

महाराष्ट्र प्रदेश के संस्कारित करने वाले पाँच भक्ति सम्प्रदाय सर्वश्रुत हैं। नाथ सम्प्रदाय (गोरखनाथ), महानुभाव सम्प्रदाय (चक्रधर स्वामी), वारकरी सम्प्रदाय (ज्ञानेश्वर), दत्त सम्प्रदाय (श्रीपाद-वल्लभ), समर्थ सम्प्रदाय (समर्थ रामदास) ने मराठी जनमानस को आचरण शुचिता के द्वारा संघटित किया और मुस्लिम धर्म के प्रभाव को क्षीण किया है।

महानुभाव :—

इनमें से महानुभाव सम्प्रदाय कृष्ण भक्ति का सम्प्रदाय है। जो श्रीमद्‌भगवतगीता, श्रीमद्‌भागवत, श्रीकृष्ण और दत्त को अपने आराध्य मानते हैं। चक्रधर स्वामी लिखित "लीळाचरित" मराठी का आदिग्रन्थ है और सम्प्रदाय का पूजनीय ग्रन्थ है। महानुभाव मत विष्णु के चार अवतारों को मान्यता देता है—कृतयुग में हंसावतार, त्रेता में दत्त अवतार, द्वापर युग में श्रीकृष्ण अवतार और कलियुग में चक्रधर स्वामी। साथ ही वे पंचकृष्ण की परिकल्पना को स्वीकारते हैं जो इस प्रकार है—श्रीकृष्ण, दत्तात्रेय, चांगदेव राऊळ (गुंडम),

द्वारावतीकार गोविन्द प्रभु पैठण के चांगदेव राऊ और श्रीचक्रधरस्वामी।

श्रीचक्रधरस्वामी ने 'श्रीकृष्णचरित' दामोदर पण्डित ने 'वस्त्रहरण' तो नरेन्द्र 'रुक्मिणी स्वयंवर' की रचना की है।

कवि डींभ, येल्हेराज, आदि अठारह महानुभाव सम्प्रदाय के सन्त कवियों द्वारा रचित कृष्ण का बालरूप और बालक्रीड़ाएँ मराठी शिष्ट साहित्य को इनकी प्रधान देन हैं।

वारकरी :—

महानुभाव के बाद का दूसरा मुख्य सम्प्रदाय वारकरी है। वारकरी सम्प्रदाय की महाराष्ट्र धर्म है। विष्णु अवतार श्रीकृष्ण और श्रीमद्भगवत्गीता को आधार बनाकर सन्त शिरोमणि ज्ञानेश्वर ने वारकरी सम्प्रदाय की नींव रखी। नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, सावता माळी, सेना नाई, जनाबाई, नरहरी सोनार, कान्होपात्रा आदि अनेक सन्त इस सम्प्रदाय में हुए। सन्त बहिणाबाई ने वारकरी सम्प्रदाय को एक मन्दिर के रूपक द्वारा इस तरह लिखा है—

संतकृपा झाली। इमारत फळा आली।
ज्ञानदेवे रचिला पाया। उभारिले देवालया॥
नामा तयाचा किंकर। तेणे केला हा विस्तार।
जनार्दिन एकनाथ। खांब दिला भागवत॥
तुका झालासे कळस। भजन करा सावकाश॥[2]

वारकरी के आराध्य श्रीकृष्ण हैं। जो पंढरपुर वासी हैं। इसकी कथा भी बड़ी मार्मिक तथा मनोरंजक है। श्रीकृष्ण और रुक्मिणी भक्त पुंडलिक की मातृ-पितृ भक्ति से प्रसन्न होकर स्वयं उनसे मिलने पंढरपुर आये। उस समय पुंडलिक पदसेवा में लीन थे। उन्होंने कृष्ण और रुक्मिणी को रुकने के लिए कहा और ईंटें फेंक दी। श्रीकृष्ण और रुक्मिणी ईंट पर कमर पर हाथ धरे खड़े हो गये और पुंडलिक को दिये वरदान के कारण इसी मुद्रा में स्थायी रूप से

पंढरपुर में बसे गये। ईंट को मराठी में विट कहते हैं। विट पर अवस्थित विट - इट = विठ्ठल = शब्द बना। वारकरी सन्तों ने लिखा है—

नेणो विठो मार्ग चुकले। उघडे पंढरपुरा आले।
भक्त पुंडलिके देखिले। उभे केले विटेवरी॥[3]

वारकरी सम्प्रदाय के मत से परब्रह्म विठ्ठल अठ्ठाईस युगों से ईंट पर खड़े हैं। उनके वाम अंग की ओर रुक्मिणी खड़ी हैं। उनके चरणों में भीमा उर्फ चंद्रभागा नदी बह रही है।

युगे अठ्ठावीस विटेवरी उभा। वामांगी रखुमाई दिसे दिव्य सोभा।
पंडुलिका भेटी परब्रह्म आले गा। चरणी वाहे भीमा उद्धरी जगा॥

विठ्ठल भक्ति वास्तव में कृष्ण भक्ति है, हरि भक्ति है जो पुंडलिक को मिले वरदान के कारण प्राप्त हुई है। 'पुंडलिक वरदाहरि विठ्ठल' वारकरियों का जयकारा है।

वारकरी का अर्थ है वारी करने वाला। वारी अर्थात् आना और जाना अर्थात् फेरा। आषाढ़ (ग्यारस) को वारकरी लोगों का जत्था (दिंडी) अपने गाँव से पंढरपुर जाते हैं और विठ्ठल से मिलते हैं। इसके साथ ही कार्तिक में भी ऐसी वारी की जाती है। नित वारी करने वाले को 'वारकरी' कहते हैं।[4]

वारकरी का वेशभूषा वैष्णव भक्त सी होती है। ललाट पर गोपी चंदन और काले बुक्के (अबीर) का तिलक, गले में तुलसी की माला, सिर पर टोपी, कन्धे पर केशरी ध्वजा होती है।

फलतः यह वैष्णव कृष्ण ही भक्ति विठ्ठल भक्ति के रूप में जनमानस में पैठ गयी।

महाराष्ट्र का कृष्ण से अटूट नाता

महाराष्ट्र का एक भू-प्रदेश कान्हा का देशः—

महाराष्ट्र प्रदेश का उत्तरी हिस्सा जो पश्चिम में गुजरात और

पूर्व में मध्यप्रदेश से सटा है, उत्तर महाराष्ट्र कहलाता है। नंदुरबार धुले, जलगाँव का भू-भाग मिलकर यह क्षेत्र 'खानदेश' के नाम से ज्ञात है। खानदेश शब्द की व्युत्पत्ति भाषा वैज्ञानिकों ने 'कान्हदेश' से मानी है। 'खान' शब्द मूलतः 'कान्ह' है। भाषा वैज्ञानिक कारणों से 'क' का महाप्राणिकरण हो गया 'न' में अवस्थित 'ह' का लोप हो गया और 'खान' बन गया। एक लोककवि ने लिखा है-

''नमो कान्हदेशा, अहिराणी देशा, सोनं तुझी माती।''[5]

भाषा-अहिरवाणीः-

'कान्हदेश' में बोली जाने वाली भाषा अहिराणी है। अहिर कृष्ण के वंशज हैं। जब कृष्ण द्वारका की ओर आये तो उनके साथ उनके परिजन भी थे। जो गुजरात के काठियावाड, दक्षिणी गुजरात के भरूच, सुरत और महाराष्ट्र के नवापुर से होते हुए चोपडा तक अर्थात् ताप्ती के उपजाऊ भू प्रदेश में बस गये। आज भी खानदेश क्षेत्र में अहिर सुनार, अहिर दर्जी, अहिर ब्राह्मण, तो मराठा-पाटील जाति में अहिरे, अहिरराव कुल पाये जाते हैं। अतः इनके द्वारा प्रयुक्त होने वाली अहिर वाणी अहिराणी है, जो कान्हदेश की भाषा है। अहिराणी भी प. हिन्दी की तरह शौरसेनी उद्भवा है। (ग्रियर्सन)।[6]

कान्हदेश प्रदेश में कृष्ण की ''कन्हेर-कानोड'' के नाम से आराधना की जाती है। अहिराणी सन्त ज्ञानेश्वर के काल से बहु-प्रचलित भाषा रही है। सन्त ज्ञानेश्वर द्वारा लिखित 'ज्ञानेश्वरी' का यह पद अहिराणी भाषा का ही है-

यसोदेनो वाय तान्हा, माले म्हणे हाई ले वो।
मी त बाई साधी भोई, गऊ त्यान्हा जवई।
यइसन बिलगना, फाडी मन्ही चोई।[7]

अर्थात् यशोदका शिशु मेरे पास आने को उद्युक्त हुआ, मैं तो भोली-भाली थी, ज्यों ही मैं उसके पास गई वह मुझसे चिपक गया

और मेरी चोली फाड़ दी।

श्रीकृष्ण महाराष्ट्र के दामादः—

विदर्भ के भीमराजा की पुत्री रुक्मिणी थी। उसका रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से कराना चाहता था। परन्तु रुक्मिणी श्रीकृष्ण को चाहती थी। उसने अमरावती के अम्बा मन्दिर में जाकर कृष्ण पति मिले, ऐसी आराधना की। इधर जब शिशुपाल से उसका विवाह हो रहा था, तब उसने कृष्ण को संदेश भेजा और उसके संदेश के अनुसार कृष्ण अम्बाजी के मन्दिर में आये और रुक्मिणी ने उनके गले में वरमाला डालकर विवाह कर लिया। यह कथानक विदर्भ के वऱ्हाडी के लोकगीत में इस तरह अंकित हुआ है—

माहा ग बंधु मले वझ्याले देऊ पाहे
मझ्या गं मनात देवनारायण हाये
माहा ग बंधु म्हने, क्रिस्न गवळ्याचा पोर
राजा शिशुपाल तुले शोभतो भरतार ॥
कसं ऽ सांगू त्याले कृष्ण द्वारकेचा राजा
सकाय संध्याकाय त्याची करते मी पूजा ॥
पतरिका धाडली बामनाच्या हाती
परणाया रुक्मिणी यावे लौकर शिरीपती ॥
माय अंबाबाई माह्या नवसाले पाव
शिरीकृष्ण वर देजो तुझ्या वन्हे माहा भाव
माय अंबाबाई तुही वटी मी भरीन
हरिदयाळाशी माह्यं होऊ दे लगीन
माय अंबाबाई माह्या कुळाची तू देवी
द्वारकेचा हरि मले लौकर भेटवी
लक्ष फेऱ्या मी घातल्या अंबिकेच्या देवळात ॥
आला गं धावत माह्यासाठी यदुनाथ

भिमकाची कन्या बसली हरिच्या रथात
परणून द्वार केले नेली वाजत-गाजत ॥[8]

कृष्ण की पट्टरानी महाराष्ट्र कन्या रुक्मिणी है। इसलिए मराठी में-फिर चाहे वह विदर्भ की हो, पश्चिम महाराष्ट्र मराठवाडा की हो अथवा खानदेश-कान्हदेश की हो-समूचा मराठी जगत अपने दामाद कृष्णप्रेम में लीन होना अनायास ही सम्भव है।

मराठी लोकगीत में अभिव्यक्त कृष्ण के विविध रूप

कृष्ण जन्मः—

कृष्ण का जन्म मथुरा के कारागार में वसुदेव-देवकी के पुत्र के रूप में हुआ। कंस की बहन देवकी थी। परन्तु जब उसे ज्ञात हुआ कि देवकी का पुत्र मेरा काल होगा तो उसने जीजा-जीजी को कारागार में डाल दिया। ऐसी स्थिति में कृष्ण जन्म के अवसर पर हर्षवश किसी ने थाली नहीं बजाई। अपितु देवकी ने कृष्ण को गोकुल में विदा किया। बाल कृष्ण की लाथ से ताले टूट गये साँकलें टूट गयीं। पहरेदार सो गये और यमुना नदी ने राह बना दी। कृष्ण गोकुल पहुँच गये और वहाँ सेनन्द की लड़की को उठाकर मथुराकी बंदशालीमें आ गये। कंस को देवकी के प्रसव की सूचना मिली। कारागार पहुँचकर उसने लड़की को देखा और उसे पत्थर पर पटककर मारने को प्रवृत्त हुआ तो लड़की हाथ से छिटक कर अपने मूल रूप बिजली हो जाते — जाते गई। पर जाते-जाते कंस को कह दिया दृष्ट पापी तेरा हत्यारा गोकुल में पल रहा है। मूलगीत की पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

जनमना कृस्नं कोनी वाजवना थाया
देवकी म्हने सुखी गोकुल मा राह्य बाया।
कशी लागी गई पान्हावास्ले झोप।
जलमना क्रिस्न कुल्प पड्यात तुटी
देवना दर्सनले वनी जमुना नेटी।

मामानी भासी आपटनी कसी
हाथाथीन निसटी इज आयी झायी कैलासी
कैलासन वईरी क्रिस्न यसोदेना घरी
आतेना जीजी जीजीस्ले नई माया
देवकीना क्रिस्न यसोदेन वाढी लाया[9]

मराठी लोकगीतों में माँ देवकी की मातृ वत्सलता तथा अपनी आँखों के सामने नवजात शिशु के मारे जाने की कारुणिक तथा क्षोभ भरी उक्तियाँ मिलती हैं–

देवकी बोलं काय म्या पाप केलं
एक-एक बाळ माझं बांधवानं मारलं
देवकी बोलती कंसा तुझं नशीब खोटं
माय लेकराची करतोस ताटातूट ॥[10]

अर्थात् देवकी कहती हैं, मैंने ऐसा कौन सा पाप किया जिसकी वजह से मेरे एक-एक शिशु को मेरी आँखों के सामने मेरे ही अपने भाई ने मार दिया। वह क्रोध में कहती हैं, हे कंस, तुम्हारा नसीब ही खराब है, जो तुम माँ-से उसके बच्चे को तोड़ते हो।

बाललीला वर्णन

कृष्ण का बाल रूप भारतीय मानस को लुभाता रहा है। प्रत्येक सहृदय कृष्ण में पुत्र वात्सल्य भाव देखता है। मराठी लोकमानस भी इससे अछूता नहीं है, कुछ प्रसंग इस प्रकार हैं।

माँ यशोदा से कृष्ण खेलने के लिए चाँद की माँग इन शब्दों में करते हैं–

यशोदेच्या निन्या
कृष्ण धरून उभा राही
चंद्रमा म्हणे देई
खेळावया।[11]

अर्थात् कृष्ण माँ यशोदा की धोती की चुन्नियाँ पकड़े खेलने के लिए चाँद माँगने का हठ कर रहे हैं।

कृष्ण के गाय चराने रूप को लोककवि ने हमारे सामने साक्षात् किया है—''खांदिय घोंगडी, अधरी धरी पावा-'' कन्धे पर कम्बल और ओठों पर बाँसुरी लिए मनोहारी कृष्ण का रूप सूरदास के पद की बरबस याद दिला देता है।

नटखट कृष्ण को ओखली से यशोदा बाँधती है। ऐसा कृष्ण जो सारे संसार को मुक्त करने की शक्ति रखता है, अनायास बँध जाता है।

ज्याच्या नावे होती संसारात मुक्त
यशोदा बांधीत त्याला दावे।

कृष्ण के हठ की लीला महाराष्ट्र में विशेष रूप से प्रचलित है। महाराष्ट्र के कुलदैवत सतारा जिले में स्थित जेजुरी के खंडोबा है। मनौतिपूर्ति हेतू खंडोबा का जागरण वाध्या-मुरली के द्वारा सम्पन्न कराया जाता है। विवाह-पुत्रजन्म अथवा मनौति के निमित्त यह आयोजन होता है। महाराष्ट्र में चातुर्मास के बाद चम्पाषष्ठी के दिन से बैंगन खाने का रिवाज है। चम्पाषष्ठी के दिन नंद के यहाँ खंडोबा का जागरण आयोजित किया गया। नैवेद्य हेतु बैंगन का भूरता और रोडगे (बाटीनुमा पदार्थ) बनाये गये। वाध्या-मुरली भी अपनी तैयारी कर रहे थे। अचानक खेल से थककर कृष्ण का आगमन हुआ। आते ही उन्होंने यशोदा से कहा, मुझे जोरों की भूख लगी है, जल्दी खाना दो। यशोदा अपनी सहेली को बुलाने बाहर जाती है- ताकि कृष्ण को खाना दिया जा सके।

इधर कृष्ण भोग हेतु तैयार नैवेद्य खाने लग जाते हैं। जब यशोदा वापस आकर देखती है तो घबरा जाती है। कारण खंडोबाका कोप होगा, ऐसी आशंका उसे होती है और इधर कृष्ण जल्दी-जल्दी

खाने लगते हैं, मुँह बनाते हैं, चिल्लाते हैं। यशोदा को लगता है कृष्ण फेर पड़ा है। अतः वह मनौती मानती है, रक्षा भभूत लगाती है, अभिमंत्रित जल छीड़कती है, पर कृष्ण का पागलपन कम नहीं होता। यह देख यशोदा मूर्च्छित हो जाती है और उसे ऐसा दिखाई देता है- खंडोबा ही मेरा बेटा कृष्ण है।

कृष्ण का नटखटपन : गोपियों की शिकायत

कृष्ण चरित का रोमहर्षक प्रसंग उनका नटखटपन है। सूरदास जी ने कृष्ण के इस रूप को समूचे भारत में लोकप्रिय बनाया है। मराठी लोककवि इसके अपवाद कैसे भला हो सकेंगे। कृष्ण की शिकायतें करने गोपियाँ माँ यशोदा के पास आकर कहती हैं—

यशोदाबाई तूना क्रिस्न उरमट
पुल्हायले शेंडी येनी नी घाले गाठ।
यशोदा म्हने बाई बाय मन्हा लहान लवू
अभंड गवयनी बालंट नको घेऊ॥
यशोदा बाई तूना क्रिस्न शे बिलंदर
पानीले जातांना फोडनी मन्ही घागर।
यशोदा म्हने बाई क्रिस्न मन्हा तान्हा
घर ते देख क्रिस्न न्यान्ही करी न्हायना॥
फोडनी मनी माथन घई दूध घर भर
यशोदे या क्रिस्नले थोर्ड तरी आवर
क्रिस्न मन्हा गुनी तुम्ही आग जाया
आते घर जा वं तोफांड्या बाया॥[12]

अर्थात् गोपियों में से एक गोपी माँ यशोदा से कहती है। तुम्हारा लाडला कृष्ण बड़ा ही उर्मट (उद्धट) उद्दण्ड है। जब हम सो रहे थे तब उनकी चोटी से मेरी वेणी की गाँठ बाँधी दी। इस पर यशोदा ने कहा मेरा लड़का तो बहुत छोटा है उस पर झूठ-मूठ का

आरोप (बालंट) मत लगा। दूसरी गोपी बोली यशोदा मैयार तुम्हारा कृष्ण बड़ा ही बिलंदर (धूर्त काईयाँ है) जब मैं पानी लाने जा रही थी उसने मेरा घड़ा फोड़ डाला। यशोदा ने जबाव दिया मेरा शिशु कृष्ण घर में बैठा कलेवा कर रहा है। तीसरी गोपी बोली उसने मेरी मथानी फोड़ दी और घर भर में दूध-दही फैल गया। यशोदा मैया इसे थोड़ा तो काबू में करो। यशोदा ने जबाव दिया मेरा कृष्ण तो बड़ा गुणवान शालीन है। तुम फिजुल में आग लगाने आई हो। अब तुम अपना तोफांड बन्द करो और अपने-अपने घर जाओ।

ऐसे नटखट शरारती नाकों दम करने वाले कृष्ण नंद दुलारे हैं। समूचे गोकुल को आनन्द देते हैं। जब कंस के दूत अक्रूर जी कृष्ण को मथुरा ले जाते हैं तो समूचा गोकुल वियोग से व्याकुल-आकुल हो जाता है।

जवथीन कृस्न ग्यात तेव्हा पडना वियोगाना घाला
झुरू-झुरू झाया हाडना पिंजरा
आन-पानी माले खाये झायी निरास।

अर्थात् जब से कृष्ण मथुरा गये तब से वियोग ने मुझ पर करारा आघात कर दिया। झुर-झुरकर मेरा शरीर हड्डियों का ढाँचा भर रह गया। अन्न, पानी मैं नहीं खाती हूँ, वे मुझे खा रहे हैं। मुझे निराशा ने ग्रस किया है।

रुक्मिणी का मराठी बाना

महाराष्ट्र की लाडली बेटी रुक्मिणी भगवान श्रीकृष्ण की प्रिय पत्नी हैं, पटरानी हैं। विठ्ठल रूप में पूजे जाने वाले श्रीकृष्ण की जीवन संगिनी रुक्मिणी भी यहाँ पर भी साथ ही हैं। रुक्मिणी कृष्ण से अपार प्रेम करती हैं। इसलिए भाई एवं पिता द्वारा सूचित वर शिशुपाल को नकार देती हैं। कृष्ण को अपना प्रेम संदेश भेजकर विवाह कर लेने की बात कहती हैं—

शिशुपाल नवरा भिमकीच्या नाही माना।
पत्रिका पाठविली द्वारकेच्या नारायणा॥
कोरा कागद काजळीची केली शाई
पत्रिका पाठविली हरिला रखमाबाई।

कृष्ण रुक्मिणी का संदेश पाकर अमरावती के अम्बा मन्दिर में आ जाते हैं। दर्शन हेतु आई रुक्मिणी कृष्ण के गले में माला डाल देती हैं और मन्दिर में विवाह हो जाता है—

रुखमाबाई नवरदेवी नाही मांडवात।
आयत्या वेळचं स्वयंवर झालं अंबिकेच्या देवळात॥ [13]

रुक्मिणी का व्यक्तित्व स्वतन्त्र चेता स्त्री का व्यक्तित्व है। अपना निर्णय स्वयं लेती है। नापसंद व्यक्ति के साथ अपना जीवन गुजारना वह नहीं चाहती। रुक्मिणी का अस्तित्ववान स्वतन्त्र चेता, व्यक्तित्व वर्तमान के नारी स्वतंत्रता की ओर इंगित करता है परन्तु रुक्मिणी अपने पति के साथ-साथ पति के रिश्तेदारों को भी स्नेह देती हैं। अपना आदर्श गृहस्थ धर्म का निर्वाह भी बखुबी करती हैं। अपनी ननद सुभद्रा तथा द्रौपदी के प्रति स्नेह भाव रखती हैं। ससुराल से जब ननदें आती हैं तो उनका आतिथ्य करती हैं, उन्हें नहलाती हैं, हीरे-मोतियों के गहनें तथा पैठणी साड़ी और चोली भेंटकर सम्मान देती हैं।

रुक्मिणी सुभद्रा-द्रौपदी ला न्हाऊ घाली।
हिऱ्या मोत्यांचे अलंकार चोळी पैठणी हाती दिली॥

रुक्मिणी गृहकार्य दक्ष महिला है। मराठी संस्कृति के रीति-रिवाजों को वह बखूबी निभाती हैं, खाना खिलाती हैं, पत्तल के दोनों ओर रंगोली निकालती हैं, पंखा झलती है। क्या चाहिए या नहीं इसकी ओर ध्यान देती हैं।

पहिल्या पंगतिला, रुक्मिणी घालते रांगोळी
देवं गेलेत आंघोळी।

कृष्ण भी रुक्मिणी को बहुत चाहते हैं। अधिकतर समय रुक्मिणी के साथ बिताने का प्रयास करते हैं। रुक्मिणी चंद्रभागा नदी पर कपड़े धोने गई तो कृष्ण पत्थर पर बैठकर रुक्मिणी से बतियाने लगे। ऐसा अनोखा तथा मनोहारी प्रिती भ्ज्ञाव देख चंद्रभागा हँस पड़ी—

रुक्मिणी धुणं धुती, देव इट्ठल वरी बसं।
दोघांच्या पिरतीचं गं चंद्रभागेला येतं हसं॥[14]

महाराष्ट्र में किसी पूजा, यज्ञ, विवाह आदि के समापन पर पति से अपने प्रिय पत्नी का नाम लेने 'उखाणा' का लोकरिवाज प्रचलित है। राजसूय यज्ञ की समाप्ति पर द्रौपदी ने अपने भाई श्रीकृष्ण से 'उखाणा' लेने का आग्रह किया तब कृष्ण ने महाराष्ट्र की लोक परम्परा का निर्वाह करते हुए काव्य पंक्ति में अपनी प्रिय पत्नी का नाम इस तरह लिया।

द्रौपदी म्हणे नाव घ्यावे चक्रपाणी
अष्ट नायिका मध्ये रुक्मिणी शहणी।[15]

पति-पत्नी का अटूट प्रेम से भरे झगड़े की अभिव्यक्ति हम ओवी में है।

रूसली रूखमीन दोन रात्र एक ईळ
मह्याग इट्ठलाची भोजनाची तारांबळ।

रुक्मिणी यदि रूठ गई तो मेरा पति विठ्ठल भूखा रह जाएगा यह सोच वह अपना मान छोड़ देती हैं। कारण सोलह हजार रानियों में पत्नी तो केवल रुक्मिणी है कारण पति प्रेम की समई का प्रकाश उसके ही घर में छाया हुआ है, अन्य के घरों में तो अंधियारा व्याप्त है—

सोळा सहस्त्र हे नारी देव भोगिती अंधारी।
जळती समया रूखमाबाईच्या मंदीरी॥

सुबह-सुबह कृष्ण लुकते छुपते रुक्मिणी के रंगमहल में

प्रवेश करते रुक्मिणी ने देखा तो कृष्ण की इन शब्दों में चिकोटी ली।

काजळ-कुंकू, हळद लागली।
तुम्हां कुठूंनि श्रीपती
हरी हो, तुम्हा कुठुनि श्रीपती
तुमचे मंचकी कोण रात्री।
निजली होती सखी॥
वेळा लवंगा पिकली पाने।
वर्ख सुपारी चिकण।
हरी हो, वर्ख सुपारी चिकण।
तुमच्या अंगी रूतले सांगा।
कुणाचे कंकण॥ [16]

रुक्मिणी की इस चिकौटी से कृष्ण क्षणभर दिग्भ्रमित हो जाते हैं पर अपने को संभालते हुए कहते हैं कि कौरवों की सभा में दुर्योधन दु:शासन से पीड़ित द्रौपदी को सांत्वना देने के लिए मैं रात में जल्दी में गया, तब द्रौपदी मेरे गले लग गयी इसलिए ऐसा तुम्हें दिखायी दे रहा है। यह सुनकर रुक्मिणी संतुष्ट हो गयी।

कृष्णभक्ति

कृष्ण महाराष्ट्र के जनमानस में ''सकळांचा सकळ'' के रूप में अवस्थित है। वह हर माँ को अपना लाल लगता है। हर किशोर को सखा लगता है और हर युवती को प्रिय लगता है। महाराष्ट्र में कृष्ण की भक्ति इन तीनों रूपों में अभिव्यक्त हुई है।

माता-पिता के रूप में विठ्ठल-रुक्मिणी में पूजित होते हैं। महाराष्ट्र की विशेषता है कि विठ्ठल भी माँ के रूप में अर्थात् 'विठाई' आराध्य है और रुक्मिणी तो माँ है ही—'रखुमाई'। इन दोनों का नाम-स्मरण मला सांसारिक सहायक हो जाते हैं—

रुक्मिणी माही माता, इठ्ठल माहा पिता
हारपला शिणभाग दोहींचे नाव घेता।[17]

रासलीला पद कृष्ण के इस भूप्रदेश में उपलब्ध है। खानदेश के मुल्हेर में स्वर्गीय डॉ० उद्धव महाराज प्रतिवर्ष 'महारास' का आयोजन करते थे। सभी जाति-धर्म शहराती, ग्रामीण, आदिवासी सभी मिलकर रासोत्सव मनाते रहे हैं।

यमुनेच्या तीरी सखे, गोपी मिळूनी
परम्परा राधा कृष्ण रंग खेळूनी,
चांदण्याची अर्धी रात्र, थंडी वाजते
नको कृष्णा रंग टाकू, साडी भिजते
रास खेळू रास खेळू राजमंदिरी
आपण आज टिपन्या खेळू राजमंदिरी।

दांडिया को यहाँ पर टिपरी कहा जाता है।

द्रौपदी कृष्ण की सखी

श्रीकृष्ण द्वारा की गई द्रौपदी की लज्जारक्षा स्त्रीत्त्व का कृष्ण के द्वारा सम्मान भाव है। पुरुषी शासन-अत्याचार के खिलाफ उठी हुई आवाज तथा स्त्री की पीड़ा की प्रतिनिधि द्रौपदी है। श्रीकृष्ण उसके शील की रक्षा करते हैं। अपने भाई होने का एहसास उन्हें- होने से वे अपने कर्तव्य का पालन करने में नहीं हिचकिचाते—

द्रौपदीबाई बोलं, जळो जळो माझं जिणं
पाच पांडव असतांना लज्जा घेतो दुर्योधन
पाची पांडवाची पत्नी, बहिण मी यादवांची
हासडली नीरी लज्जा गेली पांडवांची
द्रौपदीच्या निन्या देव रक्षिता भागले
हिच्या न वस्त्रयाचं ढीग गगनी लागले (जनलोकांचा सामवेद)

अर्थात् द्रौपदीबाई बोलती है, आग लगे ऐसे जीने को! पति

रूप में पांडव होते हुए भी और यादवों की बहन होते हुए भी दुर्योधन लज्जा लेने में हिचकिचाता नहीं। जैसे ही उसने मेरी चुन्नी को छुआ पांडवों की (पुरुषत्त्व) लज्जा चली गई। द्रौपदी के शीलरक्षार्थ कृष्ण दौड़े आए मेरे कपड़ों का ढेर लग गया। इस कारण कृष्ण त्राता हैं, रक्षण हैं, स्वामी हैं।

द्रौपदी का कृष्ण के प्रति प्रेम सर्वविदित ही है – जैसे

पाठीची बहिण
सुभद्रा होती जरी
प्रीती द्रौपदीच्या वरी
गोविंदाची।

विठ्ठल–रुक्मिणी अर्थात् भाई–भौजाई का महाराष्ट्रीयन पद्धति से किया गया आदरातिथ्य इन ओवियों में व्यक्त हुआ।

राजसूय यज्ञ	राजसूय यज्ञी
द्रौपदी वाढी मीठ	द्रौपदी वाढी ताक
नथीतील टीक	तिच्या दंडातील वाक
झळाळती।	झळाळली।

राजसूय यज्ञी/द्रौपदी वाढी मट्ठा/कमरेचा कमरपट्टा/झळकला।
राजसूय यज्ञी/द्रौपदी वाढी भात/नाकातील नथ/झळकली।
राजसूय यज्ञी/द्रौपदी वाढी खीरी/गळयातील सरी/झळकळी।
राजसूय यज्ञी/द्रौपदी वाढी वडे/हातातील तोडे/झळकले।
राजसूय यज्ञी/द्रौपदी वाढी लोणचे/कृष्णाचे पान कोणचे/विचारिते[18]

मराठी लोककलाओं को केन्द्रस्थ

मराठी लोककलाओं में विधिकला अर्थात् अपने आराध्य के प्रति आराधना करने वाले पुरुषों में गोंधळी, पोतराज, भराडी और वासुदेव उल्लेखनीय हैं। इनमें वासुदेव का स्थान सर्वोपरि है। वासुदेव के गान, नर्तन और करतालवादन से महाराष्ट्र के गाँव की भोर

खिलती है। वासुदेव श्रीकृष्ण का उपासक होता है।

वासुदेव की पोशाक विशेष तरह की होती है। मोरचंदुओं से सजी हुई तिकोनी आकार की सर पर टोपी, गले में मालाएँ, चुन्नीदार अंगरखा, गले में दोनों ओर लटकता हुआ शेला, बगल में झोली, कमरबंद में खोंची हुई बाँसुरी, हाथ में इकतारा-करताल, पैरों में घुँगरू।

महाराष्ट्र की तरह आंध्र और मध्यप्रदेश में भी वासुदेव की परम्परा दिखाई देती है।[18]

वासुदेव गीतों का जीता-जागता कोश है। वह गीतिकथा, श्रीकृष्ण जीवन विषयक नीति-उपदेशपरक गीतों और ओवियों की अकूट की परम्परा वासुदेव के पास होती है।

कथागीतों का विषय-आदर्श पौराणिक कथाएँ व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित घटनायें अथवा प्रसंग होते हैं, जैसे-हरिश्चन्द्र-तारामती, सत्यवान-सावित्री, श्रीकृष्ण-द्रौपदी आदि। ये कथागीत दीर्घाकार के होते हैं। तो छोटे गीतों पदों में श्रीकृष्ण की बाललीलायें—नटखटपन लिए हुए शरारतें, माँ यशोदा का वात्सल्य, गोकुल की गोपियाँ तो दार्शनिक गीतों देह की नश्वरता, षडदिपु. परमात्मा का अस्तित्त्व विषयों से सम्बन्धित होते हैं।

वासुदेव को जब भिक्षा-दान मिलता है तो वह आत्यंतिक आनंदित होकर नाचता है, करताल बजाता है, बाँसुरी बजाकर वातावरण को सम्मोहित करता है। वासुदेव के गान से गाँव में चेतना जगती है। गाँव की स्त्रियाँ उसे सूप में अनाज-सीधा आदि होती हैं। दिवंगत पूर्वजों के नाम पूछकर उनके नाम से दिया हुआ दान सभी देवताओं को प्राप्त हुआ—''दान पावलं'' गीत गाता है। जैसे—

श्रीधराला गुरु दान पावलं, श्रावण महिना देवा दान पावलं,
दान पावलं, दान पावलं, पंढरपुरामंदी इठ्ठोबारायाला

जेजुरीमंदी खंडोबारायाला, सासवडमंदी सोपान देवाला
पंढरीच्या विठोबाला, आनंदीमंदी ग्यानुबाला,
देहूमंदी तुकाराम बाबाला, पैठणमंदी नाथ महाराजाला
दान पावलं दान पावलं, कोल्हापुरात लक्ष्मीआईला[19]

इन पंक्तियों में महाराष्ट्र के लोकश्रद्धास्थानों का उल्लेख हुआ है। दत्तगुरु, सावन का माह, जेजुरी के खंडोबा, सासवड के सोपानदेव, पंढरपुर के विठोबा आळंदी के ज्ञानेश्वर, देहू के तुकाराम, पैठण के एकनाथ और कोल्हापुर की महालक्ष्मी इन सबको तुम्हारा दिया हुआ दान प्राप्त हो गया है।

अब वासुदेव द्वारा गाये जाने वाले राधा-कृष्ण की रूठ-मनौवल (झूटमूट के झगड़े) का सवाल-जबाव युक्त गीत प्रस्तुत है—

देवा 'खरं बोला, कृष्णा। खरं बोला जी।
कां डोळे झाले लाल।
कुणी झोप मोडली। नूर तुमचा सुकला जी॥ धृ॥
राधा म्हणे हरिला, खरं वचन बोला।
कोणी पाणी टाकलं, पीतांबर भिजला।
कोण्या सवतीनं भोग दिला सेजेला?
जन म्हणती नारी टोंगळा, फुटला! अंगी काप सुटला।
तितकाच धमका आला।
तवाच म्या ओळखिला, अहो लक्षण कळलं तुमचे॥1॥

इस पर कृष्ण समझाते हैं खेलते-खलते गायों में से एक रास्ता भटक गई, उसके पीछे नंगे पाँव दौड़ पड़ा और रास्ते में गिरने से मेरे दोनों पैरों के घुटने छील गये हैं। इस पर राधा पुनः पूछती हैं—

चोरिता कशाला, आता पिवळी हळद शेल्याला
कोणी टाकला गुल्लेल परिमळ सुटला
काजळ व्हटाला जी, आता मोहनमाळ उराला॥

कोणी आवळून धरला माझ्या सवतीनं, झग्याचा बंद तुटला ॥
आता छातीत वल्ला झाला ॥
कुणी करील जादूटोणा मनमोहना ॥ देव खरं बोला ॥[20]

रास्ते में जामून खाने से ओंठ काले हो गये, पेड़ से सटकर बैठने से मोहनमाला फँस गई, उसे निकालते हुए बँध टूट गये। खंडोबा के मन्दिर का भण्डारा वस्त्र को लग गया, मोगरा की खुशबू पगड़ी में लग गई; क्योंकि वह मोगरे के कुंज में अटक गया था। ऐसे अनेक बहाने कृष्ण बनाते हैं और अन्त में वे कह पड़ते हैं।

''आम्ही नव्हं त्या कर्माचे किती छळती रे-।''

और राधा इस उत्तर से संतुष्ट हो जाती है।

गौळण

मराठी लोकनाट्य का प्रभावशाली रूप तमाशा है। तमाशा के लिए ऐसा माना जाता है कि इ.स. पहले शतक में प्रतिष्ठान (वर्तमान पैठण) में सातवाहन राजा हाल का राज्य था। उसने नाट्य और काव्य को राजाश्रय दिया था। स्त्री कलाकार को कलावंतीणी नाम से पुकारा जाता था। ये स्त्रियाँ संगीत-गायन का कार्यक्रम करती थी। मंगलाचरण से प्रारम्भ होकर शंकर-पार्वती, लक्ष्मी-नारायण, गणपति आदि की स्तुति की जाती थी। मंगलाचरण के पश्चात् पौराणिक स्वाँग भी दिखाए जाते थे। जिसमें राधा-कृष्ण, नंद-यशोदा, गोपियाँ-गोप आदि के स्वाँग होते थे। 'रतिनाट्य' नाम था यही तमाशा का मूल है।

गण में गणपति स्तवन, देवता स्तवन कर कार्यक्रम की शुरुआत की जाती है। इसमें एक गण-गणपति का होता है और अन्य दो या तीन देवताओं की स्तुतिपरक होते हैं। गण प्रस्तुत करने की पद्धति विशिष्ट होती है और गण केवल पुरुष कलाकार ही पेश करते हैं।

गण के बाद मुजरा होता है। गण के समाप्त होते ही नाची ढोलक और इकतारा के साथ से अपने नृत्य की झलक दिखायी है। ढोलक वादन अतिशय प्रभावशाली होता है। दोनों हाथों से पल्लू उठाकर दर्शकों की तरफ पीठ कर नर्तिकी घुँगरू की झनक में नर्तन करती है। इसके बाद गौळण होती है। गौळण में राधा-कृष्ण के प्रेम वर्णन के साथ-साथ कृष्ण-लीला का शृंगारिक वर्णन होता है।

गौळण में कृष्ण केन्द्रिय पात्र होकर उसका एक साथीदार है, जिसका नाम है—पेंद्या-1 तो दूसरी और राधा और अन्य गोपियाँ (गौळण) प्रौढ़ा के साथ (मावशी) मथुरा के बाजार में दूध-दही-मक्खन बेचने के लिए जाती है। मौसी की भूमिका पुरुष पात्र निभाता है। हँसी-मजाक के माध्यम से विनोद उत्पन्न करना इस प्रसंग की खासियत है। इसमें समकालीन सामाजिक राजकीय परिस्थितियों पर प्रतिक्रिया व्यंग्यात्मक शैली में दी जाती हैं।

कर वसूल करना कृष्ण और सोंगाड्या का उद्देश्य होता है। गीत रूप में गौळण का नमूना इस प्रकार है।

डोकावर शे मनी-पानी नी घागर
कृष्ण आडा झाया माले रस्तावर
जीव मना कापे व थर-थर
हावू गोकुळना कृष्ण नाचे तुरा ठीसन डोकावर ॥
यक दिन गंगावर गऊ धवाले
खडा मारा बनी मनी घागरले
पयत सुटनु पर कडे उनु
डोया ताने हावू मनावर ॥
गऊ यक दिन मी इकाले
उना मांगे मांगे लागला मस्करी कराले
डोकं मनं उठनं भी फुटनं

उनी मला चांगली जीव वर ॥
गवळणी सर्व्या झायात गोया
नाव माले ठेवतीस शेजारन्या बाया
जीव मना इटना चालुज भेटना
कृष्ण मना भेटना गंगावर[21]

मेरे सिर पर पानी का घड़ा है, ऐसे में कृष्ण ने मेरी राह रोक ली और मेरा जी तथा मन भये से काँपने लगे। ऐसा गोकुल का कृष्ण हमारे सिर पर कलगी-जैसा नाच रहा है। एक दिन मैं जब गंगा पर कपड़े धोने गई तब मेरी गागर पर उसने कंकर मारा था, मैं घबरा कर जब घर की ओर भागी तो वह मेरी ओर आँखें फाड़कर देख रहा था। जब मैं एक दिन दही बेचने गई तो यह कृष्ण मेरे पीछे पड़ गया और मुझसे मसखरी करने लगा। जैसे ही मैंने सिर ऊपर उठाया मेरा मटका फूट गया। इससे मुझे बड़ा ही गुस्सा आया। मेरे इर्द-गिर्द सभी गोपियाँ इकट्ठा हो गयीं। मेरी पड़ोसन मुझे नाम रखने लगी, इससे मुझे जीवन से ही घृणा हो गयी ऐसा यह चालू-चाल कृष्ण मुझे गंगा पर मिला।

इसी तरह मराठी लोकमानस में कृष्ण के विविध रूप मिलते हैं। जो लोकसखा, लोकनायक और सकलजन समावेशक हैं।

देवकिया उदरी वहिला
यशोदे सायासे पाळीला
शेखी उपेगा गेला
पांडवांच्या।

जिसको देवकी ने नौ माह अपनी कोख में रखा, यशोदा ने बड़े वात्सल्य से प्रयत्नपूर्वक पालन किया वह कृष्ण पांडवों का मद्दगार बना।

वाजवून पावा, वेध लावी सर्वा
गोपाळ कृष्ण घ्यावा, गोकुळचा

x x x

गोपालकृष्ण उडद के दाने जैसा काला होने के बावजूद भी मनहर है कारण, उस पर सोलह हजार गोपियाँ मोहित हो गयीं।

कारणं, कृष्णनाथ काळा, जसा उडिदाचा दाणा,
सोळा सहस्त्र गोपांगना,
भुलविल्या।

अंतत: गान करता है।

गोविन्द ध्यानी, गोविन्द मनी,
गोविन्द चरणी

इस कारण गोपियों का मनमोहन, राधा का प्रिय, रुक्मिणी और सत्यभामा का पति और द्रौपदी के भाई कृष्ण हम जैसे सहृदयों के लिए दिलो-दिमाग में बैठ गया है। कोई भी सुबह रुक्मिणी के यहाँ आए तो रुक्मिणी ने कृष्ण की चिकौटी ली।

एकात्मता का प्रतिरूप कृष्ण

कृष्ण का महतकार्य है—श्रद्धाओं का एकीकरण तरह-तरह के पंथ-सम्प्रदाय, धर्म, आचार-व्यवहार, इनसे जुड़ी-अंधश्रद्धाएँ, मान्यताएँ, ऊँच-नीच, श्रेष्ठ-हीन का भेदाभेद कृष्ण की आस्था से मिट गया। जैसे शैव-वैष्णव का समन्वय विठ्ठल के रूप से हुआ है। नाथों के योग और भक्ति का समन्वय विठ्ठल में दिखाई देता है। सगुण-निर्गुण का भेद यहाँ नहीं है। लोक अंधश्रद्धाएँ जैसे-बालरोगों से तरह-तरह के तांत्रित उपचार प्रचलित थे, वे सभी कृष्ण भक्ति के कारण खत्म हो गये। जैसे कृष्ण ने पूतना नामक बाल रोग ग्रह सर्दी-कंप, तंद्रा, न सोना, हिचकी प्यास न लगना आदि में जो उपचार होने थे, वे स्थानीय देवता पूजन से किये जाते थे पर पूतना का वध कर

देने से यह अंधश्रद्धा खत्म हो गई। यक्षपूजा लोक में प्रचलित थी। यक्ष के भय से बली दी जाती थी। यक्षकोप न हो इसका भय सदैव लोक में था। कृष्ण ने नल कुबेर और मणि-ग्रीव अर्थात् जुड़वाँ अर्जुन वृक्ष को तोड़ डाला। इंद्रादि तैंतीस करोड़ देवताओं की पूजा करते थे। प्रत्येक के पूजा-विधान अलग थे पर कृष्ण ने गोवर्धन उठाकर देवताओं का गर्वहरण किया और गोपालकृष्ण की पूजा आरम्भ हुयी।

जलरक्षक देवताओं का भय लोगों में व्याप्त था। जलाशय भरा होने के बावजूद लोग भय के कारण प्यासे ही मर जाते थे। ऐसे में श्रीकृष्ण ने कालिया मर्दन कर लोगों को भय-मुक्त किया। इस तरह समूचे भारत में और विशेषकर महाराष्ट्र में एकात्मता का संदेश कृष्ण ने दिया और प्रेम की इस धारा प्रवाहित की। मराठी लोक कण्ठ के मनोहारी श्रीकृष्ण हैं। कारण दामाद का प्यारा नाता जो है।

निष्कर्ष :—

1. महाराष्ट्र में कृष्ण मुख्यतया विठ्ठल के रूप में पूजे जाते हैं, उनकी पत्नी पटरानी रुक्मिणी हैं।
2. महाराष्ट्र कन्या रुक्मिणी हैं और दामाद श्रीकृष्ण हैं।
3. महाराष्ट्र का एक हिस्सा कान्ह देश है, कान्हा का देश अर्थात् खानदेश है। खानदेश के आराध्य, कानोडा, कानबाई, रुक्मिणी हैं। कृष्ण की भाषा अहिरवाणी, अहिराणी है जो शौरसेनी उद्‌भवा है। इसमें 'ळ' ध्वनि नहीं है। 'ज्ञ' का उच्चारण 'ग्य' होता है।
4. कृष्ण के सभी रूपों का अंकन लोकगीतों में हुआ है। प्रदेशानुकूल खंडोबा के कोप का वर्णन यहाँ का वैशिष्ट्य है।
5. कृष्ण का एकात्मक रूप महत्त्वपूर्ण है। नाथों का योग और

वैष्णवों की भावी/शैव-वैष्णव/सगुण-निर्गुण/लोकदेवता-अप्सरा पूजन, खंडोबा पूजन यज्ञ-पूजन आदि का 'महासमन्वये' कृष्ण चरित्र में दिखाई देता है।

6. अहिराणी, वन्हाडी, मराठी तीनों समान रूप से कृष्ण चरित्र मिलता है।
7. रुक्मिणी स्वतन्त्र चेता हैं, अस्मिता की संवाहिका हैं, आदर्श गृहिणी हैं और कृष्ण की प्रिय पत्नी के रूप में मान्य हैं। द्रौपदी कृष्ण की मानी हुई बहन और स्त्री दास्यता का प्रतीक हैं। कृष्ण उसे उचित सम्मान प्रदान करते हैं।
8. देवकी की पीड़ा यशोदा का भाग्य, द्रौपदी के प्रति स्नेह का वर्णन मिलता है।
9. दही-हण्डी, गोपाल-वाला, वासुदेव, तमाशा में गवळण, कृष्ण के विविध रूपों को आज भी महाराष्ट्र संजोए हुआ है।

संदर्भ :—

1. ज्ञानेश्वरी — 18-1805
2. र. रा. गोसावी-पाच भक्ति सम्प्रदाय, पृ० 174
3. र. रा. गोसावी-पाच भक्ति सम्प्रदाय, पृ० 182
4. डॉ. र. रा. बिवलकर - महाराष्ट्र भक्ति सम्प्रदाय, पृ० 54
5. कृष्णा पाटील - नाती - गोती खण्ड 2, 5, 7
6. जार्ज ग्रियर्सन - भारतीय भाषा सर्वेक्षण
7. कृष्णा पाटील - नाती - गोती एवं 2 पृ० 61
8. डॉ. बोरसे द्वारा - संकलित लोकगीत (संजीवन जगताप-नागपुर)
9. सौ. यशोदाबाई शिंपी (पाचोरा)
10. स्त्री - गीत संकलन

11. डॉ. रा. चिं. देरे – लोकदैवतांचे विश्व पृ० 168
12. डॉ. बोरसे – जनपदांचे महाभारत पृ० 105
13. डॉ. सरोजिनी बाबर – जनलोकांचा सामवेद पृ० 410, 413, 367
14. डॉ. सरोजिनी बाबर – मराठीतील स्त्रीधन पृ० 397
15. डॉ. बोरसे, गिरजा पृ०108
16. डॉ. रा. चिं. देरे – लोकदैवतांचे विश्व पृ० 169
17. डॉ. पुरुषोत्तम काळभूत – लोकनाट्य उद्गम आणि विकास पृ० 48
18. सानेगुरुजी, स्त्री जीवन पृ० 187
19. डॉ. पुरुषोत्तम काळभूत – लोकसाहित्य पृ० 167
20. डॉ. प्रभाकर माण्डे – लोक साहित्याचे अंत:प्रकार पृ० 33-37
21. डॉ. बापू देसाई – खानदेशी साहित्य सुरभी पृ० 73-74

●●

डोगरी लोकगीतों में श्रीकृष्ण कथा के प्रतिबिम्ब

❀ ओम गोस्वामी

डोगरी जनपदीय आस्था के पग-चिह्न—

जम्मू-कश्मीर राज्य में जम्मू प्रान्त की प्रमुख भाषा डोगरी है। डोगरी भाषी क्षेत्र को परम्परा से "डुग्गर" कहा जाता है। डोगरा क्षेत्र के प्रमुख आराध्यदेव महादेव शिव हैं। इस क्षेत्र में स्थित सर्वाधिक प्राचीन शिव-मन्दिर इस धारणा की पुष्टि करते हैं। शिव परिवार के अन्य सदस्यों को भी इस भूखण्ड में समुचित रूप से माना और पूजा जाता है। पार्वती का मायका तो जम्मू के पर्वतों में स्थित चनैंह्नी (चंदेरी) राज्य को माना जाता है। लोकवार्ता के अनुसार इसी भूमि पर हिमाचल राजा का राज्य था। शिव जी बारात बाँधकर वर्तमान में तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध "सुद्धमहादेव" क्षेत्र में आये थे। इस गाथा को हरियाणा के वासी जंगम साधु सदियों से हरियाणवी हिन्दी में भारत के कोने-कोने में गाते-सुनाते आ रहे हैं।

डुग्गर का लोक-मानस भगवान विष्णु के नृसिंह अवतार की पूजा भी प्राचीन काल से करता आया है। डोगरा गाँवों में शक्ति के चौंसठ जोगनियों और अगनित लोक-देवों, सतियों, सताओं और बलिदानी पुरुषों की पूजा-अर्चना होती आई है।

महाराजा गुलाब सिंह (1792 ई०-1857 ई०) द्वारा जम्मू-कश्मीर राज्य की स्थापना के उपरान्त डोगरा राजाओं और रानियों द्वारा जो नये मन्दिर निर्मित करवाये उनमें राम और कृष्ण मन्दिर भी पर्याप्त संख्या में थे। जम्मू के सूर्यवंशी राजकुल की वंशावली लव-कुश से सम्बद्ध होने के कारण शाही परिवार की ओर से राम-

पूजा को अधिक प्रश्रय मिला। इसी अरसे में राधा-कृष्ण के नये मन्दिरों का निर्माण भी हुआ। नगरों और उपनगरों में निर्मित इन मन्दिरों के कारण शहरी जन-मानस विशेषतया नारी-वर्ग में कृष्ण उपासना का प्रचलन बढ़ा, जबकि गाँवों में यह वर्ग पहले से ही दैनन्दिन जीवन में राधा-कृष्ण की लीलाओं का गायन करता आ रहा था।

श्रीकृष्ण विषयक तीज-त्यौहार—

डोगरा क्षेत्र में श्रीकृष्ण से सम्बन्धित तीन महत्त्वपूर्ण त्यौहार इस प्रकार हैं—

1. **गोपाल अष्टमी—**इस दिन गो-धन की पूजा की जाती है।
2. **जन्माष्टमी—**इस क्षेत्र में इस दिन को ''ठौगरें दा बर्त''
3. **गोवर्धन पूजा—**डुग्गर में इसे अन्नकूट पूजा कहा जाता है।

अर्थात् ठाकुर जी का व्रत कहा जाता है। लोक-मानस के अनुसार यह त्यौहार इन्द्र देवता के आगे पशु बलि अर्पित न करने की स्मृति समाए हुए है। इस दिन नारी-वर्ग कई प्रकार के पकवान और खाद्य-पदार्थ मन्दिर में ले जाता है, जहाँ इन वस्तुओं के ढेर लगाकर और उनका पहाड़-सा बनाकर मन्दिर के अधिष्ठातृ देव को भोग लगाया जाता है। जन-मानस का विश्वास है कि श्रीकृष्ण ने पुरातन काल से चले आ रहे इस यज्ञ को बन्द करवाकर अन्य यज्ञ का प्रचलन किया था।

पहाड़ी चित्रकला में श्रीकृष्ण—

विश्वविख्यात पहाड़ी चित्रकला में प्राय: श्रीकृष्ण की बहुविध लीलाओं को आधार बनाया गया है। पहाड़ी चित्रकला का समय मुख्यत: भक्ति-काल और रीति-काल के बीच का कालखण्ड है। विद्वानों के अनुसार जम्मू और हिमाचल की पर्वतीय रियासतों में इस विशिष्ट चित्रशैली का उद्‌भव पंद्रहवीं शती से हुआ। जम्मू-बसोहली-कांगड़ा आदि में निर्मित इन ''मिनिएचर पेंटिग्स'' में व्यक्ति चित्र,

प्रकृति, रतिकेलि तथा शृंगार- इसके विविध चित्र, उनके अन्य पक्षों तथा भेदों-उपभेदों का चित्रांकन किया गया। रामायण, महाभारत, गीता तथा गीत-गोविन्द के प्रसंगों के अतिरिक्त विभिन्न राग-मालाओं पर चित्रावलियाँ निर्मित की गयीं। शृंगार रस से सम्बद्ध नायक-नायिका भेदों में से चित्रों में नायक के रूप में श्रीकृष्ण तथा नायिका के रूप में राधा को चित्रित किया गया है। चित्रों में स्थानीय वनस्पतियों, पशु-पक्षियों, लोगों, उनके रीति-रिवाजों, वास्तु कला तथा जन-जीवन की झलक भी वर्तमान है।

इस क्षेत्र के मन्दिरों तथा राजसी भवनों के भित्ति चित्रों में अन्य पौराणिक देवों के अतिरिक्त कृष्ण-लीला के विविध प्रसंग भी चित्रित हुए दिखाई पड़ते हैं। मानसर नामक प्रसिद्ध सरोवर के तट पर निर्मित शाही हवेली में कृष्ण को गोवर्धन पर्वत धारण किए हुए चित्रित किया गया है। इसमें प्रयुक्त चटक रंग मन मोह लेते हैं। इसी हवेली में कालिय नाग को नथने का चित्रण भी अति सुन्दर बना है। कृष्ण जमुना से गेंद निकालने के लिए छलांग लगा रहे हैं, जबकि तट पर यशोदा मइया मूर्छित पड़ी हुई हैं। जल के भीतर नागनियाँ कृष्ण के समक्ष हाथ जोड़कर विनीत मुद्रा में खड़ी दिखाई गई हैं। इसी प्रकार के श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं को दर्शाते चित्र भी इस हवेली में वर्तमान हैं। इनमें प्रमुख हैं—द्रौपदी चीर हरण, युद्ध नाद से पूर्व श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को उपदेश तथा राधा-कृष्ण एवं बलराम आदि के चित्र।

डोगरा जन-जीवन में प्रचलित लोकगीतों में इन चित्रों के अनुरूप श्रीकृष्ण लीलाओं का मनोरम चित्रण हुआ दिखाई पड़ता है। यह कहना कठिन है कि इन लोकगीतों के आधार पर कितने प्रतिशत 'मिनिएचर' चित्रों का चित्रांकन हुआ है- पर इतना तो स्पष्ट है कि यह चित्र और डोगरी किसी न किसी हद तक एक-दूसरे से प्रभावित है।

श्रीकृष्ण की बाल-लीला इन ज्ञात एवं अज्ञात चित्रकारों का सर्वाधिक प्रिय विषय रहा है। चित्रकारों ने रामायण के विभिन्न प्रसंगों का चित्रण करते हुए मर्यादा का भरपूर पालन किया है, जबकि अधिकांश चित्रों में कृष्ण का चित्रण एक धीरोदात्त नायक के रूप में किया है। कहीं-कहीं कृष्ण को काम का साक्षात् अवतार बनाकर चित्रित किया गया है। राधा एवं गोपियों के संग क्रीड़ा उन्हें प्रेम लोलुप नायक के रूप में प्रस्तुत करती है।

लोक-चित्रकला में भी राधा-कृष्ण उपस्थित दिखलाई पड़ते हैं। विवाह के अवसर पर वर और कन्या दोनों पक्षों के घरों में दीवार बनाये जाने वाले लोक-शैली के चित्रों में 'राधे-श्याम' चित्रित करने की परम्परा है। कहीं पर घोड़े पर सवार कृष्ण और डोली में बैठी राधिका को चित्रित किया जाता है। इसी भाँति लकड़ी के लघु मन्दिरनुमा ''दरेहास'' नामक आनुष्ठानिक साधन में राधा-कृष्ण के चित्र या मूर्तियाँ रखकर इसे घट एवं दीपक के समीप स्थापित किया जाता है। इन प्रचलनों को देखकर यों लगता है कि जैसे गृहस्थ जीवन के प्रत्येक श्वांस में राधा-कृष्ण का वास है।

जम्मू क्षेत्र की सैंकड़ों प्राचीन बावलियों को हिन्दू आस्था के तमाम प्रमुख देवों की प्रस्तर मूर्तियों से सजाया गया है। किन्तु आश्चर्य की बात है कि बावलियों की भित्तियों में कृष्ण एवं राधा से सम्बद्ध मूर्ति पट्टिकाएँ लगभग नदारद हैं। केवल मात्र 'मनसूह' क्षेत्र की एक बावली में श्रीकृष्ण द्वारा गोपियों के चीर-हरण का दृश्य उत्कीर्णित दिखलाई पड़ता है। यह बावली लगभग पन्द्रहवीं शती ई० की कही जाती है। इससे एक ही निष्कर्ष निकलता है कि सम्भवतया श्रीकृष्ण डोगरा भूखण्ड में ब्रजमण्डल की-सी लोकप्रियता प्राप्त नहीं कर पाये। इससे यह भी संकेत प्राप्त होता है कि कृष्ण एवं राधा की लीलाओं का प्रचार इस क्षेत्र में पन्द्रहवीं सदी में होना आरम्भ

हुआ। इसके पश्चात् कृष्ण कथानक तेजी से जनमानस में घर कर गया।

कृष्ण-कथानक के प्रसारण से सम्बद्ध वर्ग—

(क) बैरागी साधु : अठारहवीं शती ईसवी में जम्मू क्षेत्र में कृष्णोपासना का प्रसार कृष्णानुरागी विरागी-पंथ के अनुयायी कर रहे थे। यद्यपि यह लोग गृहस्थाश्रम को धारण किए हुए थे। तथापि जनमानस इन्हें वैरागी साधु के नाम से जानता था। पंजाब राज्य का डफरवाल क्षेत्र तो डोगरा संस्कृति का अभिन्न अंग था, कृष्ण-भक्ति का देर तक केन्द्र-बिन्दु बना रहा। यहीं से कृष्ण-भक्ति की अजस्र धारा का प्रस्फुटन हुआ और यह डुग्गर की मानस-धरा को आप्लावित करने लगी। वैराग्य-पंथी मयादास कृष्णाश्रयी भक्ति का प्रचार-प्रसार जम्मू और हिमाचल के विस्तृत भूखण्ड पर कर रहे थे। उन दिनों इस विषय में एक उक्ति प्रचलित हुयी—

''डफरवाल डफ बाजें,
होली खेलें अनूप।
धन्न-धन्न भगत मयादास,
जिन दिखायो हरि को सरूप।''

यह उक्ति वस्तुत: मायादास विरचित एक डोगरी गीत का अन्तिम पद है, जिसमें डोगरी और ब्रजभाषा का सम्मिश्रण हुआ दिखाई पड़ता है। शेष पद कृष्ण-लीला से सम्बद्ध है। डफरवाल उत्तर भारत में वैरागी साधुओं का केन्द्र था। इस पंथ में श्रीकृष्ण की उपासना लीला-पुरुषोत्तम के रूप में की जाती है। इनकी मान्यता के अनुसार श्रीकृष्ण स्वत: परम-तत्त्व हैं। वही ईश्वर हैं, जबकि विश्व की तमाम मानव शरीरधारी आत्माएँ गोपियाँ हैं। समस्त आत्माएँ परमात्म तत्त्व का ही अंश अथवा प्रकाश हैं। आत्मा और परमात्मा के मध्य दीखने वाला अन्तराल अज्ञान रूपी माया के कारण दृष्टि-गोचर होता है। इस माया का रचयिता भी ईश्वर है। आत्मा को

ईश्वरोन्मुख करने हेतु प्रभु सदैव रास रचाते हैं ताकि समस्त गोपियाँ ईश्वर की निकटता पा सकें और उन्हें सायुज्यानुभूति का आनन्द प्राप्त हो। महारास द्वारा श्रीकृष्ण अपने परमात्म तत्त्व का प्राकट्य करते हैं। विरागी सम्प्रदाय से सम्बद्ध कृष्ण भक्ति की इस धारा का तत्कालीन डोगरा जनमानस पर गम्भीर प्रभाव पड़ा।

उत्तर मध्यकाल से पूर्व यद्यपि श्रीकृष्ण को गीता के रचयिता और एक अवतार के रूप में पहचाना जाता था, किन्तु उस दौर में कृष्णोपासना का प्रचलन बहुत कम था। इस पर्वतीय भूमि पर भगवान शिव तथा शक्ति के विभिन्न रूपों की पूजा होती आ रही थी। आदिकालीन नागोपासना की परम्परा तो जनमानस में और भी गहरे पैठ बनाये हुए थी।

श्रीकृष्ण का अनन्य भगत होने के कारण आचार्य मयादास को भगत भी कहा जाता था। अपने पंथ से सम्बन्धित आध्यात्मिक ज्ञान की शिक्षा उन्होंने मथुरा-वृन्दावन में जाकर प्राप्त की थी। इसके बावजूद धर्म-क्षेत्र में भक्ति का आन्दोलन क्षीण नहीं हुआ था। कृष्ण भक्ति के तत्कालीन केन्द्र वृन्दावन में भक्ति अपने उफान पर थी। वहाँ अपने सम्प्रदाय में दीक्षा पाने के अतिरिक्त उन्होंने ब्रज भाषा में की जाने वाली रासलीला का प्रशिक्षण भी प्राप्त किया।

(ख) रास मण्डलियाँ : डफरवाल लौटकर भगत मयादास ने अपनी रासमण्डली गठित करके अपने आराध्य श्रीकृष्ण के संदेश को फैलाने का निश्चय किया, किन्तु उन्हें डोगरा क्षेत्र की घोर रूढ़ि-वादिता का सामना करना पड़ा। पुरातन पंथी समाज ने आरम्भ में उनके उपदेशों और कृष्ण की रासलीला रचाने के विचार के प्रति न केवल अरुचि ही दिखाई, बल्कि उनका प्रबल विरोध भी किया। यहाँ तक कि उनकी अपनी बिरादरी के लोगों ने भी उनसे सहयोग न किया। इस दशा में उन्होंने अपनी बेटियों को प्रशिक्षित करके कृष्ण-

लीला के साथ-साथ रासलीला का आयोजन किया। तत्कालीन डोगरा समाज में बहू-बेटियों का अभिनय करना, मंच पर चढ़ना या सार्वजनिक नर्तन में सम्मिलित होना वर्जित कर्म माना जाता था। किन्तु भगत मयादा तो आकण्ठ भक्ति की शुद्धाद्वैतवादी धारा में डूबे हुए थे। बिना हतोत्साहित हुए उन्होंने कृष्ण-लीला एवं रासलीला का आयोजन किया। प्रथम मंचन से ही उनकी धूम मच गयी। लोक-रंजन की अपार क्षमता के कारण रासलीला इस क्षेत्र में लोकप्रियता के शिखर छूने लगी। इसी कारण यह डुग्गर की कंढ़ियों और पहाड़ों पर तेजी से स्वीकृत हुई। इतना ही नहीं, जम्मू और हिमाचल के बाईस "धार" राज्यों से इसे बुलावे आने लगे। नयी-नयी स्थानीय रास-मण्डलियों का निर्माण हुआ। ब्रजमण्डल से भी दर्जनों रासमण्डलियाँ डुग्गर क्षेत्र का फेरा डालने लगीं। समृद्ध गाँवों में एक-एक रास-मण्डली महीनों डेरा डाले रहतीं।

मौखिक वार्ता के अनुसार डोगरा क्षेत्र में प्रचलित कृष्ण-लीला विषयक विभिन्न गीत एवं गीतियाँ प्रथमत: भगत मयादास और उनके अनुयायियों द्वारा ही बनाई और गाई गई।

रासलीलाओं के मुख्य विषय थे—

(अ) पुरातन काल से प्रचलित कृष्ण वार्ता—इसमें कृष्ण विषयक मिथक तथा 'मसाह्दे' नामक लोक-गीत सम्मिलित हैं।

(ब) वृन्दावन से सम्पर्क के पश्चात् उभरी मध्यकालीन वार्ता। इस दौर में अधिकतर श्रीकृष्ण से सम्बन्धित "गुजरी" आदि गीतों का निर्माण हुआ।

(ग) साध-बरवाले : हरिजन-वर्ग से सम्बन्धित बरवाला जाति के ऐसे युवक जो सांसारिक जीवन को तजकर स्वत: अर्थात् बिना गुरु या पंथ-दीक्षा से रहित साधु बन जाते हैं, वे आजीवन ब्रह्मचारी रहकर विरक्त साधु-सा जीवन बिताते हैं। उन्हें "साध-

बरवाले'' कहा जाता है। घर-गृहस्थ तजकर वे किसी वीरान स्थान पर धूनी रमा लेते हैं। मिट्टी की राधा और कृष्ण बनाकर वे इनकी पूजा करते हैं। यह विरक्त साधु प्रेम की उपासना में विश्वास रखते हैं। इन पंक्तियों के लेखक ने ऐसे ही एक साधु को ''लैला मजनूं'' को राधा-कृष्ण के अनुयायी मानकर उनकी पूजा करते भी देखा है।

विरक्त साधु राधा एवं कृष्ण के प्रेम के स्वेच्छाचारी गीत गाते और सुनाते हैं। ये लोग शक्ति एवं देवियों विषयक गीत भी गाते हैं। नवरात्र के दिनों में व्रतादि रखकर पूजा-अनुष्ठान किया जाता है। ये लोग कई बार पीरों और खानकाहों विषयक आस्था भी ज्ञापित करते हैं। पौराणिक पात्रों विशेषतया हरिवंश से सम्बन्धित देवों विषयक गीतों और गाथाओं को ''मसाह्दे'' कहा जाता है। चारेक साध-बरवाले एकत्र होकर गायन का दरबार करते हैं—जिसे-''चौकी'' कहा जाता है। ये मूल्यवान वाद्यों का प्रयोग न करके स्व-निर्मित वाद्यों को प्रयोग में लाते हैं। ताल के लिए घड़े के मुख पर बकरे की खलड़ी मढ़कर वाद्य-यन्त्र के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

समाज के निम्न वर्गों में कृष्ण-भक्ति की धारा ले जाने का श्रेय इन्हें दिया जा सकता है। इनके द्वारा गाये जाने वाले मसाह्दा गीत की दो पंक्तियाँ यों हैं—

''गज्जियै बोलो शाम जी,
सारे गोओ शाम जी।''

वैराग्य को जीवन-शैली बनाकर जीने वाले यह साध-बरवाले जीवन के विराग को राधा-कृष्ण के अनुराग से भरते हैं।

(घ) गुराही : समाज के पिछड़े वर्गों में पूजा अनुष्ठान करवाने वाले अनुष्ठाता वर्ग को गुराही कहा जाता है। ''भगत' जाति से सम्बन्धित यह गायक ''रबाब'' आदि वाद्य यन्त्र बजाते हुए लोक-पौराणिक विषयों एवं विविध प्रसंगों को गाते-सुनाते हैं। निम्न वर्गों

में ''गुराही'' वर्ग का वही स्थान है जो उच्च कहे जाने वाले लोगों में पंडित या पुरोहित का होता है।

गुराही लोग पृथ्वी निर्माण की गाथाओं के अतिरिक्त भगवान शिव, राजा हरिश्चन्द्र, रानी तारामती तथा पशुपतिदेव औघड़नाथ से सम्बद्ध स्तुतियाँ एवं गाथाएँ भी गाते हैं। महाभारत के विभिन्न प्रसंग विशेषतया कृष्ण और पाँच पाण्डवों की कथाएँ बड़ी निष्ठा से गाई और सुनी जाती हैं। इस वर्ग द्वारा गाई जाने वाली कृष्ण-कथाएँ यद्यपि महाभारत की कथाओं के संग गाई-सुनाई जाती हैं तथापि उनका कथानक एवं स्वरूप पौराणिक कृष्ण से भिन्न दिखाई पड़ता है। लोक-तत्त्व की मौजूदगी कृष्ण के भिन्न चरित्र की सृष्टि कर देती है। ब्राह्मण अनुष्ठाता वर्ग और गुराही वर्ग में परस्पर सम्बन्धहीनता के रहते गुरहियों ने सदियों के अन्तराल में कृष्ण-कथा को एक भिन्न स्वरूप प्रदान किया है, जो कृष्ण के शास्त्रोक्त चरित्र से मेल नहीं खाता।

(ङ) स्त्री-वर्ग : लोक-वार्ता की अधिकांश विधाएँ, रीतियाँ एवं अनुष्ठान किसी जनपद अथवा समाज में नारी वर्ग का आश्रय पाकर ही जीवित रहते हैं। नारी को लोक-वेद (लोकवार्ता) का संरक्षक एवं प्रेरक माना जाता है। पूजा-पाठ, यज्ञ तथा आनुष्ठानिक कृत्यों एवं कथा-वार्ताओं में प्राय: पुरुष वर्ग कृष्ण-लीला कहता, गाता और सुनाता है, जबकि घर-परिवार के स्तर पर नारी-वर्ग श्रीकृष्ण के विविध गुणों का गान करता दिखाई पड़ता है। डोगरी लोकगीतों के बिहाई, बधावे, सुहाग, बिशनपते आदि विभिन्न भेदों में श्रीकृष्ण का रूप-स्वरूप, लीला अथवा राग-रंग चित्रित दिखाई देता है- उन्हें नारी हृदय की सहज श्रद्धा और उसका कोकिल कण्ठ अपनी स्वर लहरियों द्वारा जिलाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता आया है।

डोगरी लोकगीतों में श्रीकृष्ण—

स्त्री-समाज के अंतस् में बाल-कृष्ण की ऐसी प्रेरक छवि अंकित दिखाई पड़ती है कि प्रत्येक माता अपने शिशु को श्रीकृष्ण का प्रतिरूप मानकर उनके भोलेपन और उसकी शरारतों पर बलिहारी जाती है। ऐसे घर जिनमें प्रभु-कृपा से बाल-गोपालों की किलकारियाँ गूँजती हैं- माएँ, नानियाँ और दादियाँ कृष्ण की विभिन्न लीलाओं पर निर्मित परम्परागत लोकगीतों को गाकर अपने हृदय की भावना प्रकट करती हैं। प्रत्येक नर शिशु को कृष्ण का बाल-रूप मानने की परम्परा के अन्तर्गत बहुत-सी लोरियों और अन्य गीतों का भी प्रचलन हुआ है। डुग्गर की अधिकांश जनसंख्या कृषि से जीविका चलाती है। इसके साथ ही पशु-पालन भी उनके जीवन का आधार है। इसलिए जैसे ही किसी परिवार में पुत्र जन्म लेता है, घर में खुशियों की रेलम-पेल हो जाती है। जनमानस की आस्था है कि जैसे श्रीकृष्ण ने गोकुल-मथुरा-द्वारका को घोर संकटों से उभारा था, उसी भाँति परिवार में आने वाला नर-सदस्य उनकी तमाम कठिनाइयों, कष्टों और आर्थिक संकटों का निवारण करेगा। श्रीकृष्ण का यह रूप घर-वर्ग परिवार के वातावरण में धार्मिक पवित्रता का संचार करता है। अपने दैनन्दिन कार्यों में भी श्रीकृष्ण विषयक गीत गाकर माताएँ गृहस्थी में अमृत-रस घोल देती हैं।

बाल-गोपाल के वस्त्र धोते हुए माएँ एक गीत के शब्द गुनगुनाती हैं, जिनका भावार्थ है—"प्रिय शिशु। मैं तुम्हारे कपड़े रंग रही हूँ। वीर कृष्ण "गोल्ली" खेल रहा है। घुँघराले बालों वाले खिलाड़ी कृष्ण तुम सदा खेलते रहो।"

धार्मिक रूप से निष्ठावान नारी-समाज प्रात: नींद खुलने पर सर्वप्रथम श्रीकृष्ण का नामोच्चारण करके अपनी दिनचर्या का आरम्भ करता है। नहा-धोकर नारी के मुख से उच्चरित होते यह शब्द सुने जाते हैं—

''न्हाती में परभाती,
कुंडलें आहले मेरे साथी''

भावार्थ—''प्रभात समय मैंने स्नान पा लिया है। कुण्डलों वाले श्रीकृष्ण मेरे संग हैं।''

नारी-मानस अपने अंग-संग श्रीकृष्ण के रहने की कल्पना उनके द्वारा द्रौपदी की लज्जा के रक्षक के रूप में करता है। प्रात: समय स्त्रियाँ श्रीकृष्ण का स्मरण इन शब्दों से करते हुए भी सुनाई पड़ जाती हैं—

''सुनो बृज देओ लोको।
मेरा शाम गोआचा नेई ल'बदा,
मोरा गोआं चरांदा नेई ल'बदा,
मेरा शाम-मुरारी नेई ल'बदा।''

भावार्थ—''हे ब्रजमण्डल के लोगों, सुनो! मेरा श्याम खो गया है और ढूँढ़ने पर मिल नहीं रहा। गइयाँ चराने वाला मेरा श्याम-मुरारी नहीं मिल रहा।''

इसी भाँति नारी-मानस बाँसुरी-वादक कन्हैया को ब्रज की गलियों में ढूँढ़ता भटक रहा है। हाथ में फूलों से भरी करंडी लेकर वह बाँसुरी वाले को हार चढ़ाने की वांछा लिए इस पवित्र भूमि पर भटक रहा है, जहाँ श्रीकृष्ण का वास है।[2]

कृष्ण सांसारिक एवं आध्यात्मिक प्रेम की पराकाष्ठा का प्रतिमान बने लोक-मानस में पूजे जाते हैं।

घर के प्रत्येक काम-काज में नारी-वर्ग कृष्ण का नाम स्मरण करता दिखाई पड़ता है। यहाँ तक कि पाकशाला में भोजन पकाते समय भी नारी मानस अपने इष्टदेव को भूलता नहीं है—

मेरे कान्हा जी, मेरी रसोइया आओ जी,
बासमती दा भत्त में रिन्हां, तुस खाओ जी।

कुल्थें दी दाल चढ़ी पचोह्लै, रज्जियै तुस खाओ जी।''

भावार्थ—''हे कान्हा जी! मेरी रसोई में पधारिए। मैंने बासमती के चावल और कुल्थ की दाल बना रखी है। आप आकर भरपेट खाइए।''

इस प्रकार के लोक-तत्त्वावेष्ठित वर्णन डुग्गर के जन-जीवन में ग्रहण किए गए कृष्ण के लोक-रंजक रूप को चिह्नित करते हैं।

डोगरी लोकगीतों के विभिन्न वर्गों-उपवर्गों में श्रीकृष्ण विषयक गीत प्राप्त होते हैं। ऐसे गीतों के मुख्य भेद यों हैं—

1. बिशनपते, 2. होलियाँ (होली गीत), 3. भ्यागड़े, 4. सुहाग, 5. गुजरी, 6. गीतड़ू, 7. गुसेंजन, 8. बारहमासे, 9. लोक-मंत्र, 10. बिहाई गीत आदि।

बिशनपते : भगवान विष्णु और उनके अवतारों की स्तुति में गाए जाने वाले गीतों को बिशनपते कहा जाता है। इस शब्द का विकास ''विष्णु-पद'' अथवा ''विष्णु-पत्र'' शब्द पदों से हुआ है। यद्यपि इन गीतों में हरिवंश से सम्बद्ध तमाम देवों के भजन समाहित हो जाते हैं, तो भी इन गीतों में से अधिसंख्य गीत कृष्णावतार से सम्बद्ध हैं। प्रत्येक विशनपता भक्ति-भाव से सराबोर दिखाई पड़ता है, किन्तु हरएक की विषय-वस्तु भिन्न होती है।

एक बिशनपते में ये भाव समाहित दिखाई पड़ते हैं—''हे भगवान बाँसुरी वाले! आपका भेद कोई नहीं पा सका! मैंने आपको सर्वत्र ढूँढ़ा। मेलों में भटकती फिरी, बनजारों से पूछा। किन्तु आप तो हमारे श्वांसों में छिपे हुए थे, बाँसुरी वाले।[3]

होली गीत : होली का पर्व डोगरी-भाषी क्षेत्र में बड़े जोश-खरोश से मनाया जाता रहा है। किन्तु वर्तमान में आधुनिक्क अन्धा-नुकरण की हवा में जनमानस के परम्परागत उत्साह में कमी आई है। लोकवार्ता में होली विषयक गीतों का पर्याप्त प्रचलन अब भी है।

कृष्ण और गोपियों के रास रचाने के प्रसंग के समान ही उनके रंग खेलने के प्रसंग भी जनमानस में स्थान बनाये हुए हैं। गीतों के कुछ अंश प्रस्तुत हैं—

(1) **''सैले-पीले रंग, खेढो होली जी,**
गोपी टप्पी आई कंध, खेढो होली जी।''

भावार्थ—''सब्ज और पीले रंगों से मिलकर होली खेलिए। गोपी दीवार फाँदकर होली खेलने आई हैं। -सब होली खेलिए।''

(2) **''अस सब रल-मिल सखियाँ,**
खेदन होली चलियाँ बिंदरावन।''

भावार्थ—''हम तमाम सखियाँ एक-साथ होली खेलने बिंदरावन जा रही हैं।''

(3) **होली खेढो रे, दोआरका वाले,**
गोआं बी कल्पन, बछड़े बी कल्पन-कल्पन गोआल बचारे।''

भावार्थ—''हे द्वारिकाधीश! वृन्दावन में आकर होली खेलिए। आपकी अनुपस्थिति में गाएँ तड़प रही हैं। ग्वाल-बाल और बछड़े भी तड़प रहे हैं।''

होली विषयक एक अन्य लोकगीत में वर्णन आता है कि होली के त्यौहार पर सखी स्नान हेतु जमुना नदी पर जा रही है। नहा-धोकर वह हाथ के कंगना का दान करने हेतु चौकी पर बैठ गयी है। इस भाव को रंगों और रेखाओं में किसी चित्रकार ने भी उभारा है। यह ''मिनिएचर पेंटिंग'' देखने का सौभाग्य इन पंक्तियों के लेखक को भी प्राप्त हुआ है। यह बात का प्रमाण है कि पहाड़ी कलम के चित्रकारों ने लोकगीतों में बँधे बिम्बों को आधार बनाकर भी अपनी कला को मुखर किया है।

भ्यागड़ा : लोकगीतों का भेद भ्यागड़ा तहसील ''बसोहली'' के कंढी एवं पर्वतीय क्षेत्रों में प्रचलित है। इस क्षेत्र में प्रातः के अर्थ

में 'भ्यागा' शब्द का प्रयोग होता है, अतएव भ्यागड़ा का गायन प्रातः काल सूर्योदय से पूर्व करने की परम्परा है। विविध पौराणिक प्रसंग भ्यागड़ा गीतों का मुख्य विषय बनते हैं। कृष्ण-लीला से सम्बन्धित तीन उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं—

(1) **कृष्ण-जन्म**—इस भ्यागड़ा गीत में कृष्ण अवतार का परिचय प्रश्नोत्तर शैली में दिया गया है। लोकगीत के मुखड़े में प्रश्न है कि कृष्ण ने जन्म कहाँ लिया? उत्तर में गाया जाता है—हे राधिके! कृष्ण का जन्म गोकुल में हुआ। अगले प्रश्न में राधा पूछती है—किसने जन्म दिया और किसने उसे पाला? उत्तर आता है—देवकी ने जन्म दिया और यशोदा ने अपनी गोद में पाला।[5]

(2) **कालिया नाग प्रसंग**—यमुना में कालिया नाग को नथने के प्रसंग का हृदयहारी चित्रण एक अन्य गीत में हुआ है। गेंद को निकालने के बहाने से कृष्ण जमुना में कूद जाते हैं। वहाँ उन्होंने कालिया नाग को बलपूर्वक नथा। नागनियाँ स्वयं को धन्य मानने लगीं कि श्रीकृष्ण ने स्वयं पधारकर उनकी दर्शन-पिपासा को शान्त किया है। इसी लोकगीत में आगे चलकर वर्णन आता है कि कृष्ण पहले तो गोरे रंग के थे, किन्तु कालिया नाग के फुँकारने पर श्रीकृष्ण का रंग श्याम हो गया।[6]

(3) **कृष्ण केलि**—कृष्ण द्वारा रास रचाने का प्रसंग लोक-मानस को खूब भाता रहा है। वृन्दावन में संगी-साथियों, राधिका तथा गोपियों सहित श्रीकृष्ण रास में भाग लेने निकल पड़े हैं। वृन्दावन में झूले पड़ गए हैं। कृष्ण झूला झूलने हेतु अपने संगियों सहित आज पहुँचे हैं। इस तरह वे यमुना तट पर सबके संग मिल-जुलकर क्रीड़ाएँ करते हैं। किन्तु गेंद जब यमुना में गिर गई तो गोविन्द माधव बिना संगी-साथियों अथवा राधिका और गोपियों के अकेले गेंद ढूँढ़ने यमुना के भीतर चले गये।

सुहाग- ऐसे लोकगीतों में सुहाग कहा जाता है, जो विवाह के अवसर पर कन्या-पक्ष की स्त्रियों द्वारा गाए जाते हैं। इन गीतों में कन्या को प्रायः राधा और वर को कृष्ण माना जाता है—

''नीमां होइयै लंघ कृष्णा,
मैं ते कन्या कुआरी।
तूं ते कन्या कुआरी राधके।
मैं ते कृष्ण मुरारी आं।''

भावार्थ—''हे कृष्ण नम्रतापूर्वक चलो। मैं कुमारी कन्या हूँ। कृष्ण कहते हैं—राधिके तू कुमारी कन्या है तो मैं भी कृष्ण मुरारी हूँ।''

जिस घर में सुहाग-गीत गाए जा रहे हों, लोग बिन बतलाए जान लेते हैं कि इस घर में लड़की का विवाह होने वाला है। इन गीतों के द्वारा विवाह योग्य कन्या के मानसिक रूप से अपने से बिछुड़ने के लिए तैयार होने में सहायता मिलती है। ससुराल घर में उसका रुतबा राधिका के समान होगा—यह मनोवैज्ञानिक आश्वासन जीवन में उसकी नयी भूमिका का स्मरण कराता है। उसका पति कृष्ण के समान नहीं, स्वयं कृष्ण ही होंगे। उसका जीवन खुशियों से भरपूर होगा। कृष्णाश्रित मनोवैज्ञानिकता के रहते उसके हृदय रूप में भावी पति के प्रति प्रेमासक्ति के स्फुलिंग सहज रूप से जाग्रत होकर उसे एक नये घर के वातावरण में अपरिचित लोगों के बीच समायोजन बैठाने में सहायक होते हैं। विवाह सम्पन्न होने तक विविध अनुष्ठानों के अवसर पर सुहाग गीत गाने की परम्परा है। इनमें से कुछ एक तो इतने मार्मिक होते हैं कि सुनने वालों की आँखों में स्वतः अविरल अश्रु बहने लगते हैं। इन सुहाग गीतों में कहीं-कहीं श्रृंगार-रस का मर्यादित उछाल भी दिखाई पड़ता है। एक गीत में कृष्ण मुरारी कन्या को राधिके कहकर अपने पास बुलाते हैं। उत्तर में वह कहती है—

''मेरे कान्ह जी! मैं कैसे आऊँ, मेरा जेवर (पायजेब) छनक रहा है। इसका तात्पर्य यह है कि ससुराल घर में कोई पायल की झनकार सुन लेगा तो मेरी चोरी पकड़ी जाएगी।''

एक अन्य सुहाग गीत में कन्या-पक्ष की ओर से अपनी कमजोर आर्थिक स्थिति का वर्णन यों किया गया है—

''हमारे पास न तो मोहरों (स्वर्ण मुद्राओं) के हार हैं, न ही नाक के लिए लौंग ही है। हम विवाह में मात्र कन्या ही दे पायेंगे। इसके उत्तर में वर उन्हें निश्चिंत करते हुए कहता है—''आपकी कन्या राधिका है और हम कृष्ण मुरारी हैं। हमें तो मात्र आपकी बेटी चाहिए।''[7]

वर यदि कृष्ण होगा तो वह सच्चे प्रेम की वांछा रखेगा। उसे दहेज से क्या सरोकार? कन्या को राधिका मानकर स्वीकार करने वाला वर लोभ और लालच से ऊपर होगा ही। राधा-कृष्ण का प्रेरक प्रेम-कथानक जनमानस में लोक-मर्यादा का निर्धारक बनता है।

सुहाग गीतों में वर योग्य कन्या की मनोवांछायें भी मुखरित हुयी हैं। उसे किस प्रकार के वर की अपेक्षा है, इसे लोकमानस में यों व्यक्त किया गया है—

''जैसे तारों के मध्य चन्द्रमा है और चन्द्र पर जैसे काह्ना विराजमान है- वैसा ही वर मुझे अभीष्ट है।''[8]

गुजरी-डोगरा जनमानस में प्रचलित ऐसे लोकगीत जिनमें कृष्ण एवं गोपियों अथवा राधा और कृष्ण के प्रेम का वर्णन आता है, उन्हें गुजरियाँ कहा जाता है। इसकी एक वचन संज्ञा है ''गुजरी''। गुजरी शब्द का प्रथम कोशीय अर्थ है—गूजर जाति की स्त्री। किन्तु लोकवार्ता की दृष्टि से इसका अन्य अर्थ है—कृष्ण की गोपिका या राधा। दूध बेचने वाली गुजरी को लोकमानस गोपी का पर्याय मानकर गोपी, राधा अथवा गुजरी विषयक गीतों को ''गुजरी गीत''

कहता आया है। इसलिए ऐसे लोकगीत जिनमें मात्र गुजरी के विभिन्न कार्य-व्यापार अथवा उसकी श्रृंगारिक भावनाएँ चित्रित हुई हैं और जिनमें श्रीकृष्ण एवं गोपिका लीला, संवाद या केलि का वर्णन नहीं है, वे भी उपवर्ग में सम्मिलित देखे जाते हैं। इनमें गुजरी के दूध बेचने से लेकर उसके द्वारा भैंसें दुहने या उनके लिए घास काटने के दैनन्दिन कार्यों को भी सम्मिलित देखा जाता है।

गुजरी गीतों में मुख्यतः श्रृंगार-रस का परिपाक दिखाई पड़ता है। आरम्भ में प्रेमातिरेक में रचे-बसे इन गीतों के वर्ग में कुछ एक संकलनकर्ताओं ने साधारण गीत भी संकलित करने की भूल की है।

राधा-कृष्ण के आध्यात्मिक प्रसंग को आधार बनाकर जन-मानस ने लौकिक प्रेम को दर्शाते ऐसे लोकगीतों का प्रणयन भी किया है, जिनमें प्रेमी को कान्ह तथा प्रेमिका को राधिका कहा गया है। ऐसे गीतों को भी गुजरी-गीतों में सम्मिलित किया जाता है। ऐसे ही एक गीत में युवती गुजरी को सुधा की बन्द बोतल के रूप में सम्बोधित करके राधा के प्रेम का उद्घाटन किया गया है। राधा द्वारा उच्चरित भिन्न-भिन्न पदों में भिन्न- भिन्न निश्चयों का उद्घाटन किया गया है। यथा—''मैं चक्कर लगाऊँगी'', ''मैं सो जाऊँगी'' या ''मैं भाग जाऊँगी'' आदि।[9]

एक अन्य गुजरी गीत में कृष्ण को गायों के चरवाहे के रूप में चित्रित करते हुए पूछा गया है—''हे नन्द के पुत्र कान्हा! तमाम गायें चरकर घर लौट आई हैं, किन्तु आप कहाँ रह गए। आपने जो कंकरी मारी वह यमुना के पार जाकर गिरी। आपकी बजाई मुरली को सारे संसार ने सुना, किन्तु आप कहाँ छूट गए? सखियाँ ढूँढ़ने निकली तो कान्हा गोकुल के पिछवाड़े में छिपे मिले—

''काह्ना नंदे देआ लाल,
गोकल गाइएं दा चरवाल।
गाइयां चरी घर आइयां,
कान्ह कुत्थें रेहा चरवाल।
जे तूं गीह्टी मारी ओ,
गीह्टी जाई पेई जमना पार।
जे तूं मुरली बजाई ओ,
मुरली सुनी सारे संसार।
सखियां तुप्पन चढ़ियां,
गोकल छप्पे दा पचवाड़।''

कृष्ण का गइयाँ चराना, बाँसुरी बजाना, माखन खाना, रास रचाना, गोपिकाओं की गगरियाँ फोड़ना, सखियों का इकट्ठे होकर नहाने जाना, फूल तोड़ने या झूला झूलने जाना आदि कार्य-व्यापार भी गुजरी-गीतों में स्थान पाते हैं।

इन गीतों में श्रीकृष्ण के रूप-शृंगार का मनोरम चित्रण दिखाई पड़ता है। उनके श्याम, मुरारी, मदन गोपाल, गिरधारी आदि विभिन्न नामों का वर्णन तथा उनके कानन-कुण्डलों का वर्णन भी दिखाई पड़ता है। डोगरी वार्ता में श्रीकृष्ण का प्रथम व्यक्ति-चित्र 700 वर्ष पूर्व विरचित ''बावा जित्तो'' की लोकगाथा में प्राप्त होता है, जिसमें डोगरा क्षेत्र में दशम् शक्ति के रूप में मान्य कन्या सती ''बुआ कौड़ी'' अपने पिता (जितमल) के विषय में बतलाते हुए कहती है—

''गला च सोभै, मुंगें दी माला, मत्थै तिलक लगाई,
मत्थै बापू दे गोविंद बसदा, बापू ल' बदा कृष्ण मुरारी।''

भावार्थ—''बापू के गले में मूँगों की माला है और उनके माथे पर तिलक लगा हुआ है। उनका मुख गोविन्द के समान है। वे

कृष्ण-मुरारी के समान दिखते हैं।''

श्रीकृष्ण का यह उल्लेख डोगरा जनमानस में सम्भवतया सबसे पुराना दिखाई पड़ता है। यह इस बात का परिचायक है कि यहाँ श्रीकृष्ण एक लोक-रंजक नायक के रूप में प्राचीन काल से प्रतिष्ठित हैं।

शृंगार-रस से आवेष्ठित एक गुजरी-गीत में एक ऐसी गुजरी-गोपिका का वर्णन है, जिसमें उसके विलम्ब से घर लौटने पर उसका शक्की स्वभाव का पति उसे पूछताछ करते हुए संदेह व्यक्त करता है कि तू अवश्य ही कृष्ण के संग कहीं बैठी रही होगी? गुजरी कई बहाने बनाती है, किन्तु उसका पति नहीं मानता और बार-बार उसे कृष्ण के ताने मारता है। इस गीत के कुछ प्रसंग यहाँ प्रस्तुत हैं—

प्रश्न— ''**बड्डे पैह्‌र दी चली गजरेटी, इतना चिर क्यों लाया,**
जां तूं बैठी कान्हा दे कन्ने जां तूं किश गुआया?''

भावार्थ—''अरी गुजरिया! तू प्रातः समय घर से निकली थी। तूने इतनी देर कहाँ लगा दी? या तो तू कन्हैया के संग थी, या तेरा कहीं कुछ खो गया है, जिसे ढूँढ़ते तूने इतना समय लगा दिया।''

उत्तर— ''**ना में बैठी काह्‌न दे कन्ने, ना मैं किश गुआया।**
मेरे मत्थे दी बिंदली ढली-ढली पौंदी पैह्‌नदियां चिर लाया।''

भावार्थ—''न तो मैं कान्हा के संग थी न ही मेरा कहीं कुछ खो गया था। मेरे माथे की बिंदली (एक आभूषण) ढलक रही थी, इसलिए उसे पहनते हुए देर हो गयी।''

प्रश्न के रूप में शक्की मिजाज वह पति वही दो पंक्तियाँ दुहराता है, तब गुजरी कहती है—''न तो मैं काह्‌न के संग थी, न ही मेरा कुछ खो गया था। मेरी बाजुओं का चूड़ा ढलक कर उतर रहा था। उसी को पहनते हुए बिलम्ब हो गया।''

पति को इस उत्तर पर विश्वास नहीं होता तो वह दुबारा वही

प्रश्न पूछता है। अबकी गुजरी कहती है—"मेरी कमर से साड़ी ढरक कर उतर रही थी- उसे पहनते हुए देर लग गयी। इसी तरह पुनः प्रश्न पूछने पर वह कहती है कि मेरे नाक का बेसर ढरक रहा था- उसी को पहनते देर लग गयी।"

श्रृंगार-रस में पगे जिन गुजरी गीतों में कृष्ण और गुजरी का परस्पर झगड़ा या वार्तालाप चलता है, उन्हें "गुजरी द झेड़ा" कहा जाता है। ऐसे ही एक "झेड़ा" गीत में बालक कान्ह प्रेम नगरी के कराधान अधिकारी के रूप में चित्रित किए गए हैं। आती-जाती गुजरियों से वे "जागत" अर्थात् कर माँगते दिखलाए गए हैं। वे गुजरी से कहते हैं—गुजरिया! बिना कर चुकाए मैं तुझे जाने न दूँगा। उत्तर देते हुए गुजरी कहती है—हे नन्हे कन्हैया न तो मैं केसर-कस्तूरी लाद कर ले जा रही हूँ, न ही लौंग-सुपारी, फिर कर किस बात का? कर के रूप में तुम क्या चाहते हो? न तो तुम्हें सोना-चाँदी चाहिए न ही तुम कपिला गायें माँग रहे हो—तुम्हें चाहिए तो चाहिए क्या? इस प्रश्न के उत्तर में कान्हा कहते हैं—"सोने-चाँदी से कठिनाइयाँ बढ़ जाती हैं। न ही मुझे हीरे और मोतियों का कर चाहिए। मेरी तो प्रेम ज्योति को प्रज्ज्वलित करने की माँग है। हे लाल और संदली चुनरी वाली गुजरिया! तू पल भर बैठकर मेरी बाँसुरी सुन ले।" उत्तर में गुजरी कहती हैं—"मेरी सास बेहद झगड़ालू है। देर से घर जाने पर वह मुझे पीटेगी। अरे ओ नन्हे कृष्णा!" कन्हैया गुजरिया को आश्वस्त करते हैं—"मैं तुम्हारी सास को समझा दूँगा। वह घर में बैठकर चरखा चलाएगी।" गुजरी पुनः अपने गुस्सैल ससुर का अंदेशा जाहिर करती है तो कृष्ण उसे निर्भय करने के लिए कहते हैं—"तेरे ससुर को भी मैं रास्ते पर ले आऊँगा। वह गोकुल के बछड़े चराया करेगा।" गुजरी कहती है—"मेरा पति अत्यन्त लड़ाका है। मेरे विलम्ब से घर लौटने पर वह मेरी पिटाई करेगा।" कृष्ण कहते हैं—"मैं तेरे पति का

दूसरा विवाह करवा दूँगा।'' गुजरी व्यंग्य बुझे स्वर में कहती है— ''मेरे पति का तो दूसरा विवाह करवाने की कहते हो, किन्तु स्वयं तो तुम कुँवारे भटक रहे हो।'' कृष्ण उत्तर देते हैं—''हे गुजरिया! मेरे भाग्य में एक गुजरी बँधी है। उसी के प्रेम में मैं कुँवारा फिर रहा हूँ।''

ऐसे गुजरी गीतों में कृष्ण और उनकी सखियों के बीच मधुर प्रेम-सम्बन्धों का वर्णन मिलता है। राधा-कृष्ण के बहाने से जन-मानस लौकिक प्रेम-प्रसंगों का गुजरी से गीतों में बखान करता दिखाई पड़ता है।

गीतड़ू— यह डोगरी लोकगीतों का ऐसा भेद है, जिसमें नृत्य के साथ शृंगारिक गीतों का गायन किया जाता है। गीतड़ू मण्डली प्रायः पुरुष-वर्ग पर आधारित होती है। इसमें तीव्र ध्वनि वाले साज-बाज भी बजाए जाते हैं। गीतड़ू गायक अन्य विषयों के संग श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाएँ भी गाया करते हैं, जो श्रोता को भाव-विभोर कर देती हैं—

''चिट्टी चंगेरी बिच फुल्ल सजदा।
मैं कृष्ण-कृष्ण आखी रेही आं।
कृष्ण बिंदरावनै च नचदा।
दुखें-दर्दे आलियां रातां कृष्णं कि 'यां बीतियाँ?
राधा दुक्खें आलियां रातां रोई-रोई बीतियाँ।''

भावार्थ—''श्वेत टोकरी में फूल सजे हुए हैं। मैं कृष्ण-कृष्ण पुकार रही हूँ और वह वृन्दावन में नाच रहा है। इतना तो बतलाओ कृष्ण कि दुःख और पीड़ा से भरी रातें कैसे बीतीं? हे राधे! दुःखदाई रातें रो-रोकर काटीं।''

इस लोकगीत में इस भाव का चित्रण हुआ है कि गोपियों से बिछुड़ने पर कृष्ण भी गोपियों से कम दुःखी नहीं थे। विरह की रातों में वे भी बिलख पड़ते हैं।

कृष्ण की बाँसुरी बजने पर किस भाँति गोपियों को अपनी ओर खींच लेती है, इसका मनोरम चित्रण एक अन्य गीतड़ू में यों हुआ है—

''बंसरी बज्जी ऐ जमना तीर,
ओ मुरलू बज्जी ऐ जमना तीर।
गोदा दा बालक तज्जेआ-
विच्छें दा तन्नेआ ई बीर।
बंसरी बज्जी ऐ जमना तीर....
ओ मुरली बज्जी ऐ जमना तीर....
काह्न निं मिलआ जमना तीर।
बंसरी बज्जी ऐ जमना तीर।''

भावार्थ—''यमुना के तट पर बाँसुरी बजने लगी है। मैंने अपनी गोद का बालक छोड़ दिया है और घर पर बैठे भाई को भूल कर नदी के तट की ओर चल पड़ी हूँ। किन्तु कृष्ण यमुना तीरे नहीं मिला, इसलिए मेरा हृदय जल उठा है।''

गुसेंतन में कृष्ण-कथा— डोगरा-पहाड़ी समाज में प्रचलित यह अति प्राचीन लोक-अनुष्ठान है, जिसमें अनुष्ठाता-वर्ग को गुराही अर्थात् लोक-गुरु कहा जाता है। गुसेंतन में गाए जाने वाले विभिन्न प्रकार के गीतों को ''मसाह्दे'' कहा जाता है। इनमें राम और कृष्ण की महिमा वाले मसाह्दे भी शामिल हैं।

''हरे-हरे बाका, साका रो,
शिव ऐ मेरा साका रो।
आरती त्रास नि लागे,
आरती कृष्ण-कनेहिया।
रामचंदर-सीता दी जी।''

भावार्थ—''मैं हरि का गुणगान करता हूँ। भगवान शिव ही

मेरे आराध्य हैं। श्याम को भजता हूँ तो तो भव का भय नहीं रहता। मैं कृष्ण-कन्हैया और सीता-रामचंद्र की आरती गाता हूँ।''

इस अनुष्ठान में यह गायक वर्ग ऐसे चम्पू-गीतों का गायन करता है, जिनमें कृष्ण से सम्बन्धित ऐसे गद्य-पद्य मिश्रित प्रसंग सुनाए जाते हैं, जिनमें वर्णित कृष्ण का चरित्र पौराणिक कृष्ण से पर्याप्त भिन्न है। द्रौपदी चीर हरण के प्रसंग में वे किसी दैवी चमत्कार में दिल्ली आई हुयी असंख्य यादव सेना का दबाव डालकर उसकी रक्षा करते हैं। इसी तरह एक अन्य स्थल पर वनवास झेल रहे पाण्डवों से वे ऐसा धर्म विरुद्ध छल खेलते हैं मानो वे इस महाकथा में खलनायक हों।

बारहमासों में श्रीकृष्ण

अखण्ड भारत अर्थात् दक्षिण एशिया की तमाम भाषाओं और बोलियों में बारहमासा लेखन की परम्परा चली आई है। कवियों द्वारा रचित बारहमासे उनकी पुस्तकों अथवा पाण्डुलिपियों में उपलब्ध होते हैं, जबकि जनमानस द्वारा रचित बारहमासों को लोकवार्ता में स्थान दिया गया है। डोगरी लोकगीतों में उपलब्ध बारहमासे बहुधा प्रकृति-चित्रण, शृंगार-रस अथवा नीति और मर्यादा से सम्बन्ध रखते हैं। कृष्ण के विरह को आधार बनाकर लोककवि बड़ी पटुता से राधा के विभिन्न मनोभावों को सामने लाता है। प्रत्येक मास के परिवर्तन पर श्रीकृष्ण के विछोह से मिलने वाले हार्दिक दाह का वर्णन हुआ दिखाई पड़ता है—

''चेत्तर, चित बिच रोआं, अंजुएं हार परोआं,
रोई-रोई मुखड़ा धोआं, बिछड़े मेरे प्यारे।
मिंजो चली गे बसार, घर आओ वाले,
श्याम! कृष्ण प्यारे..................''

भावार्थ—''चैत का मास चला आया है। मैं निरन्तर रो-

रोकर अश्रुओं के हार पिरोती हूँ—जब से मेरे प्यारे कृष्ण बिछड़े हैं। हे श्याम! मुझे भुलाकर क्यों चले गए? हे बाँसुरी वाले! घर लौट आओ।''

इसी भाँति अन्य मासों का संक्षिप्त भावार्थ यों है—

बैसाख—''आप रथ पर सवार होकर मथुरा की रक्षा हेतु चल दिए। हे बंसी वाले घर चले आइए।''

ज्येष्ठ—''खाना-पीना नहीं भाता। आपकी विरह की कटारी सीने से लगती है। बंसी वाले मुझे भुलाकर क्यों चल दिए।''

आषाढ़—''अकेली बैठकर रोती हूँ। मैं सोलह शृंगार किए बैठी रही। मुझे भुलाकर बंसी वाले चल दिए।''

सावन—''पुरवाइयाँ चल रही हैं। पपीहे गा रहे हैं। बंसी वाले मुझे भुलाकर क्यों चल दिए।''

भादों—''भाद्रपद मास की अंधियारी रातें बीतने में नहीं आ रहीं। विरह की स्मृति निरन्तर हृदय को सालती रहती है। कृष्ण प्यारे लौटकर आ जाइए।''

असूज—''मोरों के बोलने से विरह की पीड़ा बढ़ जाती है। हे चितचोर! आपकी प्रतीक्षा में मैं हार गयी हूँ। लौट आइए।''

कार्तिक—''आपके संग शय्या पर मेरी सौतिन होगी जो गहरा प्रेम जतलाती होगी। श्याम प्यारे लौट आइए।''

मार्गशीर्ष—''हृदय में प्रेम का उफान उठ रहा है। मैं सज-धज रही हूँ। कान्हा प्यारे लौट आइए।''

माघ—''मेरे सदृश युवती न हो—जिसकी प्रीति तोड़कर श्याम चले गए। बंसी वाले लौट आइए।''

फाल्गुन—''श्याम! आकर हमें रंगों से नहला दो। हमारे संग होली खेलो और सखियों से पिटो। हे प्यारे! लौट आइए।''

बारहमासा परम्परा में लोकगीतों की तरह प्रेमी को कृष्ण

कहने की परम्परा भी रही है। श्रीकृष्ण जनमानस में प्रेम का प्रतीक ही हैं।

''फागगन निं जायो काहन जी, होली दी ब्हारें,
गोपिएँ संग खेढो होली प्यारे।''

श्रीकृष्ण को सम्बोधित बारहमासों के और भी रूप प्रचलित हैं। ऐसे ही एक अन्य बारहमासे में वर्णित है—हे श्याम मैं चैत्र मास में खिलने वाले फूल चुन रही हूँ। हाथ टोकरी है और गले में फूलों की माला। मैं निरन्तर हरि का नाम जप रही हूँ—

''चेत्तर दे म्हीने श्यामा।
मैं ते चेत्तर फुल्ल चनैनियाँ।
हत्थ छाबड़ी, गल फुल्लमाला,
मैं हरि दा नां ध्यानियाँ।''

इसी भाँति गोपिका कहती है—''हे श्याम! मैं बैसाख मास के स्नान हेतु जा रही हूँ। हाथ में गड़वा हैं।''

लोक-मन्त्र

स्त्री-वर्ग में ऐसे लोकाचार प्रचलित हैं, जिनमें कृष्ण के प्रति अपार निष्ठा झलकती दिखाई पड़ती है। कुछएक अनुष्ठानों में कृष्ण को सर्वस्व के स्वामी के रूप में स्मरण किया जाता है। ''गोह्दन पूजा'' वस्तुत: गोवर्धन पर्वत की स्मृति में संजोए हुए है। कृषि-मानस की वार्षिक पूजा में उच्चरित लोक-मंत्र के भिन्न-भिन्न भेद विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित हैं।

इन मन्त्रों का भावार्थ यह रहता है कि—''हे गोवर्धनधारी! हमने आपको पूजा। आप हमें दूध और दही की वृद्धि देना।

बाँह में ''अनंत'' नामक आभूषण धारण करते हुए स्त्रियाँ कृष्ण को ध्याते हुए इस लोक-मन्त्र का उच्चारण करती हैं—

''नैंता-नैंता। रुकमणि देआ कैंता।
मेरेआ कृष्णा। मेरेआ कैंता। वे
मेटेआं कसैले, मेटेआ चैंता।
मीं बाहीं च धारेआ, सारा जग हारेआ।
तुगी बाहीं च, पाया, मिगी बैकुंठ दखायां।
ॐ श्रीकृष्णाय नमः ॐ सूर्याय नमः।''

भावार्थ—''हे अनंत! आप रुक्मिणी के कंत हैं। हे कृष्ण-कन्हैया! मेरी चिन्ता मिटा दो। आपको मैं बाँह में धारण कर रही हूँ, मुझे बैकुण्ठ का रास्ता दिखला देना। ॐ श्रीकृष्णाय नमः ॐ सूर्याय नमः।''

बिदाई गीत—यह नर-शिशु के जन्म से सम्बन्धित खुशी के गीत हैं। लोक समाज में नर-शिशु के जन्म पर अत्यधिक खुशी मनाई जाती है। इस अवसर पर बधाई गीत भी गाए जाते हैं। पुत्र-जन्म को विधमाता (बयमाता) का वरदान माना जाता है। बालक के जन्म को कृष्ण के समान माना जाता है।[10]

इसी वास्ते मातृत्त्व को सार्थकता प्रदान करने वाले बालक को डोगरा-समाज में त्रिलोकी के नाथ श्रीकृष्ण माना जाता है—

''कृष्ण मुरारी जरमे भ्रावो।
त्रै-लोकी दे नाथ।
गोदां हरियां होइयां''

—डोगरी लोकगीत; भाग-4 पृ. 12

एक अन्य बिदाई गीत में जनमानस उत्सुकतापूर्वक पूछता है कि कान्हा का जन्म कहाँ हुआ है? बधाई कहाँ बज रही है? उत्तर आता है कि कृष्ण का जन्म मथुरा में हुआ और गोकुल में बधाई बज रही है।[11]

इन गीतों में पुत्र का पिता बनने वाले व्यक्ति को 'नंद जी' कहकर सम्बोधित किया जाता है—

''नंद जी दे बज्जन बधाइयां,
घर नंद जी दे।
बज्जन बधाइयां ते चढ़न कढ़ाइयां
घर नंद जी दे।''

भावार्थ—''नंद जी के घर में बधाई बज रही है। इस शुभ अवसर पर आग पर कढ़ाइयाँ चढ़ाकर विभिन्न खाद्य पदार्थ पकाए जाने लगे हैं।''

बिहाई नामक लोकगीत इस बात के सूचक हैं कि डोगरा-समाज में कृष्ण को आदर्श व्यक्तित्व माना जाता है। इसी से उनकी प्रत्येक लीला को अनुकरणीय माना जाता है।

समाहार : 1. वर्तमान समय में श्रीकृष्ण का चरित्र डोगरा लोकगीतों में विशद् रूप से चित्रित हुआ है। यद्यपि डोगरा लोक-मानस में श्रीकृष्ण विषयक लोकगीतों का विधिवत प्रणयन एवं प्रवेश उत्तर-मध्यकाल में हुआ तथापि उनके विविध लोक-रंजक कथानक लोकवार्ता के दर्पण में तीव्र गति से निर्मित और प्रतिबिम्बित होने लगे।

2. इससे पूर्व की लोकवार्ता में कृष्ण का चरित्र पाण्डवों विषयक ''मसाहद्दा'' गीतों में झलकता है, परन्तु वहाँ वे एक प्रतिनायक की भूमिका में दिखलाई पड़ते हैं।

3. उत्तर मध्यकाल में कृष्ण कथानक के बीच इस तीव्रता से पनपे और फले-बढ़े कि शीघ्र ही लोक-समाज पर विशेषतया कोमल नारी-समाज के राज-सिंहासन पर श्रीकृष्ण विराजमान दिखाई देने लगे। विभिन्न लोक-अनुष्ठानों, लोक-मन्त्रों और धार्मिक-कृत्यों में श्रीकृष्ण बैकुण्ठ-प्रदायक देव का स्थान पाते हैं।

4. किन्हीं वर्गों में श्रीकृष्ण की प्रतिष्ठा प्रेम के सर्वोच्च प्रतिमान के रूप में की गई दिखाई पड़ती है।

संदर्भ—

1. ''अङा! एक अङ/तेरे कपड़े रंगा।
कन्हेइए दी चोल्ली/वी खेढै भैन गोल्ली।''

2. ''मैं ढूंडां बृज दियां गलियां, जै बौंसरी वाले गी
हत्थै बिच करनी, फुल्लें कन्ने भरनी-
मैं हार चढ़ाने गी चली आं, जै बौंसरी वाली जी।''

—डोगरी लोकगीत : भाग–3; पृ. 54

3. ''तेरा भेत कुसै निं पाया, भगवान बौंसरी वाले।
मेलें च तुप्पेआ, बनजारें गीत पुच्छेआ।
सुआसें च छप्पी रेह् भगवान, बौंसरी वाले।
तेरा भेत कुसै निं पाया, भगवान बौंसरी वाले।''

4. ''होली पूरबी पेई, न्हौन चली जमना। न्हाई–धाई बैठी चौकी/दान करै हत्थै दा कंगना।

—डोगरी लोकगीत; भाग–12 पृ. 19

5. ''कुन्न जम्मेआ, कुन्न जम्मेआ, कुन्न जम्मेआ कान्हा? कुन्न लेआ गोदी पाल? कुन्न जम्मेआ? देवकी जम्मेआ, देवकी जम्मेआ, देवकी जम्मेआ राधे। जशोदा लेआ गोदी पाल, देवकी जम्मेआ।''

6. ''काले जे नाग ने फुंकारा मारेआ, काले नाग ने, काले नाग ने फुंकारा मारेआ।
ऐ गोरा–रंग शाम होई गेआ, कृष्णा–कृष्णा। तेरे बिन नेईं मिटदी साढ़ी तृष्णा।''

7. ''ना घर लौंग–लखिया, न घर मोह्रें दे हार, सक्खनी कन्या असें ब्याही बो देनी।
सक्खनी कन्या असें ले बो जानी।

—डोगरी लोकगीत; भाग–4, पृ. 120

8. ''जि यां तारेआं दे बिच्च चन्न, चन्ना बि काह्न – नेहा कनेहिया

वर लोड़िए।'' —डोगरी लोकवार्ता : सरूप ते विश्लेषण, पृ. 96

9. ''नशे दिए बंद बोतले, बिच्च लाचीदाना ई। तुस खेलो शाम जी, असें नस्सी जाना ई।''
   नेश दिए बंद बोलते, बिच्च लाचीदाना ई। तुस खेलो शाम जी, असें नस्सी जाना ई।''
10. ''जिस घ्याड़ै मेरा हरिहर जम्मेआ।''
11. डोगरी लोकगीत; भाग 1, पृ. 1

●●

बुन्देली लोकगीतों में श्रीकृष्ण जन्मोत्सव

❀ डॉ० हरिमोहन पुरवार

भगवान श्रीविष्णु के चौबीस अवतारों में श्रीकृष्ण ऐसा अवतार है, जिसमें श्रीकृष्ण सम्पूर्ण कलाओं से युक्त हैं। अन्य अवतार श्रीविष्णु के अंशावतार कहे जाते हैं जबकि श्रीकृष्ण अवतार पूर्ण माना जाता है। दुष्टों का दमन, अत्याचारों का मर्दन तथा धर्म की स्थापना ही इन अवतारों का प्रमुख उद्देश्य होता है। द्वापर में जब कंस का अत्याचार, अनाचार आदि सीमा से अधिक बढ़ गया तो देवताओं की प्रार्थना पर श्रीविष्णु का कृष्ण अवतार के रूप में प्राकट्य हुआ।

देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुणाश्रयः।
आविरासीद् यथा प्राच्यां दिशीन्दुखि पुष्कलः॥1॥

अर्थात् सबके हृदय में विराजमान भगवान विष्णु देवरूपिणी देवकी के गर्भ से प्रकट हुये, जैसे पूर्व में सोलहों कलाओं से पूर्ण चन्द्रमा का उदय हो गया हो।

मथुरा के महाराज कंस को आकाशवाणी द्वारा ज्ञात हो गया कि उनकी बहिन देवकी के आठवें पुत्र द्वारा उनकी मृत्यु होगी अतः जब श्रीकृष्ण ने जन्म लिया तब उनकी माता देवकी एवं पिता वसुदेव दोनों ही कंस के कारागार में बन्दी थे। भाद्रमास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि को रोहिणी नक्षत्र में जब घनघोर अन्धकार छाया हुआ था, तेज बारिश हो रही थी, बिजली चमककर हृदयबेधी शब्द कर रही थी, तभी लीलाधारी भगवान श्रीकृष्ण का अवतरण हुआ।

मथुरा की सीमा के निकट ही बुन्देलखण्ड की सीमा है। अतः मथुरा में होने वाले क्रिया कलापों का सीधा प्रभाव बुन्देलखण्ड

पर भी पड़ता है। मथुरा में श्रीविष्णु स्वयं श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट हुए तो इस महान घटना से बुन्देलखण्ड कैसे अनभिज्ञ रहता। यहाँ का लोकमानस भी श्रीकृष्ण जन्म के विषय में कहने लगा।

रात अंधियारी, चमके बिजुरिया, पानी घन घन होत।
भादौं बदी अष्टमी खों दिन, हवा सन सन सन्नात।
नक्षत्र रोहिनी जैसेई आयो, कंस जेल उजियार होत।
प्रगटे विस्नु चतुर्भुजधारी, वसुदेव जी खौं हर्स होत।
रूपधरो बालक की नांई, ऊं ऊं करके रोत।
आये किसन कनईया देखौ, सब सखियाँ बलैयाँ लेत॥2॥

इधर मथुरा में श्रीकृष्ण ने जन्म लिया उधर ब्रज में महामाया ने जन्म लिया। वसुदेव जी ने एक सूप में श्रीकृष्ण जी को लेकर कारागार से जब ब्रज में जाने का मन बनाया तो कारागार के सभी प्रहरी नींद में सो गये। फाटकों के ताले अपने आप खुल गये। वसुदेव जी की बेड़ियाँ स्वत: टूट गयीं और वसुदेव जी सूप में श्रीकृष्ण को लिटाकर बगैर किसी बाधा के ब्रज की ओर चल दिये। रास्ते में यमुना नदी थी। यमुना भी अपने स्वामी के पग प्रच्छालन हेतु हिलोरें लेने लगी और जब श्रीकृष्ण ने अपने अंगूठे से यमुना का स्पर्श किया तो यमुना भी शान्त हो गयी। वसुदेव जी नन्द बाबा के घर गये। यहाँ भी सभी योगमाया की माया के वशीभूत प्रगाढ़ निद्रा में थे। वसुदेव जी ने यशोदा के यहाँ श्रीकृष्ण को लिटा दिया और उनके यहाँ जन्मी योगमाया कन्या को उठाकर वापिस मथुरा आ गये। उनकी बेड़ियाँ स्वत: लग गयीं। जेल के फाटक बन्द हो गये, ताले लग गये। प्रहरी गण पुन: पूरी सतर्कता के साथ पहरा देने लगे। इधर गोकुल में शोर हो गया कि जसोदा रानी के पुत्र पैदा हुआ है। बुन्देली जनमानस को कन्या बदलने की जानकारी थी। अत: पुत्र के बदले कन्या के जाने की उल्टी रीत के विषय में यहाँ गीत गाया जाता है—

उल्टी रीत भई गोकल में कन्या दे गोपाल लये।
कौना जाये कौना खिलाये, कौना के लाल कहाये।
देवकी ने जाये, जसोदा खिलाये, नन्द के लाल कहाये।
काहे के छुरा नरा छीनियो, रूप खपर असनान।
सुन्ने छुरा नरा छीनियो, रूपे खपर असनान।
काहे के सूप संजोयो काहे के आखत डार दिये।
उरहई के सूप संजोइयो, मुतियन आखत डार गये॥3॥

परमप्रभु परमेश्वर श्रीहरि विष्णु की योगमाया के कारण बच्चों की अदला-बदली हो गई और किसी को कुछ पता नहीं चला। यहाँ तक कि माता यशोदा को भी ज्ञात नहीं हुआ कि उनके यहाँ कन्या जन्मी थी अब ये पुत्र कहाँ से आ गया? उन्हें तो बस लगा कि नन्दलाल आ गये हैं और वे कहने लगीं—

मोरे डरे, डरे कहरांय, गोविन्दलाल भौं में डरे।
मोरे डरे, डरे कहरांय, गोपाल लाल भौं में डरे।
जाये जो कैयो राजा ससुर से थैली देंय लुटाय।
गोविन्दलाल भौं में डरे।
जाये जो कैयो रानी सास से, चरुवा देंय चढ़ाय
गोविन्दलाल भौं में डरे॥4॥

प्रात:कल पूरे गोकुल में शोर हो गया कि यशोदा रानी ने पुत्र को जन्म दिया है। बस फिर क्या था बधाईयाँ बजने लगीं। लेकिन धीरे-धीरे सुनगुन भी हो रही थी कि ये कैसा चमत्कार हुआ कि यशोदा ने पुत्री को जन्म दिया और फिर वह पुत्र कैसे हो गया। यशोदा रानी ने खुद ही नन्द बाबा से कह दिया कि मैंने तो नन्दलाल को जन्म दिया, पुत्री के विषय में आप स्वयं जानें—

भोर भये भुनसारे ललन प्यारे हो गये महाराज।
धीरे-धीरे बाजैं बधैया, धीरे सखी और सोहर महाराज।

जै सुन पैहै ननदिया, हार मोरे लै लैहे महाराज।
भोर भये भुनसारे ननदबाई आ गई महाराज।
कैसे बाजैं धीरी बधैयाँ, कैसे धीरे सोहरे महाराज।
भौजी के जनमें नन्दलाल कै घियारी महाराज।
वैया हम जनमें नन्दलाल, घिया तुम जानो महाराज॥5॥

यशोदा रानी ने पुत्र को जन्म दिया है। यह समाचार पूरे गोकुल में फैल गया। पूरे ब्रजमण्डल में सभी घरों में सफाई लिपाई हो गयी। उनमें सुन्दर जल का छिड़काव हो गया। वन्दनवारों से द्वार सजा दिए गये। पूरे ब्रज में उत्सव का सा वातावरण हो गया।

ब्रजः सम्मृष्टसं सिक्त द्वाराजिरगृहान्तरः।
चित्र ध्वजा पताका स्त्रकचैल पल्लवतोरणैः॥

ब्रजमण्डल के सभी घरों के द्वार, आंगन और भीतरी भाग झाड़ बुहार दिये गये, उनमें सुगन्धित जल का छिड़काव किया गया। उन्हें चित्र विचित्र ध्वजा पताका, पुष्पों की मालाओं, रंग-बिरंगे वस्त्र और पल्लवों की बन्दनवारों से सजाया गया।

पूरे ब्रज में चारों ओर आनन्द ही आनन्द है। एक गोपी को न जाने कैसे पता चल गया कि श्रीकृष्ण कन्हाई का जन्म तो मथुरा के कारागार में हुआ था। उस समय सभी पहरेदार निद्रा में थे। तब वसुदेव जी श्रीकृष्ण को लेकर यमुना पार करने के लिए यमुना में उतरे थे यमुना ने श्रीकृष्ण जी के पैर छू लिये। वह गोपिका इन सब तथ्यों को अपने पेट में पचा नहीं पायीं और गाने लगीं—

आली ब्रज में महाराज भये।
सखी ब्रज में गोपाल भये।
जब हरि जनम लये मथुरा में,
जगत पहरूवा सोय रहे।

लै वसुदेव चले गोकल खों
झपट के जमना मैया चरन गहे॥7॥

उस गोपी का यह गायन किसी तरह से यशोदा रानी के कान में भी पड़ा, परन्तु उन्होंने इसकी परवाह नहीं की। उनका अपना विश्वास था कि उन्होंने तो नन्द के पुत्र को जन्म दिया है। इसलिए वे तो पुत्र प्राप्त कर मगन थी। मन प्रफुल्लित था। वे कह रही थीं—

मोरे नन्द भये अनंद बंधाओरी,
मोरे नन्द भये अनंद बंधाओरी मोरे नन्द भये।
गउवा के गोबर मंगाओ जशोदा रानी,
ढिग घर अंगना लिपाओं, मोरे नन्द भये।
मुतियन चौक पुराओ जसोदा रानी, मोरे नन्द भये,
चंदन पटली धराओ, मोरे नन्द भये।
रानी जसोदा रानी चौके आई,
हीरालाल लुटाओ री, मोरे नन्द भये।
लोपन फेर धराओ जशोदा रानी,
सखियन मंगल गाओ री, मोरे नन्द भये॥8॥

हर्ष और आनन्द के सागर में पूरा ब्रज गोते लगा रहा है। जच्चा और बच्चा दोनों स्वस्थ हैं। माँ ने भी अब घर के और दूसरे काम-काज करना प्रारम्भ कर दिया है। अब गोपाल को कनियाँ में न लेकर उन्होंने झूले में लिटा दिया है। यशोदा रानी किसी काम में ऐसी व्यस्त हो गई कि उन्हें कृष्ण की सुध ही नहीं रही। तभी कृष्ण रोने लगे। कोई गोपी वहाँ से जा रही थी। उसने कृष्ण का रुदन सुना तो कहने लगी—

झुला दे मैया श्याम परे पलना,
काहू गुजरिया की नजर लगी है।
सो रोऊत है ललना,
झुला दे मैया श्याम परे पलना।

राई नौन उतारो जसोदा, खुसी भये ललना,
जो मोरे ललना को पलना झुलैहै,
ताहे देहौं जड़ाऊ कंकना।
झुला दे मैया श्याम परे पलना॥9॥

गोपी की बात पर यशोदा रानी का कोई ध्यान नहीं गया। तो वह गोपी स्वयं पालने में पड़े श्रीकृष्ण को झुलाने लगी। इधर यशोदा माता को पुत्र की याद आयी तो दौड़ती पालने के पास आयी। देखा कि सखी पालने में पड़े गोपाल को झुला रही है और बड़े ध्यान से मनमोहन की मोहनी सूरत देख रही है। उसका ध्यान भंग करते हुए यशोदा रानी कहती है—

मनमोहन उदक नें जांय री
मनमोहन उदक नें जांय री हमारे, धीरे झुलाओं सखि पालने
काहे को पलना बनो है, काहे के बने है बुनाव हमारे
चंदन के पलना बने है, रेसम के बने है बुनाव, हमारे
सबरे बिरज की सखियां जुर आयी, घाय लयेरी पालना हमारे
जो मोरे ललना खौं पलना झुलै है देहौं जड़ाऊ कंकना, हमारो॥10॥

सायं बेला थी। मनमोहन झूला झूलते हुए सो गये। रात बीत गयी सबेरा हो गया। यशोदा रानी गोपाल के पास जाती हैं। उन्हें नींद से जगाते हुए कहती हैं कि उठो लाल सबेरा हो गया है। कुल्ला कर लो। इस पूरे दृश्य का सुन्दर चित्रण निम्नवत् करते हुए बुन्देलखण्ड में गाया जाता है।

उठो मोरे हरजू भये भुनसारे गईयन के बन्द खोलो सवारे,
उठो मोरे हरजू दातुन कर लो, दातुन करो मोरे कुंज बिहारी।
काये के दातुन काये को गडुवा, काये को जल भरल्याई जसोदा,
झारे के दातुन सोने को गडुवा, जमुना को जल भरल्याई जसोदा।11।

इधर कन्हैया उठकर दातुन आदि करके निवृत्त हो रहे हैं, उधर यशोदा मैया अपने नन्दलाल के लिए कचरी, पापड़, सेब आदि

भाँति-भाँति के व्यंजन बना रही हैं। उसका लाल आयेगा। सुन्दर-सुन्दर पकवान खायेगा और यशोदा मैया अपने हाथों से अपने लाला को भोजन करती हैं।

धर्म सिला पर बैठी जसोदा, अपने कनइया खौ रंचती कलेवा
कच्चर, पापर, सेव, सिंगार, मालपुवा मनमोहन प्यारे
इंजन बिंजन सरस निगौना, बेसन के दस बीसक दौना
जैवें कृष्ण जुआवे जसोदा, बाब-ढुरैं प्यारी रुक्मिन राधा ॥ 12 ॥

भगवान श्रीकृष्ण का जन्म इस प्रकार से ब्रज में हुआ। पूरा ब्रज धाम उत्सव के रंग में रंग गया है। सब ओर आनन्द है। सभी पुरवासी हर्ष और उल्लास से भरे हुए हैं। चारों ओर 'बधाई हो' का शोर गूँज रहा है। मन को मोहने वाली बधाईयों का ताँता लगा है।

मन हरन बधाई बाजै।
मन हरन बधाई बाजै, भूप भवन सुख साजें।
सरस राग बजे सहनाई, नौवत घन मन लाजे।
सुवरन सींक सवार संतिया, नृप दरवाजे भ्राजे।
तोरन धुजा बँधे चहुँ ओरन, रतन लुप्त जनु लाजें।
मांगध बन्दीजन बहुनिधि, मन भावत छवि छाजे।
बरसगांठ मनहरन लाल की, भक्ति जनन सुख काजे।
मन हरन बधाई बाजै ॥ 13 ॥

आज श्रीकृष्ण जन्मोत्सव की यह आनन्द रस बरसाने वाली परम्परा समूचे देश में ही नहीं वरन् विदेशों में बसे भारतीयों के मन में भी हर्ष और प्रेम की पवित्र गंगा बहा रही है। सब ओर केवल एक ही धुन सुनाई पड़ रही है।

नन्द के आनन्द भयो, जै कन्हैया लाल की,
हाथी दीनी, घोड़ा दीनी और दीनी पालकी।
नन्द के आनन्द भयो, जै कन्हैया लाल की ॥

संदर्भ :—

1. श्रीमद्भागवत, दशम स्कन्ध तृतीय अध्याय श्लोक सं. 8
2. लोक गीत संग्रह, भाग 4 बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई
3. बुन्देली लोक गीत, शिवसहाय चतुर्वेदी, पृ. सं. 65
4. बुन्देली लोक गीत, शिवसहाय चतुर्वेदी, पृ. सं. 62
5. बुन्देली लोक गीत, शिवसहाय चतुर्वेदी पृ. सं. 47
6. श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध, श्लोक सं. 06
7. बुन्देली लोक गीत, शिवसहाय चतुर्वेदी, पृ. सं. 64
8. बुन्देली लोक काव्य, प्रथम - डॉ० बलभद्र तिवारी पृ. सं. 26
9. बुन्देली लोक गीत, शिवसहाय चतुर्वेदी पृ. सं. 72
10. बुन्देली लोक काव्य, प्रथम - डॉ० बलभद्र तिवारी, पृ. सं. 31
11. बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य, रामचरण, हयारण मित्र पृ. सं. 326
12. बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य, रामचरण, हयारण मित्र पृ. सं. 326
13. बुन्देली लोक काव्य, प्रथम - डॉ० बलभद्र तिवारी, पृ. सं. 24

संदर्भ :—

1. श्रीमद्भागवत, दशम स्कन्ध तृतीय अध्याय श्लोक सं. 8
2. लोक गीत संग्रह, भाग 4 बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई
3. बुन्देली लोक गीत, शिवसहाय चतुर्वेदी, पृ. सं. 65
4. बुन्देली लोक गीत, शिवसहाय चतुर्वेदी, पृ. सं. 62
5. बुन्देली लोक गीत, शिवसहाय चतुर्वेदी पृ. सं. 47
6. श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध, श्लोक सं. 06
7. बुन्देली लोक गीत, शिवसहाय चतुर्वेदी, पृ. सं. 64
8. बुन्देली लोक काव्य, प्रथम – डॉ० बलभद्र तिवारी पृ. सं. 26
9. बुन्देली लोक गीत, शिवसहाय चतुर्वेदी पृ. सं. 72
10. बुन्देली लोक काव्य, प्रथम – डॉ० बलभद्र तिवारी, पृ. सं. 31
11. बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य, रामचरण, हयारण मित्र पृ. सं. 326
12. बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य, रामचरण, हयारण मित्र पृ. सं. 326
13. बुन्देली लोक काव्य, प्रथम – डॉ० बलभद्र तिवारी, पृ. सं. 24

ब्रज लोकगीतों में श्रीकृष्ण

❀ डॉ० मालती शर्मा

भारतीय लोक परम्परा, इतिहास, धर्म, दर्शन कला, न केवल एक कला अपितु 64 कलाओं में, भारतीय संस्कृति के प्रत्येक आयाम में, श्रीकृष्ण एक मिथकीय चरित्र हैं। वे देवीय और मानवीय गुणों, अवगुणों का सहज, अभूतपूर्व और अद्‌भुत मिश्रण हैं।

प्रेम का तो रंग ही 'श्याम रंग' है। कृष्ण और राधा यदि प्रेमी प्रेमिका के आदर्श हैं तो कृष्ण रुक्मिणी दाम्पत्य के। भारतीय आध्यात्म दर्शन का तत्त्व चिन्तन योगी योगेश्वर श्रीकृष्ण के मुख से महाभारत के युद्धस्थल कुरुक्षेत्र में भगवद्‌गीता के रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

ब्रज और ब्रज संस्कृति का तो कण-कण ही श्रीकृष्णमय है। यहाँ के सारे-नामों धामों और कामों श्रीकृष्ण व्याप्त हैं। यहाँ जय श्रीकृष्ण 'राधेकृष्ण का अभिवादन' हैं तो 'बोल कन्हैयालाल की जै' का जयकारा है, राधेकृष्ण का सुमिरन हैं तो गोपाल सहस्रनाम जय के साथ एक-एक नाम को चरितार्थ करते कीर्तन हैं—

जय माधव मदन मुरारी राधेश्याम श्याम श्याम।
जय केशव कलिमल हारी राधे श्याम श्याम श्याम॥
अर्जुन को रथ सँकन हारे, गीता के उपदेश तुम्हारे।
चक्र सुदर्शनधारी, राधेश्याम श्याम श्यामा श्याम॥
द्रुपद सुता दुष्टों ने घेरी, राखी लाज करी ना देरी।
आकर चीर बढ़ाये, राधेश्याम श्यामा श्याम॥

ब्रज के लोकगीत साहित्य का आधे से कहीं अधिक, एक

तिहाई भाग श्रीकृष्णमय है। यहाँ के लोकगीतों की प्रत्येक विधा में, श्रीकृष्ण के चरित्र के विविध रूपों का पल्लवन है। सोहर, मंगल, नेगचार के गीत, बन्ना, घोड़ी, बधाये, होली, रसिया, चक्की के गीत, सावन के गीत, मल्हार बारहमासी खेल के नाच के गीत में, भजन कीर्तनों में 16 कलाधारी श्रीकृष्ण के चरित्र की उनसे जुड़े विविध पौराणिक और लोक आख्यानों की 16 कलाएँ खिल रही हैं।

ब्रज के सोहर गीतों में हर ब्रजवासी का बालक "कन्हैया" रूप में जन्मता है। सूरदासजी की यशोदा तो "हरि" को पालने में सुलाती हैं पर ब्रज के पालना गीतों में गोपाललाल 'कन्हैया' नंदलाला, पालने में झूलते हैं—

अरी कन्हैया झूलें पालना नेंक हौलें झोटा दी जो।
काये कौ जाकौ बन्यो पालना अरी काये के लागे फुँदना।
अगर चंदन कौ बन्यौ री पालना, रेसम के लागे फुँदना॥

ब्रज की खटीकनी नंदलाला के लिए पालना लाती है और नन्द बाबा से एक लाख के पालने का सवा लाख मोल पाती है—

पालनो लेउ ओ नंदरानी।
कै लाख पालने को मोलु खटीकनी।
कै लाख नंद बाबा पेंइ, पालनो॥
एक लाख पालने को मोलु नंदरानी।
सवा लाख नंद बाबा पेंइ, पालने॥

और कृष्ण कन्हैया का यह पालना ब्रज की हर माँ के मदन गोपाललाल का पालना बन जाता है, जिसमें उसका मदन गोपाललाल पालना झूलता है—

मेरा मदनगोपाललाल झूले पलना।
तेरे बाबा ने गढ़ाया चंदन का पलना।

दादीरानी झुलामें तुम झूलो ललना मेरा ॥

कृष्ण का कंस के कारागृह में देवकी की कोख से जन्म और गोकुल में माता यशोदा का उनका अपने पुत्र के रूप में पालन पोषण, बाद में इस अदला-बदली के रहस्य का उद्‌घाटन कृष्ण चरित्र की विश्व इतिहास में अकेली घटना है। ब्रज के सोहर गीतों में इस प्रसंग को लोक की मनोभूमि मिली है। यमुना के एक तट पर उदास मन देवकी दूसरे पर यशोदा खड़ी हैं। यशोदा देवकी से उसके दु:ख का कारण पूछती हैं तो देवकी अपने सात पुत्रों के कंस द्वारा मार डालने और आठवें गर्भ में पल रहे बच्चे के भी मारे जाने की चिन्ता व्यक्त करती हैं तो यशोदा पुत्र होने पर गोकुल भेजकर रक्षा का आश्वासन देती है, गीत कृष्ण जन्म और उनके गोकुल ले जाने की पूरी कथा कहता है—

कालिन्दी के सुघर घाट पै ठाड़ी देवकी रोस भरी री।
उल्ली पार देवकी ठाड़ी पल्ली पार जसोदा खड़ी री ॥
कै दुख भैना तोइ सास सुसर को।
कै तेरे पति परदेस गये री ॥
नाँय दुख मोय मैना सास ससुर को।
ना मेरे पति परदेस गये री ॥
सात पुत्र तौ कंस ने मारे आठयो गर्भ में लिये खड़ी री।
जो तेरे भैना होंय नंदलाला गोकुल देउ पहुँचाय सखी री ॥
भरि भादों की रैन अँधेरी।
कृष्ण ने मथुरा में जनम लियौ री ॥
खुलि गईं बेड़ी हाथ हथकड़ी खुलि गये बजुर किवाड़ जड़े री।
कृष्ण कूँ लैकें चले वसुदेवा जमुना गई पाताल धँसी री ॥

एक अन्य सोहर गीत में देवकी कोख से जन्मे कृष्ण की

यशोदा के माता बनने का प्रसंग भी आता है—

भये देवकी के लाल जसोदा जच्चा बनी।
सारे गोकुल में बजने बधाई लगी।

कृष्ण के जन्म पर ''नंद जू की पौर'' पर बधाई लेने आई मालिन तमोलिन इत्यादि कामवालों के बधाई लाने और नंदरानी से मनचाही वस्तु बधाई में पाने की कामना बधाये गीतों में अभिव्यक्त हुई है। ब्रजराज के घर की बधाई पूरे ब्रज में बजती है। मालिन पटवारिन कृष्ण जन्म की बधाई में अलग-अलग वस्तुएँ लाती हैं। कोई एक बधाई में नंद बाबा से पाने वाली चीजों की सूची ही मन ही मन बना डालती है—,

गोकुल नगरिया जाऊँगी नंदरानी ते बधाई लैकें आऊँगी।
बाबा नंद खिरक में ठाड़े मदनी गैया लाऊँगी।।
बाबा नंद बजाज के ठाड़े सुरख चुनरिया लाऊँगी।
बाबा नंद मनियार के ठाड़े चुरियनु बाँह भराऊँगी।।

जन्म की बधाईयों की धूमधाम में श्रीकृष्ण नंद के लाल बड़े होते हैं तो एक सामान्य बालक की तरह माटी खाते हैं। एक गोपी उन्हें पकड़ती है यशोदा से कहती है—

यसोदा तेरे लाला ने माटी खाई।

ये कृष्ण कन्हैया थोड़ा और बड़ा होने पर गेंद बल्ला लेकर कालीदह पर खेलने जाते हैं—

कारीदेह पै खेलन आयो री मेरौ बारो सौ कन्हैया।
काये की पट गेंद बनाई अरी काये कौ बल्ला लायौ री।।
रेसम की पट गेंद बनाई अरी चंदन कौ बल्ला लायौ री।
मार्‌यौ टोल गेंद गई देह में गेंद के संगई धायौ री।।

थोड़ा और बड़ा होने पर श्रीकृष्ण वन में गाय चराने जाते हैं।

किशोर/युवा श्रीकृष्ण गूजरों, अहीरों के आदर्श ग्वाल हैं। गिर गोवर्धन-धारी, गोपाल कृष्ण का यह आदर्श गोपालक रूप गोवर्धन पूजा के एक गीत में आता है। एक गोपी दूसरी गोपी से कहती है कि यदि तुझे अपने दूध की, गायों की अच्छी सार संभाल की जरूरत है तो तू कान्हा को अपना ग्वाला बना ले—

जो तोय दूध की सार रे गुजरिया।
तो लरि लै कान्हा ग्यार रे गुजरिया।
छलकति आवै धोनी रे गुजरिया॥
तो झलकतु आवै झाग रे गुजरिया।
री मटकतु आवै ग्वार रे गुजरिया॥

आगे चलकर तो कहीं-कहीं स्थिति यह हो जाती है कि बिना मुरली की धुन सुने गायें दूध ही नहीं देतीं। एक गोपी यशोदा से प्रार्थना करती है कि बिना तेरे गोपाल के मेरी गाय का दूध कौन निकालेगा—

बिना गोपाल दुहैगौ कौन गइया बिन गोपाल।
ज्यौं लौं टेर सुने ना मुरली की॥
त्यौं लौं दूध न दुहावै मेरी गइया बिन गोपाल।
नहीं जल पिए खाइ नहीं चारौ॥
साँची कैंहति मैं तुम सों मइया बिन गोपाल।
मन मुस्काय जसोदारानी बोलीं॥
जाउ लाल दुहि आवौ जाकी गइया बिन गोपाल॥

किशोर/युवा कृष्ण की शरारतें, दधि माखन की चोरी, गोपियों से छेड़खानी, मटकी फोड़ना, चीरहरण जैसे उत्पात बढ़ते जाते हैं। कृष्ण का परिचय राधा से होता है। ब्याह सगाई की बात चलती है। इस प्रसंग के लोकगीतों में लोक मनोभूमि के रंग हैं। लोक

जीवन में जब किसी की ब्याह सगाई तय होती है तो दोनों पक्षों के बारे में समाज में कुछ–कुछ कही जाती हैं, चर्चाएँ होती हैं। कुछ काम बिगाड़ू लोग भाँजी मार देते हैं तो रिश्ता टूट भी जाता है। कृष्ण के प्रति राधा का झुकाव देख उनकी माँ कहती हैं– भला कैसे ब्याह कर दूँ? तेरा कन्हैया तो काला है–

अरी कैसे ब्याहूँ राधा कन्हैया तेरौ कारौ कैसे।
गाय चरामतु बन बन डोलै कारी कामरि कारौ॥
मेरी राधा स्याम सुन्दरी।
देखत में जैसें चन्दा कौ उजारौ, अरी॥
कारौ कारौ मति कहै ग्वालिन मेरौ जगत उजारौ।
नाग नाचि रेती में डार्यौ।
मारी फुसकार बदन भयौ कारौ कैसे॥

यों कृष्ण को राधा के अनुपयुक्त बताया जाता है तो उधर कृष्ण को दधि माखन की चोरी छोड़ने की बदनामी से बचने की सलाह मिलती है कि अब तुम छोटे नहीं रहे, तेरी सगाई हो रही है, सुधर जाओ, वर्ना वह राजदुलारी नाम रखेगी–

दधि माखन की चोरी छोड़ि साँवरे मैं समुझाऊँ तोय।
बरसाने तेरी भइऐ सगाई नित उठि चरचा होय।
बड़े घरन की राजदुलारी नाम धरेगी तोय॥

लड़की के विवाह में गाये जाते "राधा का मंगल गीत" कृष्ण के साथ खेलने आईं राधिका की नंदरानी के द्वारा उनकी गोद भरने की रीति का गीत है और काफी बड़ा है।

कृष्ण और रुक्मिणी का विवाह साहित्य और लोक दोनों का अहम विषय है। मंगल बेलि हरण स्वयंवर के नामों से कवियों ने कृष्ण और रुक्मिणी के विवाह काव्य रचे हैं। इन काव्यों में श्रीकृष्ण

का सभी रक्षक वीर योद्धा रूप है और उस युग में राजपुत्रियों के विवाह में आन-बान-शान को लेकर होते युद्ध और अपहरण की घटना है। कृष्ण की पटरानी रुक्मिणी विवाह पर लोक कवियों ने ''रुक्मिणी मंगल'' रचे और महिलाओं ने ''धामनकार ब्याहुला'' जो लड़की की लग्न लिखने समय गाया जाता है। चतुर्भुजदास रचित 'रुक्मिणी मंगल' में यदि कथा तत्त्व प्रधान है तो 'धामनकार ब्याहुला' नाई और ब्राह्मण के हाथों श्रीकृष्ण को रुक्मिणी की पाती भेजकर, लोक रीतियों के वर्णन को विस्तार देता है—

ए हरि पूरि धामनकर पठऊँ द्वारिका कूँ जाय।
नाऊ के ऐ पठऊँ ना नड्डु आना जइए कमनाकौ कोस पचास॥

श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह के अन्य बन्नी गीतों में घर के मतभेदों में फँसे विवाद के होने की चिन्ता है—

कैसे होइगो रुक्मिनी कौ ब्याहु जुरैगे जामें दल भारी।
रानी और राजा बतराने लीन्हे रुकम बुलाय॥
वा सिरी कृष्ण द्वारिका वारेकूँ भेजो लगुन लिखाय।
नाम क्रिसन को सुन्यौ रुकम ने मन में गयौ खिसियाय॥
लाल नेत्र करि टेढ़ी भौंहें बोल्यौ रुकम रिसियाय।
तुम्हारी मति किन्ने रे हरी।
अरे राजा ऐ सिसुपाल चंदेरी को जानत हैं सब कोय॥
वाकूँ लगनु लिखाय पठाओ सोभा जग में होय।
चढ़ैगी तुम्हें अच्छी रे सिरी॥

विवाह के बन्ना और घोड़ी गीतों में घोड़ी पर सवार हर बन्ने की रंगीली घोड़ी श्रीकृष्ण की तरह कुंडनपुर जाती है और उस पर सवार मोर मुकुट चंद्रकला वाला सजा-धजा बन्ना नंद का लाला, घनस्याम है, श्याम है।

विवाह के स्त्रियों के गाली गीत अश्लील हैं। कोई भी गाली अनुचित सम्बन्धों का बखान करती है। श्रीकृष्ण के चरित्र से जुड़े उनकी बुआ कुन्ती और बहन सुभद्रा का आचरण दागदार है। लोक कवि घासीराम का गारी गीत विधा में रचित यह गारी गीत ब्रज में शिष्ट समाज में गाया जाता गाली गीत है—

तुम सुनो कृष्ण बलराम हमारी गारी प्रेम भरी।

x x x

बुआ तुम्हारी कुन्ती कहिएँ कहिएँ रूप अपार।
क्वारी ने तौ लाला जायौ निकली ऐ सौति छिनार॥
हमारी गारी प्रेम भरी।
भैना तुम्हारी सहोद्रा कहिएँ कहिएँ रूप अपार।
क्वारी अर्जुन संग सिधारी निकली सौति छिनार॥
हमारी गारी प्रेम भरी॥

पर विवाह के नेगचार के गीतों में तेल चढ़ने के बाद सुबह गीतों में गाया जाने वाला है ''दाँतुन'' गीत श्रीकृष्ण के चरित्र का एक सर्वथा अछूता पक्ष प्रस्तुत करता है। यह गीत माँ और स्त्री के बीच मनमुटाव में माँ और स्त्री की भावनाओं और मान के बीच संतुलन स्थापित करता हुआ श्रीकृष्ण का एक जिम्मेदार गृहस्थ रूप प्रस्तुत करता है। 'दाँतुन' हमारे सामान्य घरों में अहं और उपेक्षा की टकराहट से घर में आये उदास वातावरण का मर्मस्पर्शी चित्र है। इसमें गृहस्थ के जीवन मूल्य भी हैं, जिनके रक्षक श्रीकृष्ण हैं। गीत पर्याप्त लम्बा है और सभी का परिचित भी, अत: यहाँ प्रारम्भ और अंत ही—

ए हरि जू भोर भयौ सुखसार माय जसोदा ने दाँतुन माँगिए।
ए हरि जू बोल दये दस पाँच गरब गहीलीने अतर ना दियो॥

x x x

एक रुक्मिनि मेरौ जियराए एक मान जो राख्यौ।

जसोदा माय को।

सावन के मल्हार गीतों में राधाकृष्ण के गोप गोपियों के साथ वन में झूला झूलते आमोद के वर्षा के वैभव के चित्र हैं। यमुना के तट पर झूला झूलते कन्हैया के मुकुट को देखकर गोपियाँ हर्षोत्सुक हैं—

देखौ री मुकट झोका रह्यौ।
लै रह्यौ जमुना के तीर॥
देखौ री कन्हैया झोका लै रह्यौ॥

बारहमासी गीतों में 'कुब्जा की बारहमासी' में उनके राधा और गोपियों को छोड़कर कुब्जा को अपनाने का दुःख है तो 'बेनी माधो' की बारहमासी राधा को छोड़कर मथुरा गये कृष्ण विरह में बारह माहों में राधा की व्यथा कथा है। लावनी विधा में एक ही गीत मिलता है जो द्रौपदी के चीर हरण और श्रीकृष्ण के चीर बढ़ाकर उसकी लज्जा की रक्षा की बात करता है—

बिन काज आज महाराज लाज गई मेरी।
दुख हरो द्वारिकानाथ शरण मैं तेरी।
दुःशासन वंश कुठार महादुखदाई॥
कर पकरत मेरो चीर लाज नहीं आई।
अब भयो धरम को नास पाप रह्यो छाई॥
लखि अधम सभा की ओर नारि बिलखाई।
सकुनी दुर्योधन कर्ण खड़े खल घेरी, दुख हरो...... ॥

श्रीकृष्ण का ब्रज छोड़कर मथुरा जा बसना ब्रज लोकगीतों में एक कसता नासूर है। अनेकानेक लोकगीत गोप गोपियाँ नंद यशोदा और राधा की इस बिछोह पीड़ा से भरे हैं। चक्की के गीत तो बहुत हैं 'लेकिन हरि मथुरा जाइ बसे' चक्की के गीतों की प्रिय टेक है—

राधा उठिए सबेरौ है गयौ......... ।
हरि मथुरा जाय बसे ।।

कृष्ण की माखन चोरी, गोपियों से छेड़खानी, रासलीला, दानलीला और बाल लीलाओं के अत्यधिक प्रसंग खेल के, नाच के, होली, भजन और रसिया गीतों में प्राप्त होते हैं। श्रीकृष्ण का भक्तवत्सल रूप भजनों में निखरा है। इन सारे गीतों का ओर-छोर खोजना और इनमें से खाँटी लोकगीत अलग करना आसान नहीं; क्योंकि इनमें कवियों और लोक कवियों के गीत भी चलन में आकर लोकगीतों के साथ मिल गये हैं। कुछ गीत जैसे चंदसखी के भज बालकृष्ण छवि की छाप से पहचाने जा सकते हैं पर अधिसंख्य की पहचान सहज नहीं है। यहाँ कुछ अति प्रचलित गीतों की टेक दे रही हूँ—

१. **इकिली घेरी बन में आय स्याम तैनें कैसी ठानी रे।**
२. **बंसी वारे ने घेरि लई अकेली पनियाँ गई।**
३. **जसोदा तेरे लाला नें माटी खाई।**
४. **मइया करि दै मेरौ ब्याहु ब्याहि दै दुलहिन गोरी सी।**
५. **जसोदा तेरे लाला ने मेरी दई ऐ मटुकिया फोरि।**
६. **लै गये चीर मुरारी मैं कैसी करूँ।**
७. **मैं तो आइ जाऊँगी बड़े भोर दही लैकें आइ जाऊँगी।**
८. **कारी दैह पै खेलन आयौ री मेरौ बारौ सौ कन्हैया।**
९. **अरे बरसाने में अइयो नंदलाल खिलाऊँ तोय रंग होरी।**
१०. **कान्हा बरसाने में आइ जइयो बुलाय गई राधा प्यारी।**
११. **होरी खेलत नंदलाल बिरज में होरी खेलत नंदलाल।**
१२. **आजु बिरज में होरी रे रसिया।**
१३. **ब्रज में हरि होरी मचाई।**
१४. **मैं होरी कैसें खेलूँ री जा सामरिया के संग।**

१५. ढपु बाज्यो रे छैल मतवारे कौ ढपु बाज्यौ रे।

१६. कैसे ब्याहूँ राधा अरी कन्हैया तेरौ कारौ।

१७. दधि माखन की चोरी छोड़ि सामरे मैं समुझाऊँ तोय।

१८. मेरी पल से पलक नाँय लागी बँसुरी की धुन सुन के।

१९. मुरलिया काहे गुमान भरी।

२०. आना आनारे मोहन मेरी गलियाँ।

२१. कान्हा ठाड़ो कदम की छैयाँ, चराय रह्यौ गइयाँ।
मुरलिया बाजि रही।

२२. सखी री मैं तो भई न बिरज की मोर।

ब्रज के इन लोकगीतों में कालीदह पर खेलने वाला बारा कन्हैया है तो द्वारकानाथ, गोवर्धनधारी, गिरधारी और चक्रधारी भी है। इन गीतों में विविध प्रसंगों, आख्यानों और नामों से श्रीकृष्ण का लोकरक्षक, लोकरंजक और लोक मनमोहन रूप चित्रित है, अभिव्यक्त है। कदम की छैंया में खड़े, बाँसुरी बजाते मुरलीधर की मधुर मुरली गूँजी है।

●●

कश्मीरी लोक साहित्य में श्रीकृष्ण

❀ प्रो० चमनलाल सप्रू

कश्मीर से श्रीकृष्ण का सम्बन्ध पण्डित कल्हण रचित राजतरंगिणी में मिलता है। राजतरंगिणी का शुभारम्भ ही गोनन्द (प्रथम) नामक कश्मीर नरेश से हुआ है। यही समय था धर्मराज युधिष्ठिर के राज्य सिंहासन पर आरूढ़ होने का। गोनन्द ने मथुरा पर आक्रमण किया था। श्रीकृष्ण के हाथों वह युद्धभूमि में मारा गया। यह सुखद संयोग है कि क़श्मीर मण्डल का इतिहास महाभारत के समय से ही लिपिबद्ध है।

सम्राट गोनन्द के अनन्तर उसका पुत्र दामोदर सिंहासन पर बैठा। मथुरा के युद्ध में अपने पिता गोनन्द के मारे जाने से वह अतीव दुखित था। यही कारण था उसने श्रीकृष्ण से लोहा लेने की ठान ली। श्रीकृष्ण उस समय गान्धार में एक स्वयंवर उत्सव में भाग लेने गये थे। दामोदर ने उनकी अनुपस्थिति का लाभ उठाते हुए आक्रमण करना उचित समझा। परन्तु श्रीकृष्ण के मथुरा लौटने पर उन्होंने दामोदर के आक्रमण को विफल कर दिया। इस युद्ध में दामोदर भी वीरगति को प्राप्त हुआ।

दामोदर की राजधानी श्रीनगर के पास जिस स्थान पर है, उसे वर्तमान काल में भी दामोदर वुडर कहते हैं। 'वुडर' अर्थात् पठार। इसी विस्तृत पठार पर श्रीनगर का विमान-पत्तन है। इसे आरम्भ में दामोदर हवाई अड्डा ही कहते थे। अस्तु,

श्रीकृष्ण को समस्त भारतवर्ष में सुशासन स्थापित करने में रुचि होने के कारण उन्होंने जब देखा दामोदर की मृत्यु के बाद

कश्मीर के राजसिंहासन पर कौन बैठेगा? क्योंकि दामोदर का उस समय कोई पुत्र नहीं था। लेकिन उसकी पत्नी रानी यशोवती गर्भिणी थी। श्रीकृष्ण ने रानी यशोवती का राज्याभिषेक करवाया तथा उसे कश्मीर की राज्य व्यवस्था का भार सौंपा। यथासमय रानी ने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया, जिसका नाम गोनन्द रखा गया। यही इतिहास में गोनन्द (द्वितीय) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। रानी यशोवती के राज्याभिषेक में समस्त भारत के राजा-महाराजाओं के भाग लेने का उल्लेख मिलता है।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम और योगीराज श्रीकृष्ण भारतीय संस्कृति की दो आँखें हैं। हिकुट नामक खेल में लड़कियाँ श्रीकृष्ण की रासलीला से प्रेरित समवेत स्वर से लोक धुन पर गाती हैं—

सैमिव करव अथुवास, पैकिव रास गिंदने।
श्यै रयैथ सपुज कुनी राथ, गूपीनाथ नाचनि लौग
वैहर दौह गव पैहर मास, वैलिव रास गिंदने
यथ बालु पनस दिमव छ्यैह, युथुय दौहा गैनीमथ

(आओ मिलकर हाथ मिलायें, चलो सखियो खेलें रास। जब गोपीनाथ लगे नाचने तो छः मास एक रात के बराबर हो गये।

एक साल एक दिन के समान और एक मास एक प्रहर के समान प्रतीत होने लगे। चलो सखियो खेलें रास। लूटें आनन्द इस बालापन का, गनीमत है (रास का) आज का दिन।

गूकल हृदय म्योन तति चोन गूर्यवान
च्यथ वैमर्शु दिप्ति मानु भगवानो।
व्रच म्यानि गूपियि च्यैय पतु लारानु
बनसैरी वादु नादु मतानो
नैशरिथ ह्यय तु होश
मैशरिथि पर तु पानु

च्यथ वैमर्शु दिप्ति मानु भगवानो ॥

अर्थ—हे चित्त विमर्थ—दीप्तिमान भगवान! मेरा हृदय गोकुल है वहीं आपकी गौशाला है। मेरी वृत्तियाँ गोपियाँ हैं, जो आपकी बाँसुरी का नाद सुनकर मतवाली होकर और सुध बिसारकर अपने-पराये का भेद भूलकर आपके पीछे-पीछे दौड़ती हैं।

असवुन्य कोसम मौख चानि फौलानि
कुस तक आसि नुजि शैहलानो।
कोस्तब त्रैट्य तमाल, आस होय पौरानु॥ च्यथ.....

(आपके हँसने से फूल खिलते हैं। वह कौन सा ताप है जो इसे देखने पर दूर नहीं होता? हम चाहते हैं कि आपको हम कौस्तुभ मणि की माला एवं हार से सजायें।

शादी ब्याह के मौकों पर यज्ञोपवीत संस्कार पर मांगलिक गीत गाते-गाते महिलाएँ श्रीकृष्ण और श्रीराधा की अनुकम्पा का वरदान माँगते हुए दूल्हा-दुल्हण को आशीर्वाद देती हैं। माँजराथ (अर्थात् मेंहदी लगाने वाली रात) के समय जब लोक वाद्य यन्त्रों के साथ 'छकरी' शैली में महिलाएँ मंगलगान गाती हैं या एक साथ विलम्बित लय में मंगलगान उच्चारती हैं तो—

बैह वासुदीव राजैनि पैंजे
अज़ सानि लंजे ब्यूठ बुलबुल तै काव।
कृष्ण महाराज़ो वॉच्चयो हौंजे
माँज़ तोल पूरे डंजे सान॥
स्वर्ग खैच्च मांज़ तय
मुंज़ि कैर मैहरबॉनिए॥

अरे ओ दूल्हे राजा आओ बैठो वसुदेव राजा के सिंहासन पर। आज हमारी (पेड़ की) शाखा पर बुलबुल और कौवा (काकभुशुंडी) आकर बैठे हैं। कृष्ण महाराजा (दूल्हे) मैं तेरी छवि पर वारी जाऊँ।

च्यथ वैमर्शु दिप्ति मानु भगवानो ॥

अर्थ—हे चित्त विमर्थ—दीप्तिमान भगवान ! मेरा हृदय गोकुल है वहीं आपकी गौशाला है। मेरी वृत्तियाँ गोपियाँ हैं, जो आपकी बाँसुरी का नाद सुनकर मतवाली होकर और सुध बिसारकर अपने-पराये का भेद भूलकर आपके पीछे-पीछे दौड़ती हैं।

असवुन्य कोसम मौख चानि फौलानि
कुस तक आसि नुजि शैहलानो।
कोस्तब त्रैट्य तमाल, आस होय पौरानु॥ च्यथ.....

(आपके हँसने से फूल खिलते हैं। वह कौन सा ताप है जो इसे देखने पर दूर नहीं होता ? हम चाहते हैं कि आपको हम कौस्तुभ मणि की माला एवं हार से सजायें।

शादी ब्याह के मौकों पर यज्ञोपवीत संस्कार पर मांगलिक गीत गाते-गाते महिलाएँ श्रीकृष्ण और श्रीराधा की अनुकम्पा का वरदान माँगते हुए दूल्हा-दुल्हण को आशीर्वाद देती हैं। माँजराथ (अर्थात् मेंहदी लगाने वाली रात) के समय जब लोक वाद्य यन्त्रों के साथ 'छकरी' शैली में महिलाएँ मंगलगान गाती हैं या एक साथ विलम्बित लय में मंगलगान उच्चारती हैं तो—

बैह वासुदीव राजैनि पैंजे
अज़ सानि लंजे ब्यूठ बुलबुल तै काव।
कृष्ण महाराज़ो वॉच्चयो हौंजे
माँज़ तोल पूरे डंजे सान॥
स्वर्ग खैच्च मांुज़ तय
मुंज़ि कैर मैहरबॉनिए॥

अरे ओ दूल्हे राजा आओ बैठो वसुदेव राजा के सिंहासन पर। आज हमारी (पेड़ की) शाखा पर बुलबुल और कौवा (काकभुशुंडी) आकर बैठे हैं। कृष्ण महाराजा (दूल्हे) मैं तेरी छवि पर वारी जाऊँ।

मेंहदी पूरे तोल से नाप लो। यह मेंहदी देवलोक से स्वयं ही आई है—प्रभु की कृपा है।

जब दूल्हा राजा रंगोली के ऊपर खड़ा होता है और घर की बड़ी महिला उसकी आरती उतारती हैं, मिठाई खिलाती हैं, पुष्प वर्षा करती हैं तो सभी महिलाएँ समवेत स्वर में दूल्हे राजा को कृष्ण स्वरूप मानकर गाती हैं—

जाख दीवकी रोछनख जसुदाये
ज़्यनै जाय चौन्य मथराये।
दशि गंजिनय यैज़मान बाये
अस्तानन तै बैयि मंदरन।
गाश आव दशि मुच़रनै आये
ज़्यनु जाय चौन्य छय मथराये।

तुम देवकी कोश से जन्मे हो और जसोदा ने तेरा लालन-पालन किया। तेरा जन्म स्थान मथुरा में है। तुम्हारी माता ने 'अस्तानों' (आस्था स्थलों) और मन्दिरों पर जाकर मन्नत माँगकर 'कलावा' बाँधा है। जब तुम जन्मे चहुँओर प्रकाश हुआ और मन्नत वाले 'कलावा' खोल दिये गये। (क्योंकि मुराद पूरी हुई थी) इस भेंट के दौरान परस्पर विचारों के आदान-प्रदान के फलस्वरूप वैष्णव भक्ति का भी कश्मीर में प्रचार हुआ।

इस उत्थान को गति दी भक्तिवाद से सम्बद्ध 'अवतारवाद' और 'लीला' की अवधारणाओं ने। साहिब कौल (मृत्यु 1642) द्वारा रचित 'कृष्णावतार-लीला' भक्ति की चेतना से निदेशित ऐसी प्रथम कश्मीर काव्य-कृति है, जिसमें विष्णु के अवतार के रूप में कृष्ण की प्रतिष्ठा और उनकी लीलाओं का वर्णन है।

'अवतारवाद' मध्यकालीन हिन्दू मानस की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी, जिसने ईश्वर को मानवीय संदर्भों में प्रस्तुत करके

मनुष्य को उससे व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित करने की सुविधा प्रदान की। इस नये प्रकार की सम्बन्ध-चेतना ने व्यक्ति के मनोरोगों का उदात्तीकरण किया और काव्य में अवतार के भक्त रंजक और लोक रक्षक बिम्ब प्रतिष्ठित हुए।

कश्मीर के उल्लेखनीय संस्कृत कवि क्षेमेन्द्र ने ''दशावतार चरितम्'' में राम तथा कृष्ण से सम्बन्धित कथा-प्रसंगों को संस्कृत में पद्यबद्ध किया था। कृष्ण और गोपियों के रास-रमण को लेकर एक सुन्दर एवं श्रवण-मधुर गीत की रचना की है।

लेकिन कश्मीर भाषा में रचित काव्य में लीला गान एक विशिष्ट काव्य प्रवृत्ति के रूप में इसके शताब्दियों बाद ही विकसित हो सका। उन्नीसवीं शती के साथ ही यहाँ विष्णु के कृष्ण और राम अवतार के गुण-कीर्तन की परम्परा ने अपनी जड़ें इतनी गहरी जमा दीं कि 'लीला' शब्द कश्मीरी भाषा में किसी भी भक्तिपरक काव्य अथवा वन्दना-स्तुति का पर्याय बन गया। अत: कश्मीरी के संदर्भ में भक्ति-काव्य को 'लीला-काव्य' कहना अधिक उपयुक्त होगा।

कश्मीरी साहित्य के विख्यात समालोचक डॉ० शशिशेखर तोषखानी ने 'लीला-काव्य' लेखन के युग 18वीं शती के युग और समाज की परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण करते हुए भक्ति काव्य के उदय की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला है। वह लिखते हैं—

अठारहवीं शती में अफ़गानों ने निरंकुश हिंसा, लूटपाट और धार्मिक अत्याचारों से लोकचित को इस सीमा तक आतंक-कम्पित कर दिया था कि पौराणिक मानसिकता से सम्बद्ध हिन्दू-मन में असुर शब्द का अर्थ क्रूरता और नृशंसता के सम्पूर्ण आयामों के सहित साकार हो उठा। असुर मानवीय उच्चादर्शों, आध्यात्मिक मूल्यों, स्वप्नों और शान्ति को उदरस्थ करने वाली क्रूर शक्तियों का प्रतीक था, जिसे संत्रस्त जनदशाओं में तत्कालीन शासकों के साथ

सम्बद्ध किया गया और उत्तर भारत के भक्ति काव्य में राम और कृष्ण की असुर संहारक और भू-उद्धारक छवि कुछ अधिक स्पष्टता से जनमानस में दीप्त हो उठी।......अवतारवाद ने राम और कृष्ण के चरित्र के माध्यम से इस मन को लोकोत्तर स्तर पर मुक्ति का आश्वासन दिया।

x x x

कश्मीरी साहित्य में कृष्ण भक्ति पर आधारित कवियों में अग्रणी एवं लोकप्रिय कवि हैं—**परमानन्द** (1791-1885) तथा **कृष्ण राजदान** (1848-1927)। परमानन्द की दो लघु काव्य कृतियाँ हैं—राधा स्वयंवर और सुदामा चरित्र। यह दोनों कृष्ण वृत्त से सम्बन्धित लघु-काव्य कृतियाँ हैं। इनमें कृष्ण की लीलाओं को अन्योक्ति और रूपक की पद्धति द्वारा सामान्य इतर गहन अर्थ उद्घाटित किए गए हैं। कृष्ण लीला पुरुषोत्तम है, उनके रास रमण और विहार केलि में भाग लेने का अर्थ अनिर्वचनीय दिव्य की उपलब्धि है जो व्यक्ति के जीवन का चरम उद्देश्य है। उनकी लीला की आध्यात्मिक व्याख्या के अन्तर्गत उनका और गोपबालाओं का रति सम्बन्ध भक्ति हो जाता है। चीर हरण का कार्य माया के आवरण को हटाना, रास विलास दिव्यानन्द तथा मुरली ध्वनि अनहद नाद के पर्याय हो जाते हैं। परमानन्द ने 'राधा स्वयंवर' में राधा-माधव केलि में आत्मा और ईश्वर के प्रगाढ़ राग सम्बन्धों का इसी प्रकार की व्याख्या के अनुरूप रूपक प्रस्तुत किया।

कविता - गोकुल उर मेरा (गूकल हृदयम्याने है)

''हे चित्त-विमर्श-दीप्तिमान भगवन्! मेरा हृदय गोकुल है। वही आपकी गौशाला है।

मेरी वृत्तियाँ गोपियाँ हैं, जो आपकी बाँसुरी का नाद सुनकर मतवाली होकर, सुधबुध बिसारकर अपने पराये के भेद से रहित

आपके पीछे दौड़ती हैं। बाँसुरी के नाद से उन्मत्त हुई सी, सुधबुध बिसारे हुए, अपने और पराये का भेद भूलकर, ओ चित्त-विमर्श दीप्तिमान भगवान! गौड़ीय वैष्णव कवियों की भाँति परमानन्द ने राधा को अपनी काव्यकृति 'राधा स्वयंवर' की नायिका बनाया है। निम्बार्क मत अवलम्बियों की भाँति राधा और कृष्ण दोनों के युगल-रूप को अपनी आस्था का केन्द्र माना है। राधा स्वयंवर में वर्णित मनोभावों को पढ़कर स्पष्ट हो जाता है कि अमरनाथ गुफा तीर्थ को जाने वाले मार्ग पर प्रमुख गाँव मटन (मार्त्तण्ड) के तीर्थस्थल पर विश्राम करने वाले उत्तर भारत के साधु-महात्माओं के सम्पर्क में आने से यहाँ के निवासी कवि परमानन्द पर उपर्युक्त सम्प्रदायों के सिद्धान्तों का प्रभाव स्पष्ट है।

'राधा स्वयंवर' कृति का आरम्भ भागवत आदि आधार ग्रन्थों से प्रेरित होकर भी कवि की मौलिक सौन्दर्य दृष्टि से नि:सृत है। आरम्भ में राधा के जन्म और बालक्रीड़ाओं का वर्णन है और परिणति कृष्ण-राधा के प्रणय और परिणय में होती है।

डॉ० तोशखानी के अनुसार—(इस लघु काव्य कृति में) "कृष्ण की लीलाओं से सम्बद्ध कुंजबिहार, मुरली वादन, रास रमण, गोपिका चीर हरण, रुक्मिणी मान हरण, अक्रूर के साथ मथुरा गमन और कंस वध आदि परिचित प्रसंग कथावृत्त के अन्दर समाविष्ट हैं। कृष्ण द्वारा राधा का चीरहरण जैसे कुछ मौलिक प्रसंगों की उद्‌भावना भी कवि ने की है जो अन्य कृष्ण काव्यों में नहीं मिलते पर कवि का आग्रह कथा-वर्णन से अधिक प्रवृत्ति, समर्पण और अनुग्रह के भक्ति-दर्शन तथा व्यक्ति-चेतना में विलय के अद्वैत बोध को व्यक्त करने वाली सांकेतिकता पर है।"

कृति में आद्यान्त एक अलौकिक परिवेश व्याप्त है और एक आध्यात्मिक उल्लास छाया है। बालिका राधा की जन्म-कुण्डली को

देखकर नारद अवाक् रह जाते हैं और यह अवाक् रह जाना जो कुछ कह जाता है व "आद्या शक्ति" और "जग-जननी" जैसे शत सहस्त्र विशेषणों अथवा उसके पर्यायों की आवृत्ति से प्रकट नहीं हो सकता था।

परमानन्द की यशोदा उन्हें अपनी पुत्रवधू बनाने को अभिलषित है। कवि ने राधा और कृष्ण को बालपन से ही एक-दूसरे के प्रति आकर्षित और प्रीति में आबद्ध दिखाकर अनेक सुकुमार स्थितियों की सृष्टि की है। बालिका राधा प्रारम्भ में कृष्ण से कुछ दूर-दूर ही रहती है और लुक-छिपकर उनकी वंशी वादन सुनती है। यह वंशी ध्वनि उनके कानों से प्राणों में उतरती है और देह की सभी शिराएँ एक अजानी व्याकुलता से झनझना उठती हैं।

राधा और कृष्ण की बढ़ती हुई प्रीति को देखते हुए वृषभानु का पुरोहित के हाथ विवाह प्रस्ताव भेजना, कृष्ण "मोती के बीज बोकर" मोतियों की फसल को पुरोहित, पुरजनों और राधा के परिजनों को उपहार स्वरूप देना आदि कुछ नये प्रसंगों की सृष्टि से जहाँ कथा-रस की दृष्टि से रोचक बन पड़ी है। राधा और कृष्ण के विवाह के वर्णन में प्रकृति और पुरुष के चिरंतन मिलन का विराट बिम्ब झलक उठा है—

लोक पाल वायु पथ बुहार रहे थे
स्वयं इन्द्र लिपाई करवाने में व्यस्त थे।
वसंत अनेक रंगों के फल बिछा रहा था
सूर्य-चन्द्रमा दीपावली किये हुए थे
बिजली बादलों का छत्र लिये खड़े थी
आकाश के पंखी अपने पंखों से पंखा झल रहे थे
गन्धर्व गान रत थे
सुन्दर अप्सराएँ नृत्य निरत।

राधा राधा राधा राधा राधा कृष्ण जी
रासै-मंडलै व्यथ प्रैयमुक मस
सासै-बज़ु मच़ै गौमच़ै नच़ै नस
अख अैकिस अथैवास लायान आसै नादा
राधा राधा राधा राधा राधा कृष्ण जी।

- - - - - - - - - - -

इन्द्रै लूख किथै वैन्यज़ि बिन्दराबनसुय
न्यन्दरि अन्दर छिनै त्युथ डेशन।
गैजमुच़ तति सार्यन दीहु वौपादा
राधा राधा..........

- - - - - - - - - - -

रास गव यैति आसि समि रसै समन्दर
रास गव यैति च़मि चौक तु मौदुर।
रास गव ज़ि रूदमुत आसि नु अपरादा
राधा राधा...........

- - - - - - - - - - -

गटि मंज़ै गाश आव चाने ज्यनय
जय जय जय जय जय दीवैकी नन्दनय॥

- - - - - - - - - - -

मन म्योन बिन्दरावन तु लो लो
आत्मरूप नारायण तु लो लो।
कृष्णस छ़ॉडान ॲस्य गॅयि मच़य
न्यसॅफ शबन न्यैन्द्रे हच़य
नच़न नच़न वनन छै वच़न
श्यामस छ़ांडान ॲछ गॅयि छच़य!
सॅमिव करव अथवास

पॅकिव रास गिंदने
श्यै र्‌यथ सापून्य कुनी राथ
गूपीनाथ नच़नि लौग
वॅहर दौह गव पैहर मास
पैकिव रास गिन्दने

- - - - - - - - - - -

अपॉर्य नादा यपॉर्य नादा
च्वपॉर्य राधा-कृष्ण छुय
प्रथ कांसि सूत्यन कॅरिथ अथुवास
पॅकिव रास गिंदने
श्यै र्‌यथ सांपून्य कुनी राथ
गूपीनाथ नच़नि लोग
वॅहर दौह गव पैहर मास
पॅकिव रास गिन्दने

- - - - - - - - - - -

अपॉर्य नादा यपौर्य नादा
च्वपॉर्य राधा-कृष्ण छुय
प्रथ कांसि सत्यन कैरिथ अथुवास
पैकिव रास गिंदने
बनोवुम पान मोरली सोज़ बोरमस
म्येच्युव ओसुस तु अंग अंग साज़ कोर मस
कृष्ण महाराज अख बालक अवस्था
म्येतुर ऑस शुरिलि मंज़ यारानै यारज़
करान तथ प्यठ रशॅक ऑस पानॅ यारज़ ॥

'रास' प्रसंग का वर्णन परमानन्द ने इस प्रकार किया है—

राधा राधा राधा राधा राधा कृष्ण जी
प्रेमासव पानकर शत शत बालाएँ
मत्त हुई नृत्य करते करते
हाथ में हाथ लेकर इक दूजे का
गाती थीं राधा राधा राधा कृष्ण जी।......

वृन्दावन की तुलना कैसे करें इन्द्रलोक से (वृन्दावन तो स्वर्ग से सुन्दर और आकर्षक हो गया है) स्वप्न में भी ऐसा स्थान नहीं देखा जा सकता। सभी लोग के दैहिक बन्धनों से पार हो गए, रास वही है जहाँ उमड़ता रस का सागर है। रास वही जहाँ सम होता मीठा और कड़ुआ है, जहाँ कोई अपराध (कलुष) नहीं रहता, बस केवल एक ही भाव होता है, रास में राधा-राधा-राधा कृष्ण जी।

परमानन्द की राधा रीतिकालीन संदर्भ की सुरत संगोपना नायिका नहीं है। उनका प्रेम समर्पणाकुल है। 'राधा स्वयंवर' में उभरा उनका चरित्र-बिम्ब चण्डीदास की राधा का स्मरण दिलाता है—

तोमारेई गरबे हय
रूपसी तोमार रूपे

परमानन्द की एक और कृति 'सुदामा चरित' है। इस कृति का आरम्भ देवकी नन्दन के जयगान से होता है। जिनके जन्म से अन्धकार में प्रकाश हुआ।

'सुदामा चरित' में भी एक बड़ा भाव कवि ने यूँ प्रकट किया है। वह है राधा स्वयंवर की भाँति दार्शनिक विचार-सूत्र। ईश्वर और मनुष्य, जीवात्मा और परमात्मा के पारम्परिक नैकट्य की एक मैत्री-सम्बन्ध के रूप में करिकल्पना। परमानन्द के अनुसार दोनों में पथिका अथवा दूरी की प्रतीति का कारण जीव का अहंभाव है। पथिका का बोध पृथक् इच्छा का परिणाम है। अन्यथा जीव का परमात्मा से अभेद है।

जब 'सद्बुद्धि' (सुशीला) की प्रेरणा से 'शुभेच्छा' का उन्मेष होता है तो जीव (सुदामा) पुनः ईश्वर की ओर अपनी यात्रा के लिए प्रस्थान करता है। अन्त में भगवत् कृपा से उसके सभी दु:खों का अन्त हो जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं—कवि परमानन्द ने कृष्ण-सुदामा के मैत्री प्रसंग को आत्मबोध का आध्यात्मिक धरातल प्रदान किया है।

'सुदामा चरित' का प्रारम्भ सुदामा की व्यथा-कथा से नहीं कृष्ण के बालचरित से होता है। कृष्ण की बाल क्रीड़ाओं - ग्वालिनों के मटके फोड़ने और दही और माखन चुराने के उनके नटखटपन के वर्णन से इस कृति के प्रारम्भिक पृष्ठ सरस हैं।

सुदामा और कृष्ण के मिलन का कवि ने वर्णन कर दोनों में अभेद की स्थिति स्थापित कर दी है। इस कृति में आत्मा के विराट मिलन का बिम्ब द्वारका जाते हुए सुदामा की स्थिति से अवगत कराता है।

अविरल आँसू की धारा बहाते हुए
वह मानो निकला है समुद्र की लेने थाह
जिसका नहीं कोई नाम और रूप नहीं
कोई दिशा नहीं
उसका संतरण छोटी सी नाव से करने को
एक महाभाव उस नाव का मांझी बना।
और दिख गया उसे किनारा।

यही किनारा कवि के अनुसार व्यक्ति का चरम गन्तव्य है—ईश्वरत्व के साथ मिलन और तादात्म्य का बोध-बिन्दु। पूरी कथा में सहज मानवीय भावभूमि के साथ-साथ कथा का सहज-प्रवाह रूपक के भार के नीचे नहीं दबता।

x x x

कृष्ण राजदान

परमानन्द के बाद-दूसरा बड़ा नाम कश्मीरी 1850-1926 कवियों में **कृष्ण रजदान** का है। इन्होंने भी श्रीकृष्ण को केन्द्रित कर अनेक कविताएँ लिखी हैं। यद्यपि उनकी वाणी फारसी लिपि में छपी थी। किन्तु कश्मीरी हिन्दू समाज के 1990 में विस्थापन के बाद उनके पड़पोते ने अपने खर्चे से उनकी रचनाओं को दो खण्डों में **कृष्णॅ वॉणी** और **कृष्णॅ दर्शन** नाम से प्रकाशित किया है। 19वीं शती में कश्मीरी काव्य में संगीत चेतना का विकसित रूप कृष्ण राज़दान के गीतों जैसा मिलता है, वैसा अन्यत्र नहीं। उनकी कविताएँ इतनी लोकप्रिय है कि मन्दिरों-आश्रमों के संकीर्तनों के अतिरिक्त शादी-ब्याह के समय 'छकरी' शैली में सामूहिक रूप से गाने के अतिरिक्त साहित्यिक कार्यक्रमों में भी उनकी कविताओं के पाठ, उद्धरण आदि द्वारा उनकी कश्मीरी भक्ति काव्य को विशिष्ट देन पर चर्चा किए बिना नहीं रहा जाता।

मन की प्रवृत्तियों को कृष्णमय करना उनके जीवन दर्शन का कुंजी-सूत्र था। अल्पायु में ही काव्य रचना करके मृत्यु पर्यन्त लीला-गान का मधुर काव्य कौशल अपनी कृतियों में बिखेर कर कश्मीरी कविता कानन में मनमोहक एवं सुरभित पुष्पों से भर दिया। उनकी अपनी शैली, अपना लहजा अपनी अलग पहचान है, इससे कश्मीरी भक्त कवियों में वे सबसे बड़े गीतकार के रूप में स्थापित हो गये।

विद्यापति की भाँति शिव और कृष्ण दोनों उनकी आस्था के कारण उनकी सृजनात्मकता के केन्द्र रहे। एक ही काव्य कृति 'शिव लग्न' में कृष्ण राज़दान ने दोनों के प्रति 'लीलाएँ' (भक्ति प्रेरित कृतियाँ) रहीं। उनकी लोकप्रिय लीलाओं का एक संकलन सर्वप्रथम रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, कोलकाता की ओर से पं० मुकुन्दराम

शास्त्री के संस्कृत अनुवाद सहित प्रकाशित हुआ।

कृष्ण राज़दान ने 'रास' गीतों को एक उदात्त अतीन्द्रिय उल्लास के रूप में बिम्बित किया है। देशकाल की लघु सीमाओं में न समाते हुए ऐसी घटनाओं को "मन वृन्दावन" में नित्य घटित होते दिखाया है—

मन मेरा वृन्दावन रे
आत्म स्वरूप नारायण रे।

रूप से अधिक कवि भी दृष्टि भाव पर है। वह देह-छवि से अधिक रोमांचित हृदय के भाव-बिम्ब प्रस्तुत करता है—

आधी रात को आँखों में नींद लिए
कृष्ण को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते हम तो पगला गई हैं
नाचते-नाचते गाती हैं (गोप बालाएँ)

रास के अपरिहार्य आमन्त्रण का एक गीत है—

आओ मिलकर हाथ पकड़ लें
चलो रास खेलने को चलें।
गोपीनाथ नाचने लगे तो
छः मास एक ही रात-से बीत गए
वर्ष दिन-सा बन गया, पहर मास सा हो गया
कभी यहाँ टेर सुन पड़ती है, तो कभी वहाँ
यहाँ वहाँ सब कहीं बस राधा और कृष्ण है
हरेक का हाथ पकड़कर नाचते हुए।

कृष्ण राज़दान के गीतों में रास-विलास ही नहीं, राधा का विरह-विदग्ध मन भी धड़का है। प्रतीक्षा विकल राधा, कृष्ण की खोज में क्लान्त राधा, समर्पणाकुल राधा—"**फूलों से लदी वन लता-सी**" सुकुमार राधा— अत्यन्त कोमल रंगों में राधा के अनेक चित्र अंकित किये हैं। कृष्ण राज़दान ने। इनमें से कई गीतों में लोक-

गीतों की सी सहज अभिव्यक्ति है। भावावेग कहीं-कहीं इतना तीव्र है कि स्वयं कवि ही राधा के रूप में प्रीति का निवेदन करता हुआ प्रतीत होता है।

गोपियाँ उनके लिए प्रभातियाँ गाती हैं—

तुम्हारे प्रेम में बहती हुई हमारी आँसुओं की धारा
तारा मंडल तक पहुँच गई हैं
चन्द्रमा तुम्हारे लिए अमृत का प्याला लिए है
जागो श्याम, उजाला हो गया।

वसन्तागमन के समय सर्वत्र हरीतिमा में उसे कृष्ण की रूप-छवि की परछाई नज़र आती है—

श्याम सुन्दर वासन्ती परिधान पहने आये हैं
सारा संसार हरा हो गया है;
सखि वसन्त आया है, वसन्त!

कवि कृष्ण जी राज़दान श्रीकृष्ण को एक उज्ज्वल सितारा मानते हैं, जिसके उदित होने पर वृन्दावन वैकुण्ठ बन जाता है।

कृष्ण चन्द्र उज्ज्वल सितारा हो तो ऐसा हो।
हुआ वैकुण्ठ वृन्दावन जो नन्दन हो तो ऐसा हो॥

कश्मीरी भाषा में सात मुस्लिम कवियों—यूँ कहिए सूफी कवियों ने रहस्यवादी कविताओं में काश्मीर शैव दर्शन का यत्र तत्र प्रतिपादन किया है। किन्तु कृष्ण भक्ति रस में डूबे अलहाज फाजिल काश्मीरी ने अपनी कृष्ण भक्ति की कविताओं का संकलन—'कृष्ण लीला' नाम से दोनों लिपियों में छापकर व्यापक पाठक वर्ग तक अपनी कृष्ण भक्ति का प्रचार किया। इन्हें कश्मीरी हिन्दू समाज ने जन्माष्टमी के अवसर पर सार्वजनिक अभिनन्दन करके 'कश्मीर का रसखान' उपाधि से अलंकृत किया। उक्त कविता संकलन में अनेक स्थानीय महानुभावों ने जो अपने मत व्यक्त किए हैं, उन्हें भी पुस्तक

के साथ छापा है। इन पंक्तियों के लेखक ने भी इस संकलन की भूमिका लिखी है। फाज़िल महोदय की कृष्ण भक्ति से सनी हुई कविताओं को हमारी प्रेरणा से उन्होंने वर्ष 1984 में पुस्तकाकार दिया।

मैंने अपने शरीर को मुरली का रूप दिया। उसमें संगीत की लय का संचार किया मैं मिट्टी की आकृति लिए था। किन्तु अपने एक-एक अंग को एक-एक वाद्ययन्त्र बनाया। मनमुटाव को वज्[1] करके धो लिया जो (इन अंग रूपी साज़ो वाद्य यन्त्रों) पर जंगलगीथी उन्हें (श्रीकृष्ण के प्रकाश का मन्त्र आयत[2] के रूप में मुरली की धुन से बजाकर निकाला।

वोजूस यस निश छलिथ छ्ॅन्नयमस कोदूरत
तुलिथ ज़ंजारू नूरूक आयि पोरमस ॥

एक काव्य रचना 'बालक अवस्था' नाम से भी प्रकाशित की है। मेरठवासी डॉ० निजामुद्दीन (पूर्व हिन्दी प्राध्यापक, इस्लामिया कॉलेज, श्रीनगर, कश्मीर के अनुसार – अमीर खुसरो, नजीर अकबर आबादी, सागर निजामी बेकल उत्साही, नजीर बनारसी आदि की परम्परा में कृष्ण भक्त कश्मीरी कवि फाज़िल कश्मीरी को यदि कश्मीर का रसखान कहें तो अतिशयोक्ति न होगी।

फाजिल कृष्ण लीला में कृष्ण अवतार की प्रासंगिकता के बारे में कहते हैं–

कृष्ण गव पोशिवुन गंगायि हुंद जल।
छलान हेंद्यन - मुसलमानन दिलुक मल ॥

अर्थात् कृष्ण गंगा का पावन-सनातन जल है, जो हिन्दू और मुसलमान दोनों के मन का मैल धो लेता है।

कवि कृष्ण की बाँसुरी की मधुरता पर मोहित है। उसके

---

1. निमाज़ अदा करने से पूर्व, अंग प्रक्षालन की क्रिया।
2. कुरान की एक आयत -इ सूरये नूर।

अनुसार बाँसुरी का स्वर प्रेमात्मा है; जीवन ऊजी है, 'साज़े दिलबरी' है। फूँक मारकर उन्होंने आत्मज्ञान का दार्शनिक रहस्य उद्‌घाटित किया है। ऐसी खुदी या अहमन्यता उद्‌भासित की है जिस पर हजारों बेखुदी कुर्बान की जा सकती हैं। कृष्ण के रूप रंग पर कवि अत्यधिक मोहित हैं। उन्हें ऐसा आभास होता है कि फूलों में रंगत कृष्ण की बदौलत है। उनके कारण यह संसार सुरम्य उपवन बना हुआ है।

फ़ाजिल ने बिल्व मंगल, फलवाली, सूरदास और रसखान पर कृष्ण कृपा के संदर्भ में लघु कविताएँ लिखी हैं। कृष्ण रास से मुग्ध होकर कवि कहता है—

आओ सखियो सब मिल चलें शालामार[1]।
बालकृष्ण के साथ रास खेलकर नाना प्रकार को उपवन में खिले फूलों से।
पूजा के बाद प्रेम के शब्दों से करें।
उसकी पूजा उसके (रूप माधुर्य का) गुणगान करें।
बालकृष्ण पर पुष्प वर्षा करें, पुष्प वर्षा करें।

\- - - - - - - - -

अब रे गोपाल उठा ले बाँसुरी और सुना मधुर धुन।
तुम्हारी बाट जोह रही हैं गैयां और बुलबुल।
हम गोपियाँ बस तुम्हारे प्रेम में डूब रही हैं।
तुम्हारी बाँसुरी की धुन पर मतवाली हो गई हैं।

सुदामा और कृष्ण की मैत्री का संवेदनशील वर्णन भावुक होकर फ़ाजिल ने किया है—

सुदामा और कृष्णजी बालपन से यार हैं। ऐसा याराना कि

---

1. श्रीनगर (कश्मीर) में प्रसिद्ध उपवन-शालामार अर्थात् मार (कामदेव) का घर (शाला)।

खुद यारी उनके याराना पर रश्क (ईर्ष्या) करती थी।

जिन अन्य कवियों की कृष्ण भक्ति के रस में डूबी कविताएँ कश्मीरी काव्य धारा की अमूल्य निधि हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं— लक्ष्मण जी 'बुलबुल', ठाकुर जू मनवटी, विष्णुदास, ज़िन्दें कौल, नीलकंठ शर्मा, केशव दास, प्रेमनाथ 'प्रेमी', प्रेमनाथ कौल 'अर्पण', पृथ्वीनाथ कौल 'सायिल', बदरीनाथ 'अभिलाश', केशव जू राज़दान, अमरनाथ दर, प्यारे हताश मोहिनी कौल, भाग्यवान द्यद, महात्मा हज़ीन सॉब, पुष्करनाथ 'पोशि मौत', दास गिरधारी, जानकीनाथ 'कमल', सोमनाथ भट्ट 'वीर', शम्भूनाथ भट्ट आदि। ''हसीम''

पुनश्च— श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के कश्मीरी में अनेक पद्यानुवाद हुए हैं। इनमें निम्नलिखित कश्मीरी विद्वानों के नाम उल्लेखनीय हैं— मान जू अतार, नीलकंठ शर्मा, कृष्ण जू दर, प्रेमनाथ कौल 'अर्पण'।

●●

तमिल लोक-वार्ता में श्रीकृष्ण

❀ डॉ० एन० सुन्दरम्

लोक-साहित्य को युगों से अछूत माना जा रहा है। वास्तविक बात तो यह है कि आज भी हमारा शिष्ट-साहित्य उसे प्रतिष्ठित स्थानों पर अपने साथ आदरपूर्वक बिठाने में हिचकता है। लोक-साहित्य भी साहित्य है। लोगों के मन में भ्रम है यह है कि वह कलात्मक या रचनात्मक नहीं होता। हमारे श्रेष्ठ लोक-गीतों, लोक-वार्ता में संवेदना की गहराई के वे तत्त्व मिलते हैं, जिन्हें साहित्य पूजता आ रहा है।

तमिलनाडु में लोरी के रूप में, वार्ता में, त्यौहारों में लोक-गीत परम्परा प्रचलित है। मिथकीय कहानियों के साथ-साथ जनमानस में अनुभव और आस्थाओं की अभिव्यक्ति अधिक प्रचलित है। इन मिथकीय कथाओं में कृष्ण के सम्बन्ध में कई कहानियाँ प्रचलित हैं। इन लोक-कथाओं के आधार पर तमिल में अधिक साहित्य रचा गया है। इस मौखिक साहित्य ने धीरे-धीरे लिखित का रूप ले लिया।

लोक-वार्ता शैली में सिलप्पदिकारम की रचना हुई है। इसमें तत्कालीन लोक-वार्ता में प्रचलित कृष्ण सम्बन्धी गाथाओं का सुन्दर संग्रह हुआ है। मदुरै शहर के आसपास स्थित गाँवों में ग्वाल बालिकाएँ जिन्हें तमिल में आइच्चियर कहते हैं वे कृष्ण लीलाओं को तन्मयता के साथ गाती हैं। आज भी ये गीत उसी शैली में गाये जाते हैं। सिल-प्पदिकारम में इसको 'कुरवैक्कूत्तू' कहा गया है। 'कूत्तू' का मतलब है नृत्य-गान के साथ किसी गाथा का वर्णन करना। प्राचीन काल से ही यह परम्परा चली आ रही है। जो रासलीला श्रीकृष्ण ने वृन्दावन

में की थी उसी की एक प्रतिच्छाया है। कोवलन और कण्णकि व्यापार करने के निमित्त मदुरै पहुँचते हैं। वहाँ गाँवों में ग्वाल बालाओं के निवास स्थान पर ठहरती हैं। वहाँ शाम के समय सभी ग्वाल बालिकाएँ मिलकर सामूहिक नृत्य करती हैं। इसी को वहाँ अडिकलार ने 'कुरवैक्कूत्तू' कहा है। यह परम्परा अक्षुण्ण रूप से आज भी सुदूर दक्षिण में देखी जा सकती है। यादव कुलों को तमिल में 'कोणार' कहते हैं। यह 'गो' शब्द का अपभ्रंश रूप है। गाय-बैलों का पालन करना इन लोगों का प्रधान धन्धा है। कुरवैक्कूत्तू शैली में कृष्ण को केन्द्र बनाकर आज भी नृत्य और गान होते रहते हैं।

नृत्य में सात लड़कियाँ एक दूसरी का हाथ पकड़कर वृत्त बनाती हैं। सिलप्पदिकारम में इसका उल्लेख आइच्चियार कुरवै, गोप बालाओं का नृत्य नाम से हुआ है। इस नृत्य की संगीत योजना में एक विशिष्ट अभिप्राय छिपा रहता है। गोलाकार बनाकर नाचने वाली सात लड़कियाँ सप्त स्वरों में गाती हैं। उन्हें क्रमशः स.रि.ग. म के सात स्वरों के तमिल के नाम कुरल, तत्तम, कैक्किलै (स.रि. ग.म) आदि से पुकारा जाता है। यह कुरवैक्कूत्तू की अधिक प्रशंसा की है। उन्होंने गीत और तालियों द्वारा ही नहीं, चूड़ियों की झंकार से उत्पन्न होने वाले स्वर माधुरी से युक्त गीत रचे हैं। इसमें बालकृष्ण को केन्द्रित बनाकर लड़कियाँ नाचती हैं।

तेरुक्कूत्तू में श्रीकृष्णः—तेरुक्कूत्तू का मतलब है नुक्कड़-नृत्य। इस तेक्कूत्तू में बाँसुरी का प्रधान समावेश है। बारीक और तीखी आवाज में गाये जाने वाले तेरुक्कूत्तू के गीत आजकल फिल्मों में ज्यों के त्यों दिए जाते हैं। ये नाटक रात को दस बजे शुरू होकर प्रायः भोर तक चलते रहते हैं। इस तेरुक्कूत्तू ने यह कहावत का जन्म दिया है।

''कूत्ताड़ी किलक्के पार्पन, कूलिक्कारन मेर्क्के पार्पान।''

अर्थात् मजदूर को सूरज के डूबने तक मेहनत करनी पड़ती है जबकि अभिनेताओं को सूरज के निकलने तक पसीना बहाना पड़ता है। तेरुक्कूत्तू नृत्य में कई देवी देवताओं की कहानियाँ चलती हैं। सुदूर दक्षिण में तंजाऊर जिले के आसपास के गाँवों में यह कूत्तू बहुत प्रसिद्ध है। कृष्ण सम्बन्धी तेक्कूत्तू में बालकृष्ण की लीलाओं का—कृष्ण का जन्म, यशोदा के यहाँ पहुँचना, गोपिकाओं के साथ रासलीला, नप्पिन्नै (राधा) गीत, कालिंग नृत्य, कंस-वध तक की कथा लम्बे भाषणों के बाद गीत के रूप में गाये जाते हैं। गीतों को बार-बार दुहराते हैं। गाँव वालों में आपसी मन-मुटाव पड़ जाता है। तो सद्भाव को लाने के लिए तेरुक्कूत्तू की योजना बनाते हैं। इसमें बालकृष्ण सब लोगों के आपसी मतभेदों को भुलवाता है। फिर गाँव में शान्ति पैदा होती है। इस कूत्तू के लिए गाँव की चौपाल या किसी वैष्णव मन्दिर के आगे प्रांगण, खुली रंगभूमि के रूप में काम आता है। आजकल तेरुक्कूत्तू में भड़कीली पोशाकों का प्रयोग होने लगा है। कृष्ण सम्बन्धी तेरुक्कूत्तू के अतिरिक्त अन्य तेरुक्कूत्तू भी प्रचलित हैं। वे वल्लित्तिरुमणम (सुब्रह्मण्य-वल्ली की शादी), अर्जुन की तपस्या, नल्लतंगाल की कहानी (भूख व गरीबी के कारण स्त्री बच्चों के साथ आत्महत्या), कात्तवरायन, हरिश्चन्द्र श्मशान कथा। इन नाटकों में कृष्ण लीलाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं। आजकल ''राधा-कल्याणम'' (राधा की शादी) बहुत प्रसिद्ध है। इन कृष्ण- लीलाओं में स्थानीय संस्कृति की छाप देखने को मिलती है। गाँव के लोग त्रासदी को पसंद नहीं करते। कंस वध के बाद जेल में बन्द कृष्ण के माता-पिता वसुदेव-देवकी को छुड़ाने तक नृत्य समाप्त होता है।

तिरुप्पावै—भक्तिकाल का समय ईसवीं छठी शताब्दी है। वैष्णवाचार्यों ने तमिल प्रदेश में प्रचलित कात्यायिनी व्रत को गोपिकाओं के माध्यम से व्यक्त किया है। यह कात्यायिनी उत्सव तमिलनाडु में

मार्गशीर्ष महीने में मनाया जाता है। इसमें तिरुप्पावै के गीत बहुत प्रसिद्ध हैं। इसको पार्व-व्रत भी कहते हैं। प्रात: जल्दी जागी एक गोपिका अन्य गोपिकाओं को जगाती है। ये सब गोपिकाएँ मिलकर कृष्ण के द्वार पर पहुँचती हैं। इनमें 'नप्पिन्नै' नामक गोपिका प्रधान भाग लेती है। तिरुप्पावै का एक गीत देखिए। इसमें नप्पिन्नै का वर्णन मिलता है।

कुत्तु विलक्केरिय कोट्टुक्कार कट्टिलमेल
मेत्तेन्ड् पंच सयनत्तिन मेलेरी
कोत्तलर पूङ्कुळल नप्पिन्नै कोंङ्गैमेल
वैत्तुक्किडन्द मलरमार्बा! वाय तिरवाय
मैत्तडंकण्णिनाय! नी उन मणालनै
ऍत्तनै पोदुम तुयिलेळ वॉट्टायकाण
तत्तुवम अन्डु तकवलो रेम्बावाय।

नप्पिन्नै के साथ बालिकाएँ कृष्ण से वर माँगती हैं। वे सब मिलकर कृष्ण की आराधना करती हैं। आजकल यह पार्व-व्रत (मार्गशीर्ष-व्रत) के नाम से पूरे तमिलनाडु में भक्ति-श्रद्धा के साथ मनाया जाता है। सबेरे सभी लोग तिरुप्पावै के गीत गाते हैं। यहाँ गोपी-भाव देखने योग्य है। स्त्री-पुरुष सब अपने को गोपिकाएँ मानते हैं। इसी को लोग माधुर्य भाव भी कहते हैं। बालकृष्ण की मान्यता है कि नप्पिन्नै को देखे बिना कृष्ण का दर्शन नहीं कर सकते। यह तत्त्व राधा में भी निहित है। नप्पिन्नै की यह कथा लोक-वार्ता में बहुत प्रचलित है। यही नप्पिन्नै ने कन्नड़ संस्कृत में 'नीला' का नाम धारण किया है। यह नाम परिवर्तन कैसे हुआ ? इसका आधार क्या है, मूल स्रोत कहाँ से आया, ये सब किसी को पता नहीं। संस्कृत आचार्यों ने तिरुप्पावै के नप्पिन्नै पद को 'नीला' के नाम से अनुवाद किया है। यह मार्गळि उत्सव तमिलनाडु में प्रत्येक गाँव में

जन-जन में प्रचलित है।

तमिलनाडु के राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्य भारती की रचनाओं में लोकगीतों का स्पष्ट प्रभाव प्रकट होता है। स्त्रियों के उद्धार सम्बन्धी गीतों में 'कुम्मी' नामक छन्द का प्रयोग किया जाता है। यह कुम्मी एक सामूहिक नृत्य है। तालियाँ बजा-बजाकर कृष्ण सम्बन्धी गीत गाते हुए स्त्रियाँ नाचती हैं। यह कुम्मी केवल नाद सौन्दर्य पर आधारित है। 'कण्णम्मा ऍन कादली' (राधा मेरी नायिका है) गीत बहुत प्रसिद्ध है। लोक-गीत, लोक-वार्ता के रूप म कृष्णलीला सम्बन्धी अनेक पद रचे गये हैं। ये सभी पद लोक-वार्ताओं पर आधारित हैं। भारती ने तरल सुबोध शैली में इन गीतों को अपनाया।

गाथा-गीत—पौराणिक कथाओं पर जनमानस में कई कथाएँ प्रचलित हैं। इसी कारण से जनमानस पर स्थायी भाव उत्पन्न करने में सफल होते हैं। "अल्लि अरसानी मालै" एक महत्त्वपूर्ण गाथा गीत है। इसमें श्रीकृष्ण किसी लड़की का रूप धारण करके प्रकट होते हैं और रानी अल्लि के प्रदेशों की उर्वरता का गुणगान करते हैं। दूसरी ओर वे रानी अल्लि को-मोहित करने के लिए अर्जुन को एक औषधीय कवच बनाने की राय देते हैं। एक गीत का भावानुवाद यहाँ दिया जाता है।

"छोटी-छोटी पहाड़ियों पर और पश्चिमी घाट पर हमारा निवास-स्थान है। सप्त-पहाड़ी प्रदेश भी हमारा ही प्रदेश है।"

कथाक्रम में कृष्ण अर्जुन से कहते हैं—"यदि रानी अल्लि का नाम लेते हुए तुमने यह औषधी तैयार की तो जैसे-जैसे यह घुटती जाएगी, विरक्त रानी का तुम्हारे प्रति रुख भी बढ़ता जाएगा। यह गाथा काव्य उपमा-उत्प्रेक्षाओं से भरा हुआ है। गाथाओं में चरित्र- चित्रण निरूपण तो अत्यन्त सुस्पष्ट और सूक्ष्म ढंग से होता है।

भागवत मेला तमिलनाडु में बहुत प्रसिद्ध है। यह मेला किसी

जमाने में पूरे तमिलनाडु में लोकप्रिय रहा था। अब वह केवल एक गाँव में सिमटकर रह गया। यह गाँव है तंजाऊर जिले का 'मेनाट्टूर'। मई-जून में होने वाले वहाँ के नरसिंह जयन्ती उत्सव के दरम्यान् भागवत मेला होता है। मन्दिर के सामने सड़क पर 'पुआल' (इसे तमिल में वैक्कोल कहते हैं) का छप्परवाला विशाल मण्डप होता है और सामने छोटा-सा मंच बनाया जाता है। यहीं पर नृत्य-गीत प्रस्तुत किए जाते हैं। भागवत-मेला का नृत्य-नाट्य अत्यन्त धीमी गति वाला व आकर्षक होता है। साथ में सुरीला गेय संगीत और तालबद्ध वाद्य संगीत बजता रहता है। इस मेले की कथाओं में कृष्णलीला के गीत प्रस्तुत किए जाते हैं।

जनमानस में कृष्ण का नामकरण—लोक-वार्ता में लोग कृष्ण का नाम बार-बार लेते हैं। कृष्ण-कृष्ण कहकर अपने दोषों का निवारण करते हैं। कृष्ण से सम्बन्धित नाम यहाँ बहुत प्रचलित हैं जैसे कृष्णमूर्ति, कृष्णकुमार, बालकृष्ण, गोपीकृष्ण, गोकुलकृष्ण, कण्णन, कण्णपिरान, राधाकृष्णन। लोगों की मान्यता है कि इन नामों के सम्बोधन से कृष्ण की याद कर सकते हैं। जादू टोना, मंत्र-तंत्र आदि में भी कृष्ण का नाम बहुत प्रसिद्ध है।

तमिलनाडु में कृष्ण जयन्ती, गोकुलाष्टमी आदि त्यौहारों के माध्यम से कृष्ण की याद करते हैं। विशेषकर बालकृष्ण की पूजा श्रद्धा-भक्ति से की जाती है।

लोरियाँ—बच्चों को सुलाने के लिए माँ लोरियाँ गाती हैं। तमिल में इसको 'तालाट्टु' कहते हैं। आलवार साहित्य में पॅरियालवार ने श्रीकृष्ण को सम्बोधित करके दस लोरियाँ गायी थीं। प्रत्येक का अन्त तालेलो शब्द से होता है। पॅरियालवार का यह लोरी गीत जन-साधारण में अधिक प्रसिद्ध है और उन्हीं गीतों को मौखिक साहित्य में स्थान मिल गया। लोरियाँ छोटे-बड़े सबको प्रभावित करती हैं।

एक बात ध्यान रखने की है कि अधिकांश लोरियों की रचना अशिक्षित स्त्रियों द्वारा की जाने पर भी उनमें मौलिकता और प्राकृतिक माधुर्य की कोई कमी नहीं। माताएँ बुरी नजर से बचाने के लिए कृष्ण को सम्बोधित करते हुए गीत गाती हैं। बच्चों को खिलाते समय चंदा मामा की कहानी भी सुनाती हैं। माताएँ इन लोक-गीतों के द्वारा बच्चों के मन में धार्मिक भावना पैदा करती हैं।

लोरियों के विषय विभिन्न और बहुरंगी हैं। माताएँ बच्चों के मन में परिवार के बुजुर्गों के प्रति स्नेह और आदर भाव उत्पन्न करने की दृष्टि से लोरियों के माध्यम से गीत गाती हैं। विशेष तौर पर मामा को ऊँचा स्थान दिया जाता है। लेकिन कृष्ण के विषय में यहाँ भिन्न स्थिति पैदा हो गई। बच्चे को सुलाते समय माताएँ अपने बच्चों को कृष्ण के रूप में ही देखती हैं।

एक गीत इस प्रकार है—

सो जा मेरा नंदलाल सो जा,
सो जा गहरी नींद सो जा,
तू वृन्दावन का राजा है,
तुझे पालना झुलावें
सो जा सो जा मेरे नंदलाल।

लोक गीतों के द्वारा माताएँ कृष्ण के प्रति अनुराग की भावना पैदा करती हैं। जैसे—

अरियिन्नु पै विरिच्चु
अच्युतन्नु पेर सोल्लि
कृष्णन्तु पडुत्तवरक्कु
केडिल्लै ओरुनालुम।

भावार्थ यह है कि रात को बिस्तर बिछाने के बाद सोने के पहले भगवान का नाम अच्युत, कृष्ण, गोविन्द आदि लेने से सुख-

समृद्धि प्राप्त होती है।

'अम्मानै' नाम का गीत तमिलनाडु में बहुत प्रसिद्ध है। 'सिलप्पदिकारम' काव्यमें भी ये लोक-गीत व वार्ताएँ संग्रहीत हैं। **सायंकाल** के अधिकतर काव्य लोक-वार्ता पर ही आधारित हैं। कोवलन-कण्णकि की कथा सुदूर दक्षिण में लोक-वार्ता में प्रचलित थी। उसी को इलंगो अडिगल ने काव्य का रूप दिया था। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि लगभग तीसरी शताब्दी की अवधि के मध्य वैश्य परिवार के धनी व्यक्ति ही काव्य के नायक और नायिकाएँ बनीं। उस समय संस्कृत साहित्य के महाकाव्य अथवा अन्य काव्यों में धीरोदात्त आदर्श व्यक्ति ही नायक व नायिकाएँ बन सकते थे। उस विचारधारा से हटकर तमिल में प्रचलित लोक-वार्ताओं के आधार पर महाकाव्य की रचनाएँ हुईं।

नलंगु गीत—विवाहोत्सव में नलंगु नाम का गीत गाया जाता है। इस नलंगु गीत में कृष्ण सम्बन्धी गीत अधिक प्रचलित है। यह पौराणिक गीत जनमानस में स्थायी भाव उत्पन्न करने में सफल होते हैं। नलंगु एक प्रकार का खेल है। वर-वधू एक दूसरे को जानने के लिए यह बहुत उपयोगी है। इन गीतों में कृष्ण और गोपिकाएँ केन्द्रित होती हैं। बाल-लीला सम्बन्धी वर्णन इस अवसर पर गाया जाता है।

वैकुण्ठ एकादशी—मार्गशीर्ष मास में शुक्ल-पक्ष के आरम्भ से लेकर बीस दिनों तक श्रीरंगम के मन्दिर में एक महोत्सव होता है। श्रीरंगम तमिलनाडु के परम-पुनीत वैष्णव-धाम है। दसवें रोज के एकादशी महोत्सव में लाखों लोग सम्मिलित होते हैं। इस अवसर पर आल्वार संतों के समस्त चार हजार पदों का पारायण होता है। अठारहवें रोज तिरुमंगै आल्वार के साथ भगवान कृष्ण (रंगनाथ) की मुठभेड़ का निरूपण होता है और बीसवें दिन इसी आल्वार संतों

द्वारा चलाए गए तिरुवायमोळि समारोह से उत्सव की समाप्ति होती है। ग्यारहवें दिन स्वर्ग द्वार खुलता है। उसके बाद जुलूस निकाला जाता है। इस उत्सव में कृष्णलीला प्राधान्य है। कृष्ण को रंगनाथ के नाम से यहाँ के लोग श्रद्धा भक्ति से पुकारते हैं। आण्डाल और रंगनाथ का पाणिग्रहण उत्सव भी होता है। आण्डाल को हम गोदा देवी के नाम से पुकारते हैं। नाच्चियार तिरुमोळि आण्डाल का प्रसिद्ध काव्य है। यह भी लोक-वार्ता पर ही आधारित है। श्रीविल्लिप्पुत्तूर मदुरै के पास है। आण्डाल के विरह गीत, स्वप्न गीत, विवाह के अवसर पर गाए जाने वाले गीत ये सब कृष्ण के लोक-वार्ता से सम्बन्धित हैं। इसे लोग आज भी उत्सव के साथ गाते हैं।

कृष्ण जयन्ती—(जन्माष्टमी) भगवान विष्णु के कृष्णावतार लेने के उपलक्ष्य में विष्णु मन्दिरों में और शैव-वैष्णव दोनों के घरों में कृष्ण जयन्ती जिसे जन्माष्टमी कहते हैं, मनाया जाता है। प्रत्येक घर बालकृष्ण के चरण चिह्नों की रंगोली से सजाया जाता है। घर में विशेष पूजा होती है और बच्चों को कृष्ण और राधा के वेष से सजाकर आनंद लेते हैं। स्कूलों में बालकृष्ण की साज-सज्जा पर स्पर्धाएँ होती हैं।

गाँवों में इसको दूसरे ढंग से मनाते हैं। छाछ भरी मटकी के मुँह पर पीला कपड़ा बाँधकर उसे बाँस के ऊपर बाँध दिया जाता है। एक व्यक्ति घिरनी की सहायता से मटकी को ऊपर-नीचे करता रहता है। बच्चों के हाथ में मटकी को फोड़ने के लिए एक-एक डण्डा दे दिया जाताहै। जैसे ही कोई मटकी को फोड़ने का प्रयत्न करता है, तो उसे ऊपर की ओर खींचकर उसकी पहुँच के बाहर कर दिया जाता है। लीला का दर्शन करने वाले भक्तगण ग्वालबालों की पोशाक पहनकर कृष्ण के इन सखाओं पर केसरिया पानी और गुलाल छिड़कते रहते हैं। डोरी से मटकी को ऊपर खींचने वाले का ध्यान

कुछ इधर-उधर होने पर या किसी ग्वाले द्वारा ऊँचा उछलकर वार करने पर मटकी अन्त में फूट जाती है। फोड़ने वालों को विजेता (कृष्ण) घोषित किया जाता है। इस अवसर पर कृष्णलीला के गीत गाए जाते हैं।

विल्लुप्पाट्टु—यह प्राचीन तमिल प्रजा की सांस्कृतिक समृद्धि के प्रतीक रूप अब भी सुरक्षित रहने वाला लोक संगीत का एक अनूठा सरल और आकर्षक प्रकार है। विल्लुप्पाट्टु का अर्थ होता है धनुष-गीत। धनुष आकार का एक बहुत बड़ा वाद्य है। दोनों तरफ घड़े हैं। इसमें कई घुँघरू लटके रहते हैं। इस वाद्य के कोने में मध्य भाग में गायक बैठे रहते हैं। इस वाद्य के माध्यम से कृष्ण सम्बन्धी गीत गाँवों में गाए जाते हैं। रामायण या महाभारत पर आधारित कथाएँ एक बार आरम्भ होने पर तीन-चार दिन तक चलती रहती हैं। कृष्ण गीतों में प्रमुख रूप से बालकृष्ण की लीलाओं का वर्णन बहुत रोचक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। ग्रामीणों में प्रचलित मुहावरे कहावत के माध्यम से गीतों के धाराप्रवाह छन्दों में बाललीला का वर्णन किया जाता है। सामूहिक गान के द्वारा बाललीला का वर्णन होता है। धनुष गीतों में अलौकिक तत्त्वों का सहारा बहुत आसानी से किया जाता है।

लावणी—लावणी में भी संगीतमय वाद-विवाद होता है। इसका स्वरूप तंजाऊर जिला, तिरुच्ची जिला और मदुरै तक ही सीमित है। इसका आयोजन अप्रैल-मई में वसन्त के आगमन का संदेश देने के लिए होता है। खण्डन-मण्डन के दौरान धर्म और नीति सम्बन्धी विचार भी लावणी में प्रस्तुत किए जाते हैं। लावणी का स्रोत महाभारत काल से माना जाता है। इसका विकास तंजाऊर के मराठा शासक राजा सरफोजी के समय में हुआ था। इसमें अधिकतर शोक गीत गाए जाते हैं। कंस-वध का वर्णन प्रमुख रूप से गाया जाता है।

कोलाट्टमः—'कोल' शब्द का अर्थ है छोटी-सी डण्डी। 'आट्टम' का मतलब है खेल। इसकी तुलना गुजरात के 'गरबा' नृत्य से की जाती है। यह वास्तव में नृत्य-संगीत है। अन्य पौराणिक कथाओं के साथ यशोदा के वात्सल्य स्वरूप का, कृष्ण के मचलने का, चंदा मामा आदि अनेक प्रकार के खेलों का वर्णन इस कोलाट्टम में किया जाता है।

हरिकथा कालक्षेपम्—इसका प्रचलन तंजाऊर के मराठा शासकों द्वारा हुआ था। इस कथा के विद्वान् कई भाषाओं के ज्ञाता, रामायण-महाभारत की कथाएँ जानने वाले होते हैं। वाक्पटुता के द्वारा विद्वान् श्रोताओं को अपने वश में कर लेते हैं। अन्य कई पौराणिक कथाओं के साथ सीता कल्याणम, रुक्मिणी कल्याणम, राधा कल्याणम, कृष्ण की बाल लीलाएँ आदि इस हरिकथा के वर्ण्य वस्तु हैं। गायक उतार-चढ़ाव द्वारा विभिन्न पात्रों के कथोपकथन का निरूपण करता है। महाभारत की कथाओं में रुक्मिणी कल्याण (रुक्मिणी विवाह) बहुत प्रसिद्ध है। रुक्मिणी हरण के बाद कृष्ण का रथ भयावह तेज गति से भागता है। उस समय रथ के पहियों की जो द्रुत घरघराहट होती है उसे संगीत और शब्दों की द्रुत लय की सहायता से ज्यों का त्यों निरूपित किया जाता है।

आजकल राधा कल्याणम बहुत प्रसिद्ध है। इसमें रासलीला, कृष्ण-राधा का प्रेम, बाल लीला का वर्णन, माखन चोरी आदि वर्णनों के साथ राधा-प्रेम को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। यह प्रवचन अधिकतर वयस्क लोगों के मध्य होते हैं। तमिल में सभी पौराणिक कथाएँ इस हरिकथा के माध्यम से होती हैं। हजारों की संख्याओं में लोग प्रतिदिन उपस्थित होकर हरिकथा को सुनते हैं।

लोकोक्तियों और मुहावरों में कृष्ण—

लोकोक्तियाँ, मुहावरों और चुटकुलों में कृष्ण प्रसंग अधिक

सुनाए जाते हैं। चुटकुले किसी मार्मिक, रोचक प्रासंगिक सत्य को व्यक्त करने का कलात्मक प्रयोग है।

इस प्रकार तमिलनाडु में अनेक अंचल हैं, जहाँ कृष्ण (कृष्णन) के लोक-गीत, लोक-वार्ताएँ बिखरे पड़े हैं। इन लोक-गीत व लोकवार्त्ता के माध्यम से ही तमिलनाडु की संस्कृति पनपी है, विकसित हुई है।

●●

गुजराती लोक साहित्य में श्रीकृष्ण

❀ डॉ० विष्णु विराट चतुर्वेदी

दक्षिण से उपजी भक्तिधारा का सर्वाधिक संवर्द्धन गुजरात में ही हुआ है। यह पौराणिक प्रमाण भी है। यहाँ सर्वधर्म उपासना का सौहार्द्रपूर्ण आत्मीय वातावरण रहा है। शैव और शाक्त धर्म के साथ गाणपत्य उपासना भी लोकप्रिय रही है किन्तु वैष्णव धर्म का प्रसार यहाँ सर्वोपरि ही रहा है।

भगवान श्रीकृष्ण जब ब्रज से द्वारका पधारे तो अपने साथ ब्रज संस्कृति और ब्रज संस्कार भी ले आए थे, ब्रजवासियों के साथ उनके आचरण और प्रवृत्तियाँ भी यहाँ चली आई थीं। यही प्रवृत्ति धीरे-धीरे जनाग्रही रुझान के साथ पल्लवित होकर यहाँ की मुख्य भक्तिधारा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई। बाद में श्रीमहाप्रभुजी वल्लभाचार्य ने यहाँ श्रीकृष्ण भक्ति की रस-धारा को लोक मांगल्य के साथ यहाँ की संस्कृति में समाविष्ट कर दिया। इससे यहाँ की मूल संस्कृति और सम्पदा में भी श्रीकृष्ण भक्ति की प्रभावान्विति परिवर्द्धित होती गई।

गुजरात के लोक साहित्य में श्रीकृष्ण भक्ति धारा के समन्वय के साथ श्रीकृष्ण की माधुर्य लीलाओं का लोक संस्कृति में समावेश होने लगा। यहाँ लोक गान एवं लोकगीतों की मुख्य धारा गरबा गीतों तथा गरबा नृत्यों में प्रवाहित है।

''गरबा'' शब्द एक विशिष्ट घड़े का पर्याय है, जिसमें छिद्र रहते हैं, मध्य में दीप प्रज्ज्वलित रहता है और जिसे सिर पर रखकर समूह नृत्य किया जाता है। यह देवी की उपासना की एक विधि है,

जो लोक मांगल्य के रूप में नवदुर्गा पर्व में प्रचलित है।

इन गरबा गीतों के प्राचीन रूपों में तो देवी की वंदना के स्वर ही मुखर रहते थे किन्तु कालान्तर में इन अधिकांश गीतों में कृष्ण-लीला के कथानक समाविष्ट हो गए। आज के गरबा साहित्य का अधिकांश भाग इसी कृष्णलीला में सराबोर है। यहाँ के गुजराती लोक साहित्य में भी यही वैष्णव भक्ति के स्वर सर्वोपरि मुखर हैं। यहाँ के अधिकांश गुजराती लोक साहित्य में भी श्रीकृष्ण की लोकरंजक लीलाओं का सन्निवेश है।

गुजराती के मुख्य लोकप्रिय कवियों में भालण, अखा, प्रीतम, माधवदास, बुटियोभक्त, जीवराज, रघुनाथ दास, द्वारको, ब्रह्मानन्द, दयाराम, नष्कुलानंद, मुक्तानन्द, मनोहर स्वामी, केवलराम, रणधीर प्रीतम, राजे, भट्टवल्लभ, शामदास, केवलराम, नरभैदास, प्रेमानन्द, कालिदास, गवरी बाई, जीवणदास, गोविन्द दास, इच्छा बाई, धीरो-भगत, मंजुकेशानंद, अग्रदास, काशीदास, गोकुलदास, जानकी बाई, जेठी बाई, धर्मदास, नाथस्वामी, नामदेव, कृष्णदास, नित्यानन्द, सुन्दरम् आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

गुजराती लोक साहित्य में विशेष रूप से गरबा गीतों, कीर्तन, पदों, भजनों, घनाक्षरी छन्दों आदि में जो भक्तिभाव व्यक्त हुए हैं, उनमें अधिकांशतः श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं के ही परिदृश्य विद्यमान हैं। इनमें यशोदा, नन्दराय, बलराम, गाय, ग्वाल, सखी, ब्रज महिमा आदि के वर्णनों में कृष्णलीला प्रसरित हुई हैं। प्रीतम कवि कहते हैं—

हरि को मारग छे शूरानो, नहिं कायरनुं काम।
प्रथम पहेलु मस्तक मूंकी, वणती लेवुं नाम जेने।
सुतिवत्त दारा शीश समरपे, ते माने रस पीवा जेने।
सिन्धु मध्ये मोती लेवा, मांही पड्या मरजीवा जेने॥

अर्थात् श्रीकृष्ण की भक्ति का मारग तो वीरों का है इस मार्ग

में कायरों का काम नहीं है, पहले तो पत्थर पर माथा रखा जाता है, फिर इसका नाम लिया जाता है, जो व्यक्ति श्रीकृष्ण के चरणों में अपने पुत्र, धन, पत्नी तथा शीश को समर्पित करके आता है, वही इसका रसपान कर सकता है अर्थात् जो व्यक्ति भौतिकी सौख्य एवं सम्पत्ति को त्यागकर आता है वही इसका सच्चा रसपान कर सकता है, जो सागर में भयमुक्त होकर तलस्पर्श करके कूदता है, वही सच्चे मोती प्राप्त कर सकता है। लोकप्रिय कवि मालय कहते हैं—

भैया बावरी थई, माता बावरी थई।
लूगठे लपेट्यो सास दीठो नई।
शिव सनकादिक ऐम कहे छे, व्याख्या चोदह लोक।
केश आवै नेत्र आडे ते ऊँचौ करे लोक....

अर्थात् मैंने तो हरि भक्ति की यज्ञाग्नि में अपना सारा संसार होम कर दिया है और उसी होम यज्ञ की राख अपने हृदय में बसा ली है।

श्रीकृष्ण की मथुरा गमन लीला को काव्यांकित करते हुए लोककवि मालण करते हैं—

ऐसी बाटें न जइये बाई, नंद कुँवर रहे छे।
वंशीवट नी बाट मां ऐने मांडी छे खंछाई।
कंसराय ने मन ना आणे, वणीया छे बे भाई।
राधा सखी रूपे रूडी छे, व्रज नी चतुराई।
चालो नां आपण सघणां जइये, जमना जी ने घाट।
भालण प्रभु राधानाथ जीनो जोइये ठाट॥

अर्थात् वहाँ से सखी मत गुजरना, वहाँ नंदकुँवर रहते हैं, जिन्होंने वंशीवट की राह में यह कुटिया डाली है, कंसराय के मन में भी इन दोनों भाइयों ने भय पैदा कर दिया है। इनके साथ राधा जी भी हैं, जो ब्रज की सम्पूर्ण चतुराई को लेकर आई हैं, चलो चलो, हम

सब तो अब यमुना जी के घर पर चलती हैं, वहीं राधानाथ श्रीकृष्ण के ठाट देखने की प्रतीक्षा करेंगी।

दानलीला के प्रसंग पर कवि मालण कहते हैं—

ऊभी रहे हे अहीरडी, तू बोलता बांका बोल।
तारी आँखडी ने में ओखडी रे, ऊपर नहिं कोनी तोल
दाण लागे आ ठांव नुं, अहीं नहीं कंस नुं लाग।
वण पिच्छे आवे नहीं, आवे तो मारौ भाग।

अरी चतुराई भरे बाँके बील बोलने वाली, तू अहीर की छोरी, जरा खड़ी रह, मैं तेरी आँखों की भाषा समझ गया हूँ, इसकी कोई बराबरी नहीं है, यहाँ हमारा दान लगता है, यहाँ कंस का कोई अधिकार नहीं है। आज तो तू दान देकर ही जा सकेगी, फिर तो तू आवेगी नहीं और आ भी गई तो मेरा सौभाग्य होगा। वहाँ राधा कहती है—

छबीला नन्द ना रे, तारी चालनो चटको जो,
छोरा अहीर ना रे, तारो मुखनो मटको जो।

इस नन्द के छबीले लाल की चाल का चटका तो देखो, इस अहीर के बेटे के मुख का मटकना तो देखो।

ऊखल बंधन यमलार्जुन लीला के संदर्भ में कवि कहता है—

जसोदा छोड़ो सुन्दर श्याम ने
कठण दामणु खूँचे कोमल अंग।
नयने हो आँसू बहु झरे छे, देखि अति दांझे मारे मन।
व्हाला छे आखा गामनुं, कहो केटलुं कीधुं छे ऐणे जांण।
अमो सर्वे मणीने आपीए, जो वण सादयुं होय श्याम।

अर्थात् यशोदा अब इस श्याम को छोड़ दो कठिन रस्सी से बाँधे जाने पर इसके कोमल अंग छिल रहे हैं। इसकी आँखों से झरते हुए आँसू हमारे मन को जलाकर राख कर रहे हैं, यह तो पूरे गाँव का

प्यारा है, तू कह कि श्याम ने तेरा कितना नुकसान किया है, हम सब मिलकर इसकी पूर्ति कर देंगी, तू इसके हाथ पाँव खोल दे।

वैसे तो गुस्सा करके यशोदा-कृष्ण को दण्ड देती हैं किन्तु आँखों से जरा भी ओझल हो जाने पर वह विह्वल हो उठती है—

सखी हूँ शू करूँ, घडिये ना रहे घेर रे।
ब्रह्मादिक जाणे नहिं रे, मारा पुत्र तणी तो पेर रे।
कान्ह कान्ह करती हींडु रे, घेरे घेर चाली जाती रे।
क्यां गयो मारो नानडियो जेने नाके निर्मल मोती रे।

अरी सखी अब मैं उसे कहाँ ढूँढूँ? ब्रह्मादिक को भी उसका पता नहीं है, मैं घर-घर जाकर देख आई, वह छोटा-सा बेटा है मेरा जिसके नाक में निर्मल मोती की बुलाख लटक रही है।

इसी प्रकार

- **सखी माने ह्वाली लागै नंदकुंवरनी चाल,**
- **जुओ रे जसोदा, कुंवर तमारो, कौतुक कीधो रे,**
- **यमुना जल हाले नहिं, सूर्य रह्यौ थिर स्थान।**

मोरली सुनता मोहि रह्या, सांभणी सुन्दर गान।
लोकलाज में परि हरी, सोप्यो रे एने सरीर।
मोरली परबस थई आतमा, राख्यो ते न रहे धीर।

भालण की ही तरह अन्य अनेक कवियों ने श्रीकृष्ण की लीलाओं का लोकरंजक रूप में बखान किया है।

माधवदास कहते हैं—

श्रीनंदग्वालकुल घेर प्रगटिया श्री गोकुलना नाथ रे।
ऐवा प्रभु ने न ओणख्या, वणता घँसता बे हाथ रे।
ब्रज नी रज मां लोट्या नहिं, ना कर्यो जमुना-पान।
मोहन बगाडे रे बाँसुरी, सन्मुख धर्या नहिं कान।
कालिन्दी ने कांठा रे, सुन्दर यमुना नो तीर।
गिरिधर गायो चरावता, साथे जोया हलधर वीर।

बुटियो भक्त की वाणी देखिये—

मारो मन वृन्दावन मां भूल्यां।
नंदनंदन आनंद कंद सँग, सुरँग हिडोरा झूल्यां।
साथ गोकुल जोए जसोदा, आवो व्हाला मोहन।
वृन्दावननी कुंज गलिनमां, केम करो गो-दोहन।

जीवनराम कवि कहते हैं—

रणछोड रँगीला रे, ताहारे मस्तक झलके मोण।
ऊपर मुगुटा अति मल्यो, कांई नमणा रातां चोण।
नासा बेसर वारु लागे रे, दीठडे भव दुख जाय।
कर बाजूवंद, कटिकंदरो, गाल गुलाल लखाय।
गणे गलूबंध, शोभीए, ऊपर झोपे हार।
मुक्ता फल माणेक अधिराजे, शोभानो नहिं पार,
वसन अनुपम पेहेरे रे, ओठण नव रंग अंग।
सतभामा ने रुकमणी राणी, सोभे तारे संग।

रघुनाथदास कहते हैं—

ओधवजी, संदेशो कहेजो श्याम ने।
मारा समजो मूकी मन ने मेल जो।
कानुडो कपटी रे, आवडो केम थयो?
छल करी ने छेतिरया नहि छैल जो।

इसी प्रकार—

तारा बांसुडी मां नाँचे मन-वृन्दावन।
मारा व्हाला नंदलाल, तारा गालनुं गुलाल।
तेने शोधी शोधी थाकी गई, गोकुल मधुवन।

गुजरात के लोक गायक प्रख्यात कवि द्वारको कहते हैं—

व्रज मां थयो आनंद, ज्यारे बात सुनी।
आनंद्या लोक अपार, गोकुलना गुणी।

व्रज मां पूरब नुं पुण्य, गाता देव मुनी।
गृह लग्न नक्षत्र शोधी, वागे छे वेदधुनि।

प्रीतमदास गुजरात के प्रतिष्ठित लोक कवि हुए हैं। उनका एक उत्कृष्ट लोकपद देखिए (नखिशख वर्णन)—

सुरभी सँग साँवरियो आवै, जेम उडुगन सँग इन्दु रे।
बाल-मराल विशाल मंडली, चरण कमल रज बिन्दु रे।
फुलित कमलदल, ध्रुज जव जांबुफल, चेहे न खटरस-जोय रे।
हाटिक तडित उडित रविरंगे, अंग पितांबर सोह रे।
केसरिया लंक अलंकृतभूषण, भुज अंबुज नख जोती रे।
बदन सुधाकर सुंदर सोभे, श्रमजल निर्मल मोती रे।
अरुण अधर धर मधुर मोरली, प्रेम पास बोलवे रे।
रस भरी लोचन, भवमय मोचन, आनँद अति उपजावे रे।
मृगमद चंदन तिलक विराजे, तेनो तो तेज अपार रे।
मुगट मणीमय पै मोरचन्द्रिका, इन्द्र धनुष आकार रे।
नखशिख रूप नाथनुं निरखी, राख्युं हृदय मां झार रे।
प्रीतमनुं प्रभु प्रेम स्नेही, प्राण तण्यो आधार रे।

इसी प्रकार ब्रह्मानन्द कवि कहते हैं—

चालो चालो मणी ने साथ, वृन्दावन जईये रे।
सखी छैल छबीला नो साथ, हणी मणी गईये रे।
व्हालो जूए छे आपणी बाट, ऊभा छे बन मां रे।
सखी आपणी साथ इकांत, मण्या मारा मन मां रे।
व्हाला मोरली लई छे हाथ, बगाडे छे घेरी रे।
आवी ऊभा छे जमना नां तीर, पीताम्बर पेरी रे॥

गुजरात को लोकप्रिय तथा आचार्य कवि दयाराम की वाणी आजतक गुजरात के लोक प्रांगण में गूँज रही है उनका एक प्रसिद्ध लोक पद देखिये—

स्याम रंग समीपे न जावुं मारे आज थकी श्याम रंग समीपे....
जेमा कणास, ते सरु एक सरखूं, सर्व मां कपट घे्रो आववुं।
कस्तरी नी बिन्दी हूं करूँ नहीं, काजल ना आँख मां आंजावुं।
कोकिला नुं शब्द सुणुं नहीं, कागवाणी शकुन न लावुं।
नीलाम्बर काली कंचुकी न पेहेरूं, जमना न नीर मां न न्हावुं।
मरकत मणी, ने मेघ दृष्टे न जोवुं, जांबु फल ने न खावुं।
दयाराम प्रीतम साथे नैम लीधो, पण मन कहें पलक न नभावुं।

गुजरात के लोक साहित्य में कृष्ण के वर्णन ब्रज के लोक-गीतों से अधिक प्रभावित हैं। इन लोकगीतों पर श्रीमद्भागवत कथा का तथा शैली पर ब्रजभाषा के अष्टछाप-कवियों का भी प्रभाव है, विशेष रूप से सूरदास तथा मीरा के पदों का तो प्रभाव प्रत्यक्ष ही देखा जा सकता है।

●●

गढ़वाल में गिरिधर

❀ डॉ० उर्मिल कुमार थपलियाल

मध्य हिमाचल क्षेत्र में स्थित गढ़वाल का अंचल अपने भौगोलिक, ऐतिहासिक और पौराणिक महत्त्व के लिए आदरणीय रहा है। गंगा-यमुना सहित कई पावन नदियों की जन्मस्थली होने के अतिरिक्त यहाँ के स्वर्गिक स्थलों पर चारों धाम और अनेक ऋषियों के आश्रम रहे हैं। आर्य संस्कृति का श्रीगणेश भी यहीं हुआ। वेदों का हिमवंत भी यही है। वेद, पुराण, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में गढ़वाल की गौरव गाथा विस्तार से कही गई है। केदारखण्ड के इस विशिष्ट अंचल की पहचान यहाँ की प्राकृतिक छटा से भी है। गढ़वाल के लोकमानस में अर्चन पूजन पद्धतियों के साथ अनेक अवतारों व स्थानीय देवी-देवताओं के आह्वान की परम्परा है। यहाँ शैव, शाक्त, वैष्णव, देवी, देवताओं के साथ यक्ष, किन्नर, खस और नाग देवताओं का पूजन होता रहा है। अध्यात्म के साथ ही यहाँ भूत, प्रेत, पिशाच, सय्यद का पूजन तथा तंत्र विद्या का प्रचलन भी विशिष्ट है। आस्था, विश्वास और धर्म के प्रति आदर भाव रखने वाले गढ़वाल क्षेत्र की अभिव्यक्ति की सभी विधाओं में देवताओं की स्मृतियाँ रही हैं, यह क्षेत्र महाभारत के अनेक प्रसंगों का साक्षी है, शिव और शक्ति की प्रधानता के इस क्षेत्र में इतिहास अनेक प्रतीकों में आज भी दृश्यमान है।

गढ़वाल के देवी-देवताओं सम्बन्धी गीतों के पूजन पद्धतियों में आंचलिकता जुड़ जाने से अनेक स्थानीय सम्बोधन विशिष्ट हो जाते हैं। वे देवता मानवीकृत हो जाने से लोकचेतना के और अधिक

निकट हो जाते हैं। गढ़वाल की लोक परम्परा में कृष्ण को नागर्जा याने नागराजा, विष्णु को नरसिंह, शिव को निरंकार, नंदा को देवी और भैरवनाथ को भैरों कहा जाता है। पूजन, अर्चन व आह्वान के जागरण गीतों के समय यह प्रथा एक प्रकार से आस्था का अतिरेक प्रतीत होता है। इन्हें विशेष अवसरों पर नचाया जाता है और मनौती माँगी जाती है।

नागर्जा (कृष्ण) की जीवन गाथा यहाँ वसुदेव देवकी के पुत्र के रूप में है। उनका लीलावर्णन मुख्यत: **जागरों** याने जागरण गीतों में है। जागर का **पस्वा** (कथागायक) अपने विशेष आंगिक व वाचिक शैली में कृष्ण शैली के प्रसंगों को अवतरित करता है। एक अंश प्रस्तुत है—

जमुनावर होलो कंस को कंस कोट,
जमुनापार होलो गोकुल बैराट।
कंस कोट होलो राजा उगरसेन,
तौ कि राणि होली राणि पवन रेखा।
बांई कोखि पैदा होंइन हरिणाकंस,
दैणी कोखि पैदा देवतुली देवकी।
ओ मदु बामण लगैन भेद दो,
आठों गर्भ होलो कंस को छेदक।

गढ़वाल में नागर्जा को पुशधन के देवता (गोपाल) के रूप में भी पूजा जाता है। इसे बालण देवता भी कहते हैं। नागर्जा की पूजा **रैक** कही जाती है और पूजा के प्रसाद के रूप में पवित्र रोटी, यानी रोट बाँटा जाता है। गढ़वाल में कृष्ण का लौकिक स्वरूप अधिक पूज्य है। कहा जाता है कि एक समय द्वारिका की दिनचर्या से ऊबकर कृष्ण गढ़वाल चले आए और जिस स्थान पर उन्होंने निवास किया वह स्थान **सैम-मुखेम** आज भी है। उस समय वहाँ का राजा **गंगू**

रमोला था। गंगू रमोला और उसका पुत्र **सिद्धा** कृष्ण के परम भक्त हो गए। गढ़वाल में कृष्ण की जागर के साथ सिद्धा का जागर भी चलता है। कृष्ण की जागर में कृष्ण की पराक्रम गाथाओं के साथ उनकी प्रेमलीलाओं के प्रसंग भी हैं। इन जागरों में राधा के बजाय **रुक्मिणी चंद्रावली** और **सत्यभामा** को अधिक महत्व दिया गया है। कृष्ण की रसिकता के स्थानीय प्रसंगों में—**कुसुमा कोलिन** और **सुजू की सोनारी** की गाथा भी जागरों में मिलती है जागरों के गीतों में कथा वर्णन तो रहता ही है किन्तु उसकी पढ़ंत शैली के संगीत में भी आकर्षण रहता है। कृष्ण जन्म के जागर गीतों जगरी (कथावाचक) **डौर और थाली** की ताल के साथ इन शब्दों में कहता है—

हो वासुदेव को जायो प्रभू जसौदा को बालो,
देवकीनन्दन प्रभो, द्वारिका नरेष।
भगवत्सल प्रभो, नौछमी नरैण,
भूपति गोपाल प्रभो कृष्ण भगवान।

जागरों की काव्य पंक्तियाँ बहुधा तुकान्त नहीं होती स्थाई पद ही दोहराया जाता है।

हो प्रगट ध्वे जाण प्रभो,
धर मेरा भग्यान अब धर्म को औतार।
सी लीला कंगस ह्वेसे मारि अत्याचारी,
वो पापी कंगसू को प्रभो करे सर्वनास।

इस जागर में कृष्ण जन्म की कथा पूरे विस्तार से चलती है। इसके बाद जागार में **कन्दुक क्रीड़ा, माखन चोरी, दधि मंथन** प्रसंग कहे जाते हैं। डौंर थाली में कई तालों का प्रयोग होता है। एक गीत इस प्रकार है—

छयां धेत्र का चरैय्या-हे मोहना
ह्वेला द्वारिका नंदना-हे मोहना

छयां वासुदेव जाया-हे मोहना,
ह्वेला देवकी का लाडा-मोहना।
त्यारा कानु का कुन्डला-हे मोहना,
ह्वेला फूलू का होंसिया-हे मोहना।

इन कथाओं में स्थानीय पुट भी रहते हैं—जैसे रुक्मिणी-हरण से पूर्व कृष्ण और रुक्मिणी के संवादों में नदी उतराई के दृश्य। जीजा साली के इस तरह के प्रसंग गढ़वाली गीतों की परम्परा में अग्रणी रहे हैं। पुराणों में रुक्मिणी को प्राप्त करने के लिए कृष्ण को काफी संघर्ष करने पड़े थे। किन्तु गढ़वाली जागरों में उनके संघर्ष के वर्णन नहीं हैं। वहाँ **प्रेम, शृंगार, ताने, उलाहनों** का वर्चस्व है। रुक्मिणी हरण की तरह कृष्ण की जागरों में चंद्रवली हरण की कथा भी गायी जाती है। इनमें चंद्रावली को रुक्मिणी की बहन बताया गया है। इन जागरों में नाटकीय तत्व तो हैं ही किन्तु मानवीय तत्त्व भी अपनी स्वाभाविकता और सहजता के साथ उपस्थित है।

कुसुमा कोलिन की जागर गाथा में कोलिन जाति की सुंदरी कुसुमा पर कृष्ण के मुग्ध होने की कथा है। यहाँ कृष्ण कुसुमा के सुनहरे बालों की लट पर मोहित हो जाते हैं। इस कथा में कृष्ण द्वारा **मुर्गे को कलगी** का वरदान देने और **हल्दी की झाड़ी** को हमेशा शुभ कार्य की सूचक होने का आशीष देते हैं। इसी तरह सुजू की सुनारी-गाथा में कृष्ण कथा के कई स्वरूप हैं। **नागकन्या पत्थरमाला** के स्वामी के रूप में भी उन्हें नचाया जाता है। गढ़वाल में कई गिरी पर्वत हैं। कृष्ण तो हैं ही गिरधारी किन्तु यहाँ कृष्ण ने **कोई गोवर्धन** नहीं उठाया। उन्हें तो यहाँ के गिरिजनों ने अपना गोवर्धन स्वीकार किया है। वहाँ कृष्ण केवल इतिहास में नहीं स्मृतियों में भी हैं। गढ़वाल में नागर्जा को **नगेला** भी कहा जाता है। किन्तु यहाँ नगेला अलग से भी नचाया जाता है। कृष्ण कथाओं में नागों की भूमिका महत्वपूर्ण रही

है, श्रीमद्भागवत पुराण में जब वसुदेव कृष्ण को सर के ऊपर टोकरी में लिटाकर यमुना पार करते हैं तो शेषनाग अपने फण फैलाकर उन्हें सुरक्षा देते हैं। इसी तरह कृष्ण द्वारा **कालिया मर्दन** कथा भी यह सिद्ध करती है कि नागों ने कृष्ण को अपना राजा होने का सम्मान दिया था। इसीलिए यहाँ कृष्ण को नागराजा कहा जाता है। वैष्णव पुराणों में नागों को दो रूपों में वर्णित किया गया है। प्रमुख देव के रूप में जैसे **कृष्ण और बलराम** और परास्त या अधीनस्थ रूप में। इसका स्पष्ट आभास विष्णु के शेषशायी रूप में और कृष्ण के **कालिया मर्दन** रूप से हो जाता है। गढ़वाल में **नगेला** को धन व समृद्धि का देवता भी माना जाता है। गढ़वाल के टिहरी जिले के कुछ भागों में नगेला की पूजा में कृष्ण के जागर नहीं लगते। **द्यूल** नाम का स्थान को नगेलों का मुख्य स्थान माना जाता है। लक्ष्मण और बलदेव को शेषनाग का अवतार कहा जाता है। वैष्णव व नागपूजा की भावना यहाँ एक साथ है। शेषनाग की शैय्या पर विष्णु हैं और कृष्ण को विष्णु का अवतार भी कहा जाता है।

गढ़वाल में **राधाखंडी नृत्यगीतों** की भी परम्परा है। यह लास्य प्रधान हैं। कृष्ण और राधा की प्रणय लीलाओं के यह गीत यहाँ के **मिरासी और बद्दी** जाति के कलाकारों में अधिक प्रचलित हैं। ये गीत अधिकतर बसंत ऋतु के आसपास नाचे और गाए जाते हैं। कृष्ण और राधा पर आधारित होने के कारण ही इसका नाम राधाखंडी पड़ा। पेशेवर मिरासियों और बद्दियों ने इन गीतों में श्रृंगार और विलास को प्राथमिकता देकर राजाश्रय प्राप्त किया था। अक्सर इन्हें युगल रूप में गाया नाचा जाता है। इसके कलाकार चूँकि गायन व नृत्य में निपुण होते हैं। अतः इनके प्रदर्शन के समय अक्सर एक मनोरंजक लोकदृश्य उपस्थित हो जाता है। जैसे—

कृष्ण — **तेरा खुट्यां का घुंघरू वाजा - छन, छन, छन, छन**
तू भली छै राधा बाना - छन, छनाछन, छन

राधा — **तू बड़ो हाँसिया कान्हा - छन, छनाछन, छन**
तू बड़ो रंगीलो कान्हा - छन, छनाछन, छन

राधाखंडी गीतों में केवल राधा नहीं बल्कि रुक्मिणी के भी संवाद हैं—

तुमी छवा मेरा पति - श्री कृष्ण कन्हैय्या
रुक्मिणी की अर्जे सुणा - कृष्ण कन्हैय्या
बलापन से बृजवासी तेरी सेवा करीब छ
सीन्द उठत बखत नाथ तेरी माला बणी छ।

राधाखंडी गीत वृत्त में न होकर आमने-सामने गाए व नाचे जाते हैं। इनमें बीच-बीच में हास्य का पुट भी होता है। गढ़वाल में पाँच प्रकार के देवी-देवता हैं—वेदकालीन, पौराणिक, नाथपंथी, स्थानीय और भूत-मसाण आदि। यहाँ के शिव मन्दिरों में केदारनाथ श्रेष्ठ हैं इसी प्रकार विष्णु मन्दिरों में बद्रीनाथ सर्वश्रेष्ठ हैं। बदरी नाथ में विष्णु नरसिंह के रूप में विराजमान हैं। आदि बदरी में भी भगवान विष्णु विराजते हैं। इसी क्षेत्र में रामगंगा के स्रोत पर राम का मन्दिर है। योगबदरी का मन्दिर पाण्डुकेश्वर में है, जहाँ पाण्डवों ने पूजा की थी। **चकरेडा** की नगेला पूजा प्रसिद्ध है और धौलधार में प्रतिवर्ष अप्रैल माह में नगेला मेला लगता है। विद्वानों के अनुसार यह संभव है कि ऋग्वैदिक आदि मानवों और आर्यों की सन्धि के बाद ऋग्वैदिक अट्टियों के अधिपति नागराजा कृष्ण वैष्णवों के आराध्य कृष्ण में परिवर्तित हो गए हों।

पाण्डवों के कई प्रसंग इसी देवभूमि से सम्बन्धित है। गढ़वाल में कृष्ण की उपस्थिति इसी कारण सम्भव है। श्रीकृष्ण की एक बहन **एकनसा** को नागकन्या कहा जाता है। बलराम तो शेषावतार हैं ही।

कहा जाता है कि इसी क्षेत्र में रुक्मिणी के गर्भ से प्रद्युम्न का जन्म हुआ था। कृष्ण भक्तों में यहाँ **सिधुवा विधुआ** और **ब्रह्मकौल** भी चर्चित हैं। टिहरी गढ़वाल के सेममुखेम में नागराजा कृष्ण का मन्दिर है। यहाँ कृष्ण को **रौतेला** या **रसिकराज** कहा जाता है। एक लोक गीत में रौतेला द्वारा पगड़ी बाँधने का करतब है कि—

नारायण रौतेला आदि पगड़ी
अंग मोहि मोहि छेलु हेरि हेरि लांद पगड़ी

कृष्ण की उपस्थिति गढ़वाल के लोकजीवन में बसी है। वे रसिक भाव के शृंगारी हैं। रसिकता उनका स्वभाव हैं। वे प्राकृतिक हैं इसीलिए मौलिक हैं। सरलता, सहजता और स्वभाविकता यहाँ के गिरिजनों का मौलिक गुण रहा है।

गढ़वाल के संस्कार गीतों में भी कृष्ण को याद किया जाता है। इन मंगल गीतों में माता की स्तुति, वेद की स्तुति और फिर कृष्ण की स्तुति भी है। यहाँ **जातक** को **कृष्ण** कहा गया है। यहाँ के धार्मिक गीतों में पाण्डव सम्बन्धी गीत हमेशा रहे हैं। पाण्डवों का जन्म **पांडुकेश्वर** में माना जाता है। महाभारत की रचना यहीं व्यास गुफा में हुई मानी जाती है। पाण्डवों का स्वर्गारोहण भी यहीं केदारनाथ से हुआ था। जौनसार बाबर क्षेत्र में महाभारतकालीन लाक्षागृह के रूप में लाखामंडल आज भी है। यहाँ पाण्डवों का सेर, पाण्डव गाँव और पाण्डव बाड़ी जैसे अनेक स्थानों से पाण्डवों की स्मृति जुड़ी हुई है। महाभारत की कथा सुनाने वाले को **पंडोली** कहा जाता है। कथा वर्णन यहाँ की विशिष्ट शैली में ढोल-दमाऊ के साथ किया जाता है। कहीं यह शैली सवाल जवाब रूप में है।

द्रौपदी अर्जुन सैंया छया
सुपिना मां देखद अर्जुना
बालो वासुदत्ता नागु, को छियाण

समलोक मुखड़ी वी की
अर्जुना सोचण लेगे
कनु कैकि जौलू तख नागलोक मां

जागर गीतों में कई जगह शुद्ध गढ़वाली शब्दों का प्रयोग होता है किन्तु गढ़वाली बोली भी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। अतः बाद में इसमें हिन्दी के शब्द भी आने लगे। गढ़वाल के धार्मिक गीत नृत्यों में—**कुन्ती बाजा, युधिष्ठिर बाजा, अर्जुन, भीम बाजा, द्रौपदी बाजा** और **नकुल सहदेव बाजा** प्रमुख हैं। इन नृत्य गीतों की ताल पद्धति में इन पात्रों के चरित्र के अनुसार परिवर्तन दिखाई देता है। गढ़वाल को प्रसिद्ध **पाण्डव नृत्य** में तो पाण्डवों के स्वर्गारोहण के दृश्य रोमांच पैदा कर देते हैं। ढोल के ताल परिवर्तन, नृत्य की मंथर गति में इतने पैटर्न दिखाते हैं कि पहाड़ों की चढ़ाई, उतराई और विश्राम को अनुभव किया जा सकता है।

गढ़वाल के उत्तरकाशी जिले के हर की दूर में कौरव भी पूजे जाते हैं। यहाँ **दुर्योधन को समसू देवता** कहा जाता है। उत्तरकाशी के नौटवाड़ को कर्ण का क्षेत्र कहा जाता है। यहाँ कर्ण को पाण्डवों की तरह नचाया जाता है। ये पाण्डव नृत्य मार्गशीर्ष माह में प्रारम्भ होते हैं और महीनों चलते हैं। पाण्डव पूरे गढ़वाल में कृष्ण की तरह लोकप्रिय हैं। पाण्डव नृत्य से पहले, जागरों द्वारा पाण्डवों का आह्वान कर उन्हें जगाया जाता है। जिसे स्थानीय बोली में **जाग या बींद** कहते हैं—

हरि हर द्वार जाग
गांव को भूम्याल जाग
धौली पयाल जाग
छेत्र छितरपाल जाग, जाग, जाग, जाग।

इस जागरण के बाद ही वार्ता प्रारम्भ होती है। इन नृत्य गीतों

में कोई भी दर्शक शामिल हो सकता है। पाण्डव यात्रा में सभी यात्री चँवर डुलाते हुए मंथर गति से आरोहण का प्रभाव पैदा करते हैं।

गढ़वाल के होली उत्सव में यदि कृष्ण कहीं हैं तो होली खेलने में। उत्तराखण्ड में होली के नायक-नायिका राधा-कृष्ण ही हैं। यहाँ की होलियों में कृष्ण का लीला भाव है। यद्यपि गढ़वाल और कुमाऊँ की होली गायन में अधिकतर बृज क्षेत्र का प्रभाव है, किन्तु कृष्ण का यह प्रभाव कहाँ नहीं है? कृष्ण तो एक भाव है जो भौगोलिक सीमाएँ नहीं मानता। फिर भी ब्रजमण्डल तो कृष्ण का प्रारम्भ है ही। गढ़वाल और कुमाऊँ की होलियों में कृष्ण अपना स्थानीय रूप ले लेता है किन्तु उसकी छेड़छाड़ तो अखिल भारतीय है। कुमाऊँ की होलियों में ब्रजबोली के शास्त्रीय प्रभाव अधिक हैं। एक दृश्य देखिये—

मलत मलत नैना लाल
सुनो जी नंद लाल।
न मारो, न मारो नयन में गुलाल
मलत मलत नैना लाल

उधर गढ़वाल होली में कृष्ण कुछ द्रुतगति से अवतरित होते हैं। पं० भवानी दत्त सती थपलियाल के प्रह्लाद नाटक में होली का लीला दृश्य इस प्रकार है। यहाँ राधा और कृष्ण के साथ पूरा लोक जीवन उपस्थित है—

होली खेलण तेरो द्वार - आयो किसन मुरारी
संग सखा चतुरंग सजीला
हाथु मां ले पिचकारी
आयो बांके बिहारी। होली........
अपणि सखी संग ठाड़ी च राधा

आंख बचाई, बचाई मारी भरि पिचकारी
होली खेलण तेरो द्वार........

गढ़वाल की लोक संस्कृति में **पंवाड़ों** का एक विशिष्ट स्थान है। ये पंवाडे अधिकता वीर गाथाओं की पराक्रम गाथायें रहीं। इनके विषय महाभारतकालीन हैं। पंवाडों का इतिहास उत्तराखण्ड से लेकर महाराष्ट्र और गुजरात तक है किन्तु पाण्डवों और कृष्ण कथाओं को लेकर यह गाथा गायन शैली मध्य प्रदेश की लोकगायन विधा पंडवानी तक विस्तृत है। गढ़वाल के पंवाडों में भी कृष्ण-पाण्डव कथा के पराक्रमों के उल्लेख हैं। गढ़वाल और कुमाऊँ के स्त्रोत अधिकतर महाराष्ट्र गुजरात और विदर्भ से रहे हैं। अत: वहाँ कृष्ण अपने-अपने आंचलिक रूप में हैं। पंवाडों में नायकों की प्रताप गाथाएँ रहती हैं। कृष्ण का रूप गढ़वाल में सहचर का रूप है। बाँसुरी और अलगोझा में आज भी कृष्ण की टेर है।

●●

ओड़िया लोक नाटक : कृष्ण चेतना

❀ डॉ० शंकरलाल पुरोहित

भारतीय जीवन और संस्कृति का उत्स राम-कृष्ण से है। विष्णु के सहस्र नामों की तरह कृष्ण के सहस्त्राधिक नाम हैं। उत्कल भूखण्ड में हम उन्हें श्रीजगन्नाथ कहकर जीते हैं, हजारों साल से जीते आये हैं। हमारी मान्यता है कि ये द्वापर से भी पूर्व पता नहीं किस युग से हैं। युग-युग में राजनैतिक, धार्मिक आँधियाँ और तूफान आते गए। भगवान के स्थान बदले, पूजा-परम्परा बदली पर्व-त्यौहार जुड़ते गए। इस प्रकार कृष्ण केवल वृन्दावन बिहारी, राधावल्लभ, द्वारकाधीश ही नहीं रहे, हमारे यहाँ सर्वधर्म समन्वय के प्रतीक बन गए। फिर भी लोक जीवन से उनकी घनिष्ठता, आत्मीयता और प्राणबंधुता अक्षुण्ण रही है। तभी तो कृष्ण यहाँ पर 'शास्त्र' से कम और 'लोक' में अधिक रमे हैं, जुड़े हैं, रचे-बसे हैं।

एक बात और स्पष्ट करना जरूरी है। ये जगन्नाथपुरी में हैं, इनके मन्दिर शहरों में हैं। परन्तु उतने ही ये वनवासी जीवन में हैं। यहाँ तक कि इन्हें 'शवर देवता' तक कहा जाता है। 'नीलमाधव' शवरपल्ली से आकर श्रीमन्दिर में जगन्नाथ बने विराज रहे हैं। अर्थात् कृष्ण ठेठ वन क्षेत्र से पूरे नागर निवास तक सर्वत्र सम रूप में विद्यमान हैं; क्योंकि ओडिशा का एक तिहाई क्षेत्र वन-पर्वत निवासियों से आभूषित है। यह गलतफहमी न रहे कि कृष्ण 'नागर' हैं, ग्राम्य या 'वनी' नहीं।

जब लोक-नाट्य की ओर जाते हैं तो यह स्पष्ट है कि लोक जीवन के सरल विश्वास, धर्मीय चेतना और आमोद-प्रमोद की

भावना से इसकी उत्पत्ति और विकास होता है। कुछ में तो संवाद नहीं होते। सिर्फ नृत्य और हाव-भाव से ही मंचस्थ हों, साथ में वाद्ययन्त्रों का जोड़। परन्तु ज्यादातर में अभिनय के साथ संवाद जुड़े होते हैं। ओड़िशा में इसी का प्रचलन अधिक है। इसमें सुआंग (स्वांग), रास, कृष्णलीला, यात्रा गोटि पुअ आदि अनेक रूप आ जाते हैं।

जगन्नाथ को लेकर लोकनाटकों में चार-पाँच कथानक ही प्रमुख होते हैं—इंद्रद्युम्न द्वारा मन्दिर निर्माण और स्थापना, ऐतिहासिक राजा द्वारा युद्ध संचालन, कांची-कावेरी अभियान, रामचन्द्रदेव द्वारा जगन्नाथ की सुरक्षा एवं दो-चार भक्तों की दृढ़तापूर्ण भक्ति एक आध गीतगोविन्द के प्रसंग भी आ जाते हैं। परन्तु जगन्नाथ दास द्वारा ओड़िया में भागवत रचना के बाद कृष्ण चरित्र का लोक में गहरा प्रभाव छा जाता है। कृष्ण लीला के सारे प्रसंग लोक सुलभ हो जाते हैं। क्योंकि गाँव-गाँव में भागवत पाठ हेतु 'टुंगी' (फूस का घर) का प्रचलन और परम्परा शुरू हो जाती है। इस प्रकार विदेशी शासन के बावजूद लोक जीवन में रस आ जाता है। जीने का आधार मिल जाता है। सारे संकट में भी निराशा के बादल छँट जाते हैं। जीवन एक सार्थकता से बँध जाता है, भटकने नहीं पाता। इसी में ग्राम बँधता है, जाति बँधती है और पूरी संस्कृति की जड़ें मजबूत होती हैं।

लोक नाट्य को कुछ लोग 'गण नाट्य' कहने लगे। ओड़िशा में 'विदग्ध नाटक' का जन्म संस्कृत नाटकों से (अनुवादक आदि) होता है, उन्हें मंचस्थ किया जाता रहा है। इसके प्रमाण नवीं सदी से मिलते हैं। लेकिन इसके दर्शक सीमित होते हैं। साधारण जनता की पहुँच ज्यादा नहीं थी। तभी तमाशा, भवाई, यक्षगान, नौटंकी, लीला आदि का प्रचलन देश के विभिन्न क्षेत्रों में होता गया। वही स्थिति 'पागर' और 'लोक नाटक' की ओड़िशा में रही। यहाँ लोकगीत-लोकनृत्य और लोकनाटक का मिलाजुला रूप उपलब्ध होता है।

कृष्ण चरित्र की छोटी-छोटी घटनाओं को लेकर उदित-प्रत्युक्ति के जरिये जनता के सामने परिवेषण किया जाने लगा। इनमें विशेष साज-सज्जा की जरूरत नहीं, लम्बा-चौड़ा मंच नहीं चाहिये। बस एक-दो-तीन उस्ताद गीत और वाद्यकार ही यथेष्ट होते। बीच में जो इसे गद्य का प्रयोग कर देते, वैसे गहराई से देखें तो स्पष्ट है कि कृष्ण आधारित लोक नाट्यों को दो संस्कृत रचनाओं ने विशेष आधार दिया—गीत गोविन्द (जयदेव) और जगन्नाथ बल्लभ नाटक (रायरामानंद)।

इस दृष्टि से नरसिंह सेण महापात्र का 'गोपलीला' एवं द्विज चैतन्य चरित 'कृष्ण लीला' का महत्व विशेष है। पिंडिक श्रीचंदन रचित 'बसंतदास' भी मंचन की दृष्टि से काफी लोकप्रिय हुआ। विश्वम्भर राजेन्द्र देव का 'शरद रास' और 'राधाप्रेम लीला' लोक में खूब प्रचलित हुईं। हनुमान कवि चन्द्र रायगुरु ने 'रास पंचाध्यायी' की रचना की है। रघुनाथ परिछा रचित ''गोपीनाथ बल्लभ'' में गद्य का अच्छा प्रयोग हुआ। उपरोक्त सभी लोक नाटकों की रचना करने वाले प्राय: गंजाम जिले के हैं। बाद में चलकर बाबाजी वैष्णव चरण दास, मोहन सुंदरदेव गोस्वामी, गोविन्दचन्द्र शूरदेव, कालीचरण पटनायक, कांत कवि लक्ष्मीकांत आदि ने कृष्णलीला के विभिन्न अंश लेकर लोकनाट्य परम्परा को समृद्ध किया है।

बाबाजी ने इन लोकनाटकों के अभिनय में भी रुचि ली थी। एक जगह वे अपना उद्देश्य स्पष्ट करते हैं—राधाकृष्ण की अप्रकट लीला को प्रकट करना, वह भी आम जनता के सामने, अत्यन्त दुस्साहस है, यह कोई लड्डू खाना नहीं है........ नाग सर्प के हलाहल से भी कठिन वस्तु है। यह नाच-तमाशे की तरह ऐसी-वैसी लीला नहीं। इस अप्राकृत लीला को प्राकृत तमाशा मत समझना। इसके बारे में उनका विचार है—श्रीकृष्ण के स्वरूप का हित हमारी भेंट नहीं हो

सकती। परन्तु विग्रह सेवा को वे स्वरूप सेवा तुल्य मानते हैं। अतः राधा-गोविन्द विग्रहों की फूला, रास, दोल, उत्सव, अभिनय आदि के जरिये उचित सेवा करना सेवा का प्रधान अंग है। इसी दृष्टि से श्रीविग्रहों के सामने रस-रास-संगीत-नृत्य-अभिनय की सामग्री प्रस्तुत करते हैं। अर्थात् इस कृष्णाश्रित लोक नाटक का उद्देश्य कृष्ण प्रीति सम्पादन है। यहाँ मनोरंजन अथवा चित्त-विनोदन का भाव नहीं होता। यही कारण है कि इन लोक नाटकों के अभिनय से पूर्व राधा-कृष्ण के चित्र की पूजा आराधना का विधान है। आज के युग में यह राधाकृष्ण अप्राकृत प्रेम, श्रीकृष्ण की अन्य अप्राकृत लीलाएँ दुर्बोध्य हो गई हैं। भौतिकता में डूबा समाज और जनमण्डली उन पारम्परिक भावों से परिचित नहीं हो पाते।

फलतः आम दर्शक जब उनसे मन करने लगे तो रचना में परिवर्तन स्वाभाविक था, यहाँ रचनाकार, निर्देशक, संचालक सब एकीभूत—केन्द्रीभूत होते। अतः समय की माँग के प्रति वे सचेतन हुए। लोकनाट्य लीला और विदग्ध नाटक में एक सुन्दर सामंजस्य या समन्वय स्थापित किया गया। इस समन्वय सेतु के बनने पर 'लोक नाटक' में बहुत कुछ उन्मुक्तता पर अंकुश लग गया। लीला गायन संगीत प्रधान तो रही, उसकी भाषा भी लोक भाषा रही, परन्तु साथ में अंकों का बंधन आ गया, मंच सज्जा निर्मित सीमाबद्ध मंच का निर्माण हुआ। उसमें गद्य जोड़कर प्रस्तावना आदि कुछ विधियाँ स्पष्ट की गयीं, बाबाजी वैष्णवचरण दास ने "शारदीय पद्यरास" को 1030 में नये रूप में प्रस्तुत किया तो उसे अभूतपूर्व सफलता मिली। इसमें कट्टरपंथी लोकनाट्यकारों को थोड़ा कष्ट तो हुआ। समझौता नहीं कर पाये। परन्तु कृष्ण लीला का यह स्वरूप लोक चित्त से मिटने से बच गया। आगे चलकर इसी तर्ज पर 'चोंपदी चम्पू' रचे और अभिनय किये गये। इसमें कवि सूर्य बलदेवरथ को अभूतपूर्व

सफलता मिली। ''किशोर चंद्रानन चम्पू'' अभिनय की दृष्टि से अद्‌भुत है। बाद में कालीचरण पटनायक ने इसे मौलिक रूप में अपनाकर नाटक रूप में मंचस्थ किया। बाद में कोई सशक्त निर्देशक या प्रोड्‌यूसर इसे उस ऊँचाई के साथ प्रस्तुत करने में समर्थ नहीं हो पाया। 'वैष्णव पाणि' इस दृष्टि से कृष्ण लीला आधारित लोक नाटकों में आये, पर उन्होंने अपना ध्यान सामाजिक, राजनैतिक एवं अन्य सांस्कृतिक़ विषयों में ज्यादा दिया।

मजे की बात है कि आज ओड़िया का विदग्ध नाटक बहुत अधिक उत्साहप्रद नहीं है। इसके लिए विकसित मंच नहीं कि दर्शन नहीं। परन्तु लोक-नाट्‌य अपनी जड़ें लोक में रखने के कारण जीवित हैं। गाँवों में उसके दर्शक हैं, मंच हैं। बस 'यात्रा', 'गोटि पुअ', 'रास' आदि के साथ सामंजस्य बनाया, उन्हें अछूत नहीं समझा। आधुनिक युग के वातावरण को भी अपांक्तेय नहीं माना। अर्थात् वह लोक से दूर नहीं गया। यही कारण है कि 'भागवत टूंगी' की परम्परा पीछे छूटने पर भी कृष्ण चेतना को जीवन्त रखने का महत्वपूर्ण कार्य ओड़िशा में यह 'लोक नाटक' कर रहा है। जगन्नाथजी के विशाल नेत्र सब कुछ देख रहे, उनमें कृष्ण का रंग ही नहीं, लोक-संपृक्त इस विधा को जीवन्त रखने में समर्थ है।

●●

राजस्थानी लोकनाट्यों में कृष्ण

❀ डॉ० महेन्द्र भानावत

भारतीय जनजीवन में शिव, कृष्ण और राम का सर्वाधिक महत्त्व है और उनकी प्रतिष्ठा तथा मान्यता भी सर्वाधिक है। यही कारण है कि यहाँ शिव को 'लिंग' यानी 'शिवलिंग', कृष्ण को 'ग्राम' यानी 'शालिग्राम' तथा राम को 'शलाका' यानी 'रामशलाका' के रूप में नमन किया जाता है। कृष्ण की आराधना में सर्वोपरि आत्मलीन मीराबाई रही। उसकी अनन्य भक्ति के कारण ही मीरा भक्तिमती कहलाई। यही नहीं, सन्तों ने भी उसे 'सन्त शिरोमणि' की पदवी से विभूषित किया। राजस्थान को इसका गर्वोन्नत श्रेय है।

मीरा के पास जो शालिग्राम था वह उसे मेड़ता में अयोध्या के सन्त गुणवन्तदास से हठपूर्वक मिला। तब मीरा की उम्र मात्र पाँच वर्ष की थी, जबकि गुणवन्तदास 82 वर्ष के थे। उन्हें शालिग्राम अपने पूर्ववर्ती महंत मीठणदास की परम्परा से हाथ लगा। मीठणदास उस परम्परा के खाकी अखाड़े के, रामानन्दी पंथ के प्रभावी सन्त थे जो गुणवन्तदास से ग्यारह सौ वर्ष पूर्व हुए और जिन्होंने अयोध्या में राम मन्दिर की स्थापना की। गुणवन्तदास इस मन्दिर के दसवें महंत थे।

इस सृष्टि में बहुत सारी बातें, बहुत सारी चीजें रहस्यमय हैं। विज्ञान कितना ही विकास का आकाश खंगाल ले, तब भी बहुत कुछ रहस्यमय ही बना रहेगा। यह कितना अजूबा आश्चर्य है कि सन्त गुणवन्तदास से जो शालिग्राम मीरा को प्राप्त हुआ, मीरा ने अन्त तक उसे अपने पास लुकाये रखा। जब वह नितान्त अकेली रहती तब उससे बतियाती, खिलाती, पिलाती, पौढ़ाती (सुलाती) और आत्मलीन

हो जाती। मीरा शालिग्राम की पूजा केसर, कस्तूरी, गोपीचंदन, गोरोचन तथा असगंध से करती।

यह शाालिग्राम चल-शालिग्राम होने से करोड़ों मंत्रों से अभिषिक्त था। श्रीकृष्ण ने इसी शालिग्राम से वज्ररूप धारण कर जरासंध का वध किया था। कृष्ण वैसे भी सबको तिरछी नजरों से देखते थे पर जब जरासंध पर उन्हें गुस्सा आया तो वह त्रिनेत्र का था। एक आँख छोटी, दूसरी बड़ी, नाक टेढ़ा और ललाट एक तरफ। ऐसा गुस्सा बड़ा भयानक तथा महा अनिष्टकारी होता है। तीसरा नेत्र तब अस्तित्व में आया जब शालिग्राम ने वज्ररूप में अपने पर सुदर्शन चक्र को टिका दिया। यह सुदर्शन सोने का निर्मित था जो राज-परम्परा से चला आ रहा था। इससे पूर्व कृष्ण सोलह बार रण छोड़ भागे तो रणछोड़ कहलाये। ऐसी स्थिति में शालिग्राम रूप धारण करने के अलावा उनके पास और कोई चारा नहीं था। जैसे शालिग्राम रहस्य है, वैसे ही मीरा की कृष्ण के प्रति भक्ति अनुरक्ति भी कम रहस्य वाली नहीं है। यह भक्ति बड़ी अजब अनूठी है। एक दृष्टि से वह सगुण भक्ति थी तो निर्गुण भी। सुध में तो वह मुश्किल से पाँच घड़ी रहती। शेष घड़ी तो बेसुध ही बनी रहती। अतः मीरा ने सदा मूरत के दर्शन ही अधिक किये, सूरत के नहीं के बराबर। जब-जब वह सुध में होती, उसे कृष्ण की मूरत ही अधिक दिखाई देती। बेसुध हालत में कृष्ण की सूरत दिखती हुई भी अनदेखी रह जाती।

इसे मैं अपने पूर्वजन्म के किन्हीं सुसंस्कारों का ही सुफल मानता हूँ कि मुझे मीरा से जुड़े कृष्ण या कि कृष्ण से जुड़ी मीरा से सम्बन्धित इन रहस्यमयी घटनाओं की जानकारी लोकजीवन में पूज्य अलौकिक देव वीरवर कल्लाजी राठौड़ की आत्मशक्ति से प्राप्त हुई, मीराबाई जिनकी बुआ थी। शायद इसीलिए राजस्थान में मीरा के नाम-छाप के अनगिनत पद, भजन, तवन, ब्यावले और फलीरूप

गाथा गीत प्रचलित हैं।

लोकनाट्यों में कृष्ण के जो विविध रूप प्रदर्शन धर्मी बने हुए हैं वे कृष्ण के उस रहस्यमय अन्तर्जगत के अलौकिक रूप को छविमान नहीं करते वरन् उनके किशोरपन के चुहलमन को ही दिग्दर्शित करते हैं, जिसका सम्बन्ध गोपियों से जुड़कर पवित्र प्रेम के सात्विक बहलाव का है किन्तु उसकी पृष्ठभूमि में धर्म एवं अध्यात्म का सजग चैतन्य ही मूर्तिवन्त हुआ मिलता है। इसीलिए चाहे कृष्ण गोपियों से छेड़छाड़ करते हों अथवा गोपियाँ कृष्ण से रिझावन करती हों, उनमें कहीं भी वासनाजनित विसंगतियाँ देखने को नहीं मिलतीं।

आदिवासी भीलों के गवरी लोकनाट्य ख्याल में कानगूजरी का खेल तमाशा दर्शकों को बड़ा मोहित करने वाला है, जिसकी गोपी-कृष्ण की संवाद-गायकी 'भारत' नाम से जानी जाती है। इसका कृष्ण एक विशिष्ट प्रकार झग्गा, धोती पहने होता होता है। सर पर मुकुट और उस पर मोरपंख शोभित रहता है। गोपियाँ सामान्य लुगड़ी घाघरी में नृत्यमय संवादाभिनय में बड़ा मनोविनोद करती हैं। ब्रजवासी मथुरा का कान्हा, गोकुलगढ़ की गोपियों से मईड़ा यानी दही का दान अर्थात् कर माँगता है। गोपियाँ नंदबाबा को पुकारती हैं। कृष्ण गोपियों से झटिक-झटिक सिर पर रखी मटकी फोड़ता है। माता जसोदा झगड़ते कृष्ण को समझाती है। दही लूटता कान्हा भागता फिरता है, गोपियाँ भी उसके पीछे-पीछे कुंज गलियों में दौड़ती दही माँगती हैं। कृष्ण जपाक-लपाक दही मुँह में रखता है। आधादूधा उसके मुँह पर चोंट-चिपक जाता है। उसकी अजब-सी शक्ल देख गोपियों का गुस्सा जाता रहता है। वे मुस्काती हुई कृष्ण पर रीझ जाती हैं। उदाहरण के लिए—

ए गोकल दी ए गुजरी ए आलोरिया।
भोला काना माथा री गागर क्यूं फोड़ी ए आलोरिया।

मईड़ो ढोरावे कानो मांगे मईड़ो दाण ए आलोरिया॥
क्यारे-क्यारे जावे गुजरी धोरे-धोरे कान ए आलोरिया।
फोड़ गागरी लूटे मईड़ो कानो भाग्यो ए आलोरिया॥
मथराजी री कुंज गली में दोड़ी गुजरी ए आलोरिया।
न दूं मईड़ो गुजरी मूं भाग्यो जावूंला ए आलोरिया॥[2]

गवरी में 'कानजी' नामक गीत गाथा में कोई पुत्र नहीं होने पर जसोदा जंगल में बावड़ी खुदवाती है, पीपल वृक्ष लगाती है और बारह बरस तक शंकर की सेवा करती है तब जाकर बालक कृष्ण जन्म लेता है। कृष्ण द्वारा छेड़खानी करके गूजरियाँ गूजरों को पुकारती हैं। उनसे लड़ने गूजर जाते हैं तो राह में ग्वाला कहता है—उनसे मत लड़ो। वे गूजरियों के साथ भाँवर ले लेंगे—अर्थात् विवाह रचा लेंगे।

राजस्थान के भवाई अपने स्वांग-प्रदर्शन के लिए यजमान वृत्ति करते हैं। ये उच्चकोटि के गायक, व्यंग्यक, नर्तक, वाचाल और विनोदी होते हैं। इनके स्वांगों में बीकाजी तथा बाघजी के स्वांग ऐतिहासिक और काव्य-रचना की दृष्टि से बेजोड़ हैं। कान-गूजरी नामक स्वांग गवरी के कानगूजरी से भिन्न है, जिसमें कृष्ण-गोपियों के बीच प्रेमसुख का प्रहसन सर्वाधिक ध्यान आकर्षित करता हुआ दर्शकों को लोटपोट कर देता है।

प्रेमसुखा गोपियों से अनावश्यक छेड़छाड़ करता हुआ कभी उनका पल्लू खींचता है तो कभी उस पल्लू से अपने को बाँध इन हरकतों से अनजान बना रहता है। गोपियाँ जरा भी उस पर सन्देह नहीं कर पाती हैं। उसकी बार-बार की चालाकी अन्त में गोपियों के हाथ लग जाती है, तब वे उसकी शैतानी पर कभी उसके कान ऐंठती हैं, कभी नाक मसलती हैं तो कभी चपत लगा उसे नसीहत देती हैं। प्रेमसुखा अत्यन्त विनम्र और दब्बू भाव लिए उन्हें दण्डवत करता हुआ क्षमा याचना करता है और अत्यन्त भयग्रस्त बना अपने पूरे

शरीर में कंपकंपी बनाये रखता है। दर्शक उसकी प्रत्येक हरकत पर हँसी की फूलझड़ियाँ बिखेर फूला नहीं समाता है।

''मैं तो मथरा की काना गूजरी, म्हारो मयो मत लूटो श्याम'' गीत गाती गोपियाँ नृत्यमग्न होती हैं। एक गोपी प्रेमसुखा को अपने कपड़े ओढ़ाकर सुला देती है। इशारा पाते ही अन्य गोपियाँ एक-एक कर भाग जाती हैं। कृष्ण सोये प्रेमसुखा को गोपी समझ छेड़खानी करते हैं। इतने में प्रेमसुखा धीरे से अपना मुँह उघाड़ता है। उसे देख कृष्ण शर्मिन्दे हो भागते नजर आते हैं।[3]

वागड़ में मावजी नामक संत हुए जो कृष्ण के दसवें अवतार के रूप में आदिवासियों में मान्य हैं। वे बड़े अन्तर्ज्ञानी थे। बेणेश्वर उनकी साधनास्थली रहा। उनका जन्म संवत् 1774 माना जाता है। अपने समय में उन्होंने जबर्दस्त समाज एवं धर्म-क्रान्ति की। मीरा की तरह वे भी बड़े अपमानित तथा प्रताड़ित रहे। दोनों का यशवर्धन बाद में हुआ जब वे नहीं रहे। उन्होंने अपने अन्तर की वाणी से भविष्य कथन कहा जो मावजी की भाखणी नाम से जगजाहिर है। बहुत सारा कथन उनके चोपड़ों में है। इन चोपड़ों में अपनी भौहों से बारीक अक्षर लिखे वहीं अंगुलियों से बड़े-बड़े आखर लिखे। उन्होंने अपने हाथ तथा पाँव के अंगूठे से भी लेखन किया और बालों की चोटी को मरोड़ी देकर चित्र उकेरे।

बेणेश्वर को वृन्दावन तथा साबला को मथुरा की तरह पवित्र धाम माना जाता है। कृष्ण ने जो रास मथुरा में अधूरी छोड़ी, मावजी ने पूरी की। डूंगरपुर जिले का साबला गाँव मावजी की प्रसिद्ध पीठ लिये है। यह पीठ हरि मन्दिर के नाम से प्रख्यात है।

मावजी ने सबसे पहले बुनकरों को भगवान कृष्ण की लीला का मंचन दिया। इसके लिए उन्हें शुद्ध किया। ये ही शुद्ध पुरुष साद नाम से जाने गये जो मावजी के पट्ट शिष्य के रूप में मथुरा से आये।

प्रतिवर्ष माघ माह की पूर्णिमा को बेणेश्वर में प्रसिद्ध मेला भरता है, जिसमें राजस्थान, गुजरात तथा मध्य प्रदेश के आदिवासी बड़ी संख्या में भाग लेकर अपने पूर्वजों का अस्थि विसर्जन करते हैं। आदिवासियों के कुम्भ के रूप में बेणेश्वर की प्रसिद्ध धाम किसी समय बेण वृक्षों की प्रधानता लिये थी। रासलीला के प्रदर्शन माव-भक्त मनौती की सम्पूर्ति के रूप में विशेष धार्मिक आस्था के साथ करवाते हैं।[4]

कावड़ लकड़ी का बना आठ-दस कपाटों का एक छोटा-सा चल मन्दिर है, जिसके दोनों ओर विशिष्ट लोक देवताओं, तीर्थस्थलों तथा महापुरुषों के चित्र अंकित किये होते हैं। कावड़िया भाट इसे लिए गाँव-गाँव, घर-घर की फेरी देता हुआ प्रत्येक चित्र को मोर पंख का छुवन दिये विशिष्ट गायकी-लहजे में वाचन कर जन-जन को तीर्थ दर्शन का फल देता है। इसमें सिरियादी कुम्हारिन, नामदे छींपा, सैन भगत नाई, अणदा सोनी, करमाबाई, रूपादे रावल, कालू कीर, गणका वेश्या, रैदास चमार जैसे संत-भक्तों के साथ राम तथा कृष्ण जीवन के कई चित्र मनमोह लेते हैं।

कृष्णलीला के विविध दृश्यों में चीरहरण, नाग नाथन, गोपी स्नान, सुदामा मैत्री तथा बालक्रीड़ा के चित्रांकन प्रमुखता लिये रहते हैं। उदाहरण—

(अ) कंस री दूती कानजी ने जैर दो आंचल दे बिलमायो।
मां जसोदा हाथ जोड़े। चन्द्रावल गूजरी दई घमोड़े।
कानजी म्हाराज माखण री चोरी करे। टांगड़ी बाँध गूजरी उलटा लटकावे।

(ब) किसनजी ने मारण आयो रागस। किसनजी छकड़ा गाड़ी ने आपणा पग सूं छुकर रागस रो काम तमाम कीधो।

(स) किशनजी माटी खावे। माटी सूं भरियो मूंडो माता जसोदा

खोलावे तो कांई देखे, पूरो परथीलोक निजर आवे।

(द) जमुना न्हावती गोपियाँ रा चीर ले कृष्ण कदंम री डाल माथे जा बैठा। गोपियाँ मारे सरमासरमी पाणी मांय गुलच्यां खावे।[5]

पट्ट यानी कपड़े पर बने चित्रों की एक परम्परा पड़ के रूप में प्रसिद्ध है। राजस्थान में इस दृष्टि से लोक देवता पाबूजी और देवनारायण से सम्बन्धित पड़ चित्रांकनों ने विश्वव्यापी ख्याति अर्जित की है। इन पड़ों का चित्रांकन नोशी-छींपों द्वारा किया जाता है जो प्रारम्भ में शाहपुरा तथा बाद में पुर-भीलबाड़ा जा बसे। इनमें एक धूलजी थे जिन्होंने सर्वप्रथम कृष्णजीवन से सम्बन्धित पड़ बनाई और उसका नाम 'कृष्णदला' दिया। यह पड़ मथुरा क्षेत्र के पापड़ी गाँव से आये एक भोदे ने बनवाई थी। इस पड़ का वाचन मात्र किया जाता है, पाबूजी की पड़ की तरह गाथा गायन नर्तन नहीं। वाचन की शैली का बड़ वाचन की तरह ही होती है। यथा-

(अ) चार गोपियाँ जल जमुना में नहाने तो सिधाई। कनय्या म्हाराज चीर ले कदम्ब पर बड़िया।
हाथ जोड़ के बोल री गोपन्या, दे दो कनय्या चीर हमारी। हो जावें जल जमना से न्यारी।

(ब) करसण भगवान गेंद खेलरिया। मारियो टोल। गेंद गयो थे में। कनय्याजी म्हाराज तो कालारधे में नाग नाथरिया।

(स) गड़ गोकल की गूजरी अर गड़ मथरा के कनय्याजी म्हाराज। दही बलोवे गूजरी अर कनय्याजी म्हाराज माखन लूट-लूट खावें। बिंदरा ओ वन में सुरेल गउवां दूध देवे।[6]

नृत्यप्रधान नाट्य में हरिजन समाज में काना गोपी का विशेष प्रचार रहा। खासकर विवाह के अवसर पर पुरुष समुदाय में इसका प्रचलन रहा। ढोलक एवं मजीरा वाद्य पर एक व्यक्ति कृष्ण तथा दूसरा गोपी बनकर नाना भावभंगिमाओं में यह नृत्य कर मनबहलाव

करता है। गीत के बोल हैं—"**कान्हा थारी गोपियाँ ने बाजूबंद सोवे सा/बाजूबंद री लड़ियाँ लड़लूमो सा/कानो भोलो रे.....**"

राजस्थान में कानागूजरी एक जाति भी है। इस सम्बन्ध में देवीलाल सामर लिखते हैं—"काना नुकीली टोपी, लहराता झग्गा, चूड़ीदार पाजामा और रावणहत्था हाथ में लिये हुए एक विचित्र दृश्य उपस्थित करता है। वह आदमी और औरत की शक्ल बनाये रहता है और पूछने पर अपने को राधाकृष्ण का अवतार बताता है। वह जाति से गूजर होता है और घर-घर नाचता है। उसका अंग संचालन बड़ा सुषमाशाली और कलापूर्ण होता है। उसके गीत भी मुग्ध कर देने वाले हैं। ये राजस्थान के सभी हिस्से में मिलते हैं और प्रेमसहित थोड़ा आटा दिये जाने पर ही संतुष्ट हो जाते हैं।"[7]

भवाई की तरह रावलों में भी कान्ह एक गूजरी के साथ मंच पर आकर सवाल-जवाब करते हैं। इससे पूर्व गूजरी नृत्य करती गाती है—

आज म्हारो मही मत लूटो जी ॥टेर॥
म्हें गोकुल की गूजरी थें ब्रजवासी कान।
अधबीच झगड़ो राचियो मांगे महीड़ा को दाण ॥
डूंगर चढ़ किलकी करी, गवालिया लीनी है बुलाय।
छींकतड़ा म्हारा घर से निकसी, कानूड़ा रोल मचाग ॥

सारे संवाद छन्दबद्ध होते हैं। कृष्ण मंच से चले जाते हैं तब गूजरी अकेली रह विलाप करती है। यथा—

द्रोपद हेला देय, वेगो आव वसुदेव रा।
लाज राख जस लेय, लाज गियां ब्रज लाजसी ॥
नेणां ढलके नीर, वो मोनन मिलियो नहीं।
अब तो बेगो आव, साय करण ने सांवरा ॥[8]

वैष्णव मन्दिरों में ढाढा-ढाढिन के स्वांग प्रदर्शित करने की

सुदृढ़ परम्परा मिलती है। इनमें उदयपुर के हाथीराम वैष्णव (84) पिछले 70 वर्षों से ढाढ़ा का स्वांग लाने की प्रसिद्धि लिये हैं। उन्होंने बताया कि नंदराय के पुत्र रूप में कृष्ण का जन्म होने के कारण नन्द उत्सव के नाम से यह खेल प्रदर्शित किया जाता है। ढाढा चूड़ीदार पाजामा, कौर किनारीदार झग्गा, कमरबंध, झग्गे पर उपरने के रूप में फैंटा, सिर पर पाग, पाग पर तुर्रा, छोगा, लटकन, पछेवड़ी, आमली तथा चन्दरमा रहता है। गले में कंठला तथा सफेद दाढ़ी मूँछ लिये ढाढा बड़ा ही कलात्मक परिवेश लिये थिरकता रहता है। ढाढ़िन घूँघट निकाले साड़ी लहंगा कुरती कांचली पहने होती है। इधर रामजन्म पर भी यह स्वांग प्रदर्शित होता है।[9]

इधर की रासलीलाओं में धार्मिक तत्त्वों की बजाय कलातत्त्वों की प्रधानता देखने को मिलती है। वृन्दावन की रासलीला की तरह उनके पोषक मठ मन्दिर नहीं होकर सेठ साहूकार होते हैं। नृत्य तथा संगीत पक्ष प्रबल होने के साथ आसन पर केवल स्वरूप ही बैठते हैं। फुलेरा इनके प्रदर्शन का मुख्य क्षेत्र रहा है।

अलवर की ओर प्रचलित अलीबक्षी ख्यालों में कृष्णलीला का बड़ा जोर रहा। अलीबख्श मंडावर के टीकावत राजपूत थे। इन्होंने अपनी ख्याल की मंडली बनाई और अपने ही रचित ख्यालों का प्रदर्शन प्रारम्भ किया। अलवर नरेश मंगलसिंह भी इनके ख्यालों के कद्रदान थे, जिनका राज्याभिषेक वि०सं० 1931 मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी को हुआ। अलीबख्श ने ख्यालों की रचना भेंट दोहा सेंधू ठुमरी माँझ आदि में की। ख्यालों के लिए मंच अत्यन्त सादा, तख्ते डाल, ऊपर चंदोवा लगा बनाया जाता। दर्शक चारों ओर बैठ जाते। वाद्यों में ढोलक, सारंगी, नक्काड़ा, तबला, पेटी होते। उदाहरण—

सेंधू — **उग्रसेन घर ब्याह रचो, मथुरा शहर सुथाना।**
ब्याह किया वसदेव से, कंस चलो पौंहचान॥

मांझ — **सुनिये भौंदू गुवालिया, तू नित चरावे गाय।**
राज घुरा है कंस का, तू कहाँ रह्यो बतराय॥
दोहा — **तुमरी काली देह बावरे, हमारो कोमल गात।**
चना चबेड़ा मत करे, दो मारूँगी लात॥

तोड़—ओ रे सुनरे भौंदू गुवाल मोसे कहाँ लगावे चाल। करौली श्रीमहावीरजी की ओर दंगली ख्यालों में 'कन्हैया' के दंगल किसी समय सर्वाधिक लोकप्रिय रहे। इन दंगलों में सैकड़ों की संख्या में लोग कतारबद्ध खड़े होकर अपने हाथों के झाले देते, उछलते-झूमते, आगे बढ़ते हैं। कृष्ण विषयक पौराणिक आख्यान कन्हैया के विषय होते हैं।[10]

पाण्डव द्यूत क्रीड़ा में पराजित हो जाते हैं। द्रौपदी करुण पुकार करती है लेकिन असमर्थ है। वह बनवारी को स्मरण करती है—

कहाणी—हे बनवारी, गिरवरधारी अब कहाँ गये कृष्ण मुरारी रे
द्रोपदी करुनाकरुना कर रई।

उट्ट — **राधा रुकमणी जू के बरना।**
मेरे दिल में लग रही करना।
बेरा पार लगादे मेरी सामलिया।

चिट्ठा — **अरेक स्वामी दरोपती कह रहीय**
ओ तेरी कहाँ बनसी बजरेइय लाज भरी सभा
यह रे लाज भरी सभा में जायगी मेरे करता होय
जगत में चरचा करना कर रइये

कीर्तन की राग—**भगतन के सारे काज हरी भगतन के सारे**
स्वामी ऐसे दीनदयाल काज हरी.........।

एक अन्य दंगल गायकी में ब्रजबालाएँ जल में खड़ीं, कृष्ण से अपने चीर माँग रही हैं। कृष्ण कह रहे हैं, बाहर आ जाओ तो चीर दे दूँ। बालाएँ जबाव दे रही हैं—''तुम्हें शर्म नहीं आती, कैसे बाहर

आयें। नग्न देखने से बड़ा दोष लगता है। देखने वाले की उम्र घट जाती है।'' कृष्ण कहते हैं—''जल में वरुणदेव का निवास है, दोष तो तुम्हें लग रहा है कि नंगी नहा रही हो। अतः हाथ जोड़ क्षमा माँग लो।'' इस पर गायकी चलती है—

चलत — **अजी ए हो कोई ने लीनी कजी लपेट**
कोई हाथन से दबा रही पेट
कोई को पत्ता रही समेट
निकलवे को कर रही तैयारी
एजी एक-एक को चीर दे रहे काना बनवारी
वे तो पहन लगी बिचारी कृष्ण उनको समझाते जाय
सबन को चीर सौंपाय
गोपिका राजी होती जाय
भवन को चल दिये बनवारी.......

इस प्रकार कहा जाता है कि राजस्थानी लोकनाट्य-ख्याल, स्वांग तथा लीला में कृष्ण गोपियों के साथ विविध रूपों में छविमान हुए हैं। जो उनका लौकिक रूप ही अधिक है।

संदर्भ सूत्र—

1. दृष्टव्य लेखक की पुस्तक निर्भय मीरा, मुक्तक प्रकाशन, 352, श्रीकृष्णपुरा, 1994, उदयपुर।
2. लोकनाट्य गवरी, डॉ० महेन्द्र भानावत, लोककला मण्डल, 1970, पृ० 64 तथा 86।
3. राजस्थान के भवाई, डॉ० भानावत, लोककला मण्डल, 1967, पृ० 47-48।
4. भौहों से चोपड़े लिखे मावजी ने, डॉ० भानावत, आदिवासी जीवनधारा, हिमांशु पब्लिकेशन, 2008 उदयपुर, पृ० 95।

5. लोकनाट्य परम्परा और प्रवृत्तियाँ, डॉ० भानावत, बाफना प्रकाशन, जयपुर, 1971–72, पृ० 45–46।
6. रामदला की पड़, डॉ० भानावत, लोककला मण्डल, उदयपुर, 1968, पृ० 1 से 14।
7. राजस्थान के लोकानुरंजन, देवीलाल सामर, लोककला मण्डल, उदयपुर, 1956, पृ० 24।
8. राजस्थान के रावल, डॉ० भानावत, लोककला मण्डल, उदयपुर, 1967, पृ० 18–19।
9. हाथीराम वैष्णव से लेखक की बातचीत 6 अप्रैल 1999।
10. लोकनाट्य परम्परा और प्रवृत्तियाँ, डॉ० भानावत, पृ० 57।

●●

असमिया लोकगीतों में श्रीकृष्ण

❀ डॉ० हरेराम पाठक

प्रकृति के सुरम्य अंचल में अवस्थित भारत का पूर्वोत्तरीय प्रान्त असम मूल रूप से कृष्ण भक्ति का क्षेत्र रहा है। यहाँ के शास्त्रज्ञ विद्वान् श्रीकृष्ण की पौराणिक महिमा से तो अवगत हैं ही, लोक मन में भी श्रीकृष्ण गहरे प्रतिष्ठित हैं। असमिया समाज में प्रत्येक धार्मिक एवं सामाजिक अनुष्ठानों के अवसर पर श्रीकृष्ण-रुक्मिणी से सम्बन्धित मांगलिक गीत गाये जाते हैं; यथा—

''जय जय परम मंगल जय जय वासुदेव
जय जदुपति कृष्णाये मोरे गति
तयू पदे करूँ सेव॥
शास्त्र उत्तम गीता भागवत्
धर्मत उत्तम नाम।
देवतो उत्तम देवकी नंदन
चरणों करों प्रणाम॥''

अर्थात्- हे परम मंगलमय जदुपति श्रीकृष्ण, तुमसे ही हमारी गति है। जिस पर शास्त्रों में उत्तम गीता भागवत् है एवं धर्म में उत्तम नाम जप है, उसी प्रकार देवताओं में उत्तम देवकीनंदन हैं। उनके चरणों में हमारा प्रणाम निवेदन है।

पौराणिक दृष्टि से भी श्रीकृष्ण का असम प्रान्त से गहरा सम्बन्ध रहा है। लक्ष्मी स्वरूपा रुक्मिणी असम के कुण्डिल नगर के राजा भीष्मक की बेटी थी, जिससे श्रीकृष्ण की शादी हुई थी। अतः श्रीकृष्ण यहाँ के लोक-मन में इतने रचे-बसे हैं कि असमिया लोग

सोते-जागते, उठते-बैठते 'जय श्रीकृष्ण जय श्रीकृष्ण' कहा करते हैं। जन्म से लेकर मृत्यु संस्कार पर्यन्त जितने भी अनुष्ठान किये जाते हैं, सभी अवसरों पर गाये जाने वाले लोकगीतों में किसी न किसी रूप में श्रीकृष्ण का उल्लेख अवश्य हुआ है।

अन्नप्राशन संस्कार के अवसर पर छोटे बच्चे को श्रीकृष्ण का रूप मानकर यहाँ की औरतें गाती हैं—

हरि हे लयुलास करि
हरि हे पिन्धि पाटर शारी
हरि हे जन्मभूमि ले बहा कि राम राम।
हरि हे लयुलास करि
हरि हे पिन्धि पाटर शारी
हरि हे कृष्ण के कोलाते ले कि राम राम।

अर्थात्- श्रीकृष्ण का अन्नप्राशन हो रहा है। औरतें पाट की साड़ी पहनकर धरती पर बैठी हुई मांगलिक गीत गा रही हैं। आनन्दमय वातावरण है। देवकी श्रीकृष्ण को अपनी गोद में लेकर बैठी हुई हैं।

असम में विवाह संस्कार के अवसर पर वर पक्ष की औरतें एक लोकाचार के अनुसार पानी लाने के लिए नजदीक के किसी जलाशय पर गीत गाती हुई जाती हैं। गीत है—

ओलाइ आहा दैवकी ए यमुना लोइ याओं।
कृष्णक धुवाबो जल दियो गंगा माओ॥

अर्थात्- हे देवकी, घर से निकलो यमुना नदी से पानी लाने के लिए चलें। श्रीकृष्ण को स्नान कराने के लिए माँ गंगे जल देंगी।

एक गीत में वर्णन है कि श्रीकृष्ण बारात के साथ कुण्डिल नगर (असम) पहुँचते हैं। श्रीकृष्ण को द्वार पर आने की सूचना राजा भीष्मक तक पहुँचती है, वे कृष्ण के स्वागतार्थ आते हैं—

उठा भीष्मक राजा जोंवाइ आहि पाले

पदूलिते चिंगारे हाती।
आहा शीघ्र करि नियाहि आदरि
नियरत न धबा राखि।

श्रीकृष्ण रुक्मिणी को लेकर द्वारका आते हैं। आनन्दमय वातावरण में वर-वधू माँ देवकी के चरण स्पर्श करते हैं। माँ देवकी दोनों को हृदय से लगा लेती हैं। निम्नलिखित गीत में यह भाव अभिव्यक्त है—

श्रीकृष्ण आहि पाले रुक्मिणीक लइ।
आदरहि दैवकीये मनत आनंद कै॥
माकर पीछे श्रीकृष्ण याय धीरे-धीरे।
रुक्मिणीर लगे कृष्ण भावक प्रणामे॥
चिरजीवि होवा बुलि आशीर्वाद करे।
रुक्मिणी सहिते तोमार होयाक सुमंगले॥

वधू के घर में पाशा खेलने का एक लोकाचार होता है। यह लोकाचार हिन्दी प्रदेशों में भी है। असमिया समाज में भी विवाह के बाद वर-वधू पाशा खेलते हैं। उन्हें कृष्ण-रुक्मिणी का प्रतीक मानकर स्त्रियाँ गीत गाती हैं—

सोणर थालत आनि परमान्न
दुयो दिलन्त बाढ़ि।
रुक्मिणीर थाल देखिवाक भाल
कृष्णइ लेलन्त काढ़ि॥

इस प्रकार असमिया लोक-मन में श्रीकृष्ण इतने रच-बस गये हैं कि यहाँ के प्रत्येक लोकाचार, संस्कार एवं संस्कृति के उपादान में उनकी विद्यमानता है। यहाँ का लोक दर्शन कृष्णमय है, लोक संस्कृति कृष्णमय है, यहाँ के कण-कण में श्रीकृष्ण की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। ●●

यक्षगान लोकनाट्य में श्रीकृष्ण का स्वरूप

❀ डॉ० टी०आर० भट्ट

लोकवार्ता परम्परागत जीवन विधान है। इस लोककला के अन्तर्गत 'दृश्य प्रकार' जो अभिनय-माध्यम पर आधारित है, एक महत्त्वपूर्ण कला है। भारत में यह प्रकार खेल, नृत्य, नाटक, मैदान-खेल, बड़ा-खेल, छोटा-खेल, यक्षगान, कथकळि, रामलीला, कृष्ण-लीला, तेरुकुत्तु आदि नामों से पहचाने जाते हैं। इंन नाट्यों के सम्बन्ध में कोई लिखित चरित्र या लक्षण-ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं। लेकिन मौखिक रूप में सदियों से यह कला हमारे यहाँ विकसित होती आयी है। आज भी ग्रामीण प्रदेश के अन्तर्गत ताड़पत्रों में यह साहित्य लिखित देखने को मिलेगा।

भारतभर की लोकशैली के नाट्य प्रकारों में समान-सूत्र देखने को मिलते हैं? बहुत सारे नाट्य-प्रकार परस्पर प्रभावित भी हुए हैं। असम में अंकिया नाट्य है, आन्ध्र में कूचिपुडी, यक्षगान हैं, तमिलनाडु में तेरुकुत्तू नामक नाट्य चलता है। तंजाऊर जिले के मेलत्तूर नामक गाँव में यक्षगान नाम से एक दूसरी नाट्य-विधा प्रचलित है। केरल प्रदेश जो जिस तरह संस्कृत साहित्य, व्याकरण, वैद्यक, ज्योतिष के लिए प्रसिद्ध रहा है, उसी तरह पुराने दिनों से कई लोकनाट्य और नाटक-परम्पराओं के लिए प्रसिद्ध रहा है। यहाँ रामनाट्टम्, कष्णाट्टम्, कथकळि, मोहिनी आट्टम् आदि नाट्य-रूप प्रसिद्ध हैं।

उपर्युक्त सभी लोक नाटकों के मूल में भक्ति-सम्प्रदाय की प्रेरणा रही है। वैष्णव सम्प्रदायों ने रंगमंच को दो तरहों से प्रभावित

किया। इसमें देश के विभिन्न भागों में अनेक राजाओं को मन्दिर निर्माण के लिए प्रेरित किया। उन दिनों उन मन्दिरों के आश्रय में नृत्य-नाटक का आयोजन होता था। सन्तों ने, भक्तों ने ज्ञान और अनुभव अपने गीतों के माध्यम से सीधे जनता तक पहुँचाया। महाकाव्य, भागवत, कृष्णकथा मुख्य प्रेरणा का स्रोत रही। सन्त और ईश्वर के बीच कोई मध्यस्थ करने वाला नहीं था। इसीलिए गीत संवाद जैसा होता था। कवि जयदेव के 'गीतगोविन्द' में सन्तों की रचनाओं में राधा (व्यक्ति) और कृष्ण (सार्वभौमिकता) का संवाद हमारे सामने आता है। इस प्रकार के गीतों में चारणों को उपर्युक्त तथ्य मिला। यह कहा जा सकता है कि आधुनिक भारतीय नाटकों की नींव चारणों और सन्तों ने रखी थी।

भारतीय जीवन में विष्णु की महिमा या श्रीकृष्ण के चरित्र को बड़ा विस्तार मिला है। सामान्य लोगों के लिए कृष्ण विष्णु का अवतार है। मूलतः कृष्ण चारित्रिक व्यक्ति होकर भागवत धर्म का जनक या उपासक के रूप में गोचर होता है। भागवत धर्म में भक्ति को ही प्रधानता मिली है और एकदेवोपासना को महत्त्व दिया गया है। भागवत धर्म की भक्ति ने लोगों को खूब आकर्षित किया। आगे वैदिक सम्प्रदाय में भक्ति पंथ सम्मिश्रित होकर दक्षिण के आळवारों से बल पाकर आगे रामानुज से और भी सुदृढ़ बनकर मध्वाचार्य के माध्यम से कर्नाटक के धार्मिक क्षेत्र में एक महान् संघठन के रूप में विकसित होकर आ गया।

तमिलनाडु के आळवार (नवीं सदी) दक्षिण की भक्ति की सम्पत्ति है। इनकी दृष्टि में रामकृष्ण में भेद नहीं है। इन आळवारों ने नये पंथ का प्रसार आरम्भ किया। गीत गाते हुए लोगों में विष्णु-भक्ति जागृत की। आळवार सभी जात के होने के कारण समाज के सभी वर्ग के लोगों ने इसे हृदय से अपनाया। इस भक्ति-पंथ के

विकास में आगे बारहवीं सदी के रामानुजाचार्य का महत्वपूर्ण योगदान है। रामानुज़ाचार्य ने भक्ति का मार्ग सबके लिए खोलकर रख दिया। 13वीं सदी में मध्वाचार्य से भक्ति-पंथ का स्वर्ण-युग आरम्भ हो गया। उन्होंने घोषणा की कि 'हरि ही सर्वोत्तम है।' उसके बाद कर्नाटक में हरिदासों की परम्परा विकसित हुई। कर्नाटक के जन-जीवन एवं साहित्य पर हरिदास-परम्परा (दासकूट) का प्रभाव गहरा है। विजयनगर के श्रीकृष्णदेवराय के काल में दासकूट के प्रमुख भक्त कवि पुरंदरदास, कनकदास आदि दासकवियों ने इस तत्त्व-दर्शन को सामान्य जनों तक पहुँचाया। इन्होंने सरल कन्नड़ में कीर्तन रचे जिनकी गीत-शैली ने कृष्ण की मुरली बनकर जन-समुदाय को आकर्षित किया। इस तरह दक्षिण में विष्णु भक्ति परम्परा आळवारों से प्रारम्भ होकर रामानुजाार्य और मध्वाचार्य से विकसित होकर, हरिदासो के गीतों से पुष्ट होकर समाज की कलुषिता को धोकर, आत्मोद्धार का केन्द्र बन गयी। दक्षिण में भक्ति-मार्ग वैष्णव मत की एक शाखा बन गयी, जिसमें कृष्ण और विष्णु अभिन्न माने जाने लगे। उत्तर भारत में स्थिति कुछ अलग रही। वहाँ भक्ति राम-कृष्ण में बँट गयी थी और कृष्ण भक्ति राधा-कृष्ण और कृष्ण-रुक्मिणी के प्रेम में बँट गयी थी।

उत्तर की कृष्ण-भक्ति के रूप में न रहकर रुक्मिणी-कृष्ण के नाम से कांताभाव का आश्रय पाकर महाराष्ट्र में विकसित हुई। ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम आदि सन्तों ने इस भक्ति को विकसित किया। इनके अभंग को केवल महाराष्ट्र के लोग ही नहीं उत्तर कर्नाटक के लोग पंडरपुर के विट्ठल के भक्त के रूप में गाते हैं। पंडरपुर के विट्ठल (कृष्ण के लिए ही यह नाम) उत्तर कर्नाटक के लिए प्रिय देवता हैं।

यक्षगान के अधिकांश कथानक राम और कृष्ण के अवतारों

से सम्बद्ध हैं। रामायण और उत्तर रामायण पर आधारित कथा-प्रसंग बड़ी संख्या में कर्नाटक में मिलते हैं। इसी प्रकार भागवत से सम्बद्ध कथानक भी बहुत हैं। फिर महाभारत के कृष्ण और पाण्डवों से सम्बद्ध कथाओं की तो भरमार है। विष्णु भगवान की गाथा 'भागवत' है। भागवत से सम्बद्ध कथा-प्रसंगों को रंगमंच पर प्रस्तुत करने वाले का नाम 'भागवत' हो गया। यक्षगान खेल भी भगवान की सेवा का एक प्रकार है। शायद आरम्भ के सभी यक्षगान-प्रसंग भगवान की लीला का वर्णन हैं। इस तथ्य की पुष्टि यक्षगान की प्रदर्शन-रूढ़ियों की सहायता से की जा सकती है। कथानक के आरम्भ में रंगमंच पर 'बाल-गोपाल' के नाम से भाइयों की जोड़ी नचायी जाती है। ये बाल-गोपाल मूलतः कृष्ण-बलराम हैं। यक्षगान की परम्परा में आरम्भ से बाल-गोपालों की वंदना करने की कल्पना से यह सूचित किया जाता है कि भागवत (निर्देशक) आगे के कथानक में इन्हीं कृष्ण-बलराम की लीलाओं को मंच पर प्रस्तुत करेगा। यक्षगान में जब भागवत रंगमंच से स्त्री-वेश आदि वेशों के साथ नेपथ्य में लौटता है तो वह एक गीत गाता है, जिसका अर्थ है-''रामकृष्ण पधारे हैं, दरवाजा खोलो।'' इसका अर्थ यही है कि श्रीकृष्ण भगवान लीला करने के बाद विश्राम लेने के लिए लौट आये हैं। इससे यही स्पष्ट है कि यक्षगान के मूल में वैष्णव भक्ति-परम्परा मूल प्रेरणा-भूमि रही है और श्रीकृष्ण सर्वश्रेष्ठ देवता हैं। कर्नाटक शैव-मत का प्रमुख केन्द्र रहा है। भक्ति-युग में कर्नाटक के प्रदेशों में वीर शैव सन्तों ने शैव-मतों के कई केन्द्र खोले थे और शैव मत का खूब प्रचार किया था। ऐसी स्थिति में कृष्ण का लोकमानस में प्रवेश करना आसान नहीं था। लेकिन भक्ति-युग के वैष्णव सन्तों ने नाट्यकला के माध्यम से सामान्य जनों तक राधाकृष्ण पंथ का विस्तार किया। जैसे-जैसे यक्षगान, श्रीकृष्ण पारिजात आदि खेल लोकप्रियता पाने

लगे, तो स्वाभाविक रूप से अन्य देवताओं की कथाएँ भी सम्मिलित होने लगीं। शिव, दुर्गा जैसे देवताओं से सम्बद्ध कथा-प्रसंग भी यक्षगान में जुड़ गये।

यक्षगान की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि भागवत सबसे पहले देवताओं की वंदना करने के बाद विष्णु के दस अवतारों से सम्बद्ध श्लोकों का पाठालाप करता है। इसी तरह नृत्य-गीतों में से बहुत-से गीत विष्णु की वंदना से सम्बद्ध हैं। यक्षगान ज्यादातर कर्नाटक के तटवर्ती इलाकों में अधिक प्रचलित हैं। यक्षगान की सभी मण्डलियाँ वहीं से निकली हैं। इन तटवर्ती इलाकों में उडुपि मन्दिरों का शहर है और आचार्य मध्वाचार्य भी यहीं के थे। श्रीकृष्ण का भव्य मन्दिर यहीं है। यहाँ वैष्णव सम्प्रदाय का पहले से ही अधिक प्रचार रहा है। वैष्णव भक्ति सम्प्रदाय के उद्‌भव और विस्तार के बाद कृष्ण की कथा, उनका बचपन, उनके प्रति राधा का प्रेम या उनकी प्रेम-विषयक क्रीड़ाएँ लोकमंच के लिए अत्यधिक लोकप्रिय कथानक बन गया। समाज में इसका स्थान और मंच के विकास में इसका महत्त्व वस्तुतः बहुत अधिक है। पहली बार शास्त्रीय विविधता का श्रृंगारी भाव लोकमंच पर प्रस्तुत किया गया। कृष्ण एक दूसरी दृष्टि में देखे जाने लगे। उनकी 'लीलाओं' ने उन्हें प्रिय मानव बना दिया। वह प्रेम भी कर सकते थे, धोखा भी दे सकते थे। अपनी विजय के लिए खुशामद भी कर सकते थे। एक दृष्टि से कृष्ण-नाटक भारतीय मंच के पहले सामाजिक नाटक कहे जा सकते हैं।

कर्नाटक के उत्तर के प्रदेशों में यक्षगान के समान श्रीकृष्ण पारिजात नाटकों की परम्परा देखने को मिलती है। यह भी भक्ति सम्प्रदाय की देन है। कन्नड़ के पूर्व संस्कृत में पारिजात नाटक पाये जाते हैं। इन्हीं से प्रभावित होकर तेलुगू में यक्षगान, कुचिपुडी की रचना हुई होगी। उमापति मिश्र ने 'पारिजातापहरणं' (13वीं सदी)

नामक कीर्तन-शैली का प्रथम नाटक लिखा है। यह ग्रन्थ संस्कृत और हिन्दी में है। इसी तरह कविराज का 'पारिजातहरणं' (12वीं सदी), शंकरदेव का 'पारिजातहरण' (14वीं सदी) आदि नाटक उत्तर भारत में मिलते हैं। यहीं से तेलुगू और कन्नड़ प्रदेश के यक्षगान नृत्य नाटक के लिए प्रेरणा मिली होगी। चारणों ने देशभर में संस्कृत नाटकों का जनता के बीच प्रचार किया। इन चारणों से भी प्रेरणा मिली होगी। इन चारणों ने वैष्णव मत के प्रचार के लिए इस खेल को माध्यम बनाया। वे ऐसे खेल खेलने के लिए एक मण्डली बनाकर गाँव-गाँव में उन दिनों खेलने लगे। इन्हें 'दासराट' भी कहा गया। श्रीकृष्ण की लीला का प्रदर्शन करना ही इनका उद्देश्य रहा है। आन्ध्र प्रदेश में हरिकथा जागरण के समय 'भामा कलावम्' नामक नृत्य-नाटक रूप बहुत लोकप्रिय हुआ। इसमें कथा कृष्ण और उनकी प्रिय पत्नी सत्यभामा की है। इसमें गायन, संगीत के साथ अनेक नृत्य हैं।

तेलुगू की कुचिपुड़ी और पारिजात परम्परा का प्रभाव कन्नड़ पर भी पड़ा होगा। तेलुगू में यह परम्परा कन्नड़ से पहले रही है। अपराळ तम्मण्ण (सन् 1800) ने कन्नड़ में 'श्रीकृष्ण पारिजात' की रचना की है। उन्होंने उसका अभिनय कर लोगों में धर्म के प्रति श्रद्धा और लोकनीति जागृत करने की कोशिश की और इस काव्य को रंगभूमि में सफलता के साथ प्रदर्शन करवाया। अतः इनकी कृति कुछ दिनों में काफी लोकप्रिय हुई थी। इसी तरह कन्नड़ के और एक कवि शिरगुप्पि सदाशिवय्या ने इसी कृति में और कुछ अंश जोड़कर उसे पूरा किया। इस कवि के अनुसार भगवान को आकर्षित करने का उद्देश्य भक्ति के लिए ही है, अहंकार के लिए नहीं। कवि ने इसी बात का समर्थन सत्यभामा के माध्यम से किया है। इसमें कृष्ण की बातें सत्यभामा के लिए नहीं, सामान्य लोगों के लिए अमृतबिन्दु बन जाती हैं। रुक्मिणी सत्यभामा को निरहंकार का उपदेश देती है और

काव्य के अन्त में वह भक्ति–सम्प्रदाय की प्रतिनिधि बनती है–

मारनेय्यने भूमि नीनु, मार्गव नानु
तोरुतिंह तंतु नीनु, सारुव पटदनाम नानु
भूरिसरतिउ नानु, सागरनु नीनु
चारुमास चंद्रम नीनु चंद्रिके नानु
पूरण ब्रह्म नीनु, कारणवाद प्रकृति नानु
करियउ नीनु, हारयिसुवे नानु।

इस तरह कहकर रुक्मिणी द्वैत का प्रतिनिधित्व करती है। इस काव्य का स्थायीभाव भक्ति है। अपराळ पारिजात के आद्योपांत श्रीकृष्ण की भक्ति ही व्यक्त है। यहाँ पर भक्ति कई बार कृष्ण का कीर्तन ही बन जाता है। हर पात्र कृष्ण के चारों ओर घूमता फिरता है। समस्त स्तुतियों में कृष्ण की महिमा ही भर गयी है। ये स्तुतियाँ दुष्टों के मर्दन और शिष्टों के रक्षा–कार्यों से युक्त हैं। श्रीकृष्ण की नाम–महिमा का गुणगान करने में श्रीकृष्ण पारिजात के कवियों ने काफी विविधता दिखाई है। उन दिनों श्रीकृष्ण की मधुर–भक्ति लोगों के लिए महत्त्वपूर्ण थी। उन दिनों के कीर्तनकारों ने इन पद्यों का लोगों के बीच काफी प्रचार किया था। कवियों का उद्देश्य यही था कि श्रीकृष्ण की भक्ति सामान्य लोगों तक पहुँचे। 'अपराळ पारिजात' काव्य में कवि के पात्र देवता के समान होते हुए भी वे लौकिक रूप में गोचर होते हैं। सहज मानवीय स्वभाव उनमें दिखाया गया है। कवि ने पूरे काव्य में कृष्ण भक्ति को भर दिया है। कृष्ण के मानवीय स्वभाव के कारण पारिजात काव्य लोक को प्रभावित करने में सफल हो गया है।

'श्रीकृष्ण पारिजात' के कवियों ने कृष्ण की महिमा को साधारण लोगों में लोकप्रिय बनाने के लिए भक्ति से युक्त काव्य लिखा था। अपने इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कवियों ने तीन मुख्य

लक्ष्यों का अनुसरण किया। पहला है—काव्य सरल बनना चाहिए, दूसरा है—काव्य आकर्षक बनना चाहिए। तीसरा है—काव्य आत्मीय बनना चाहिए। पारिजात काव्यों में इस योजना का उचित स्वरूप देखने को मिलता है। इन काव्यों में भाषा, कथासूत्र आदि सामान्य लोगों को समझने योग्य प्रस्तुत किया गया है। काव्य संगीत गुणों से अधिक सम्पन्न है। बहुत-से पात्र मानवीय भावनाओं से युक्त होने के कारण अधिक आत्मीय बन गए हैं। साथ ही 'श्रीकृष्ण पारिजात' काव्य में आदि से अन्त तक देसीपन विद्यमान है। इनमें लोकजीवन एक प्रेरणा-शक्ति के रूप में उभर कर आया है।

यक्षगान श्रीकृष्ण पारिजात से अलग नहीं है। यक्षगान अभिनय प्रधान नृत्य-नाटक है। यक्षगान रंग-कला का अपना साहित्य है, जिसे कन्नड़ में 'प्रसंग' कहा जाता है। प्रसंग में पौराणिक कथा को लेकर कन्नड़ वृत्त में ताल राग के संयोग से एक गेय नाटक रचा जाता है। श्रीकृष्ण संधान, श्रीकृष्ण पारिजात, मागधवध, कृष्णलीले-कंस वध, कृष्णार्जुनकाळग (कृष्णार्जुनयुक्त) आदि जनप्रिय प्रसंग हैं। यक्षगान मूलतः नृत्य रंगभूमि है। इसमें नर्तन का विशेष महत्त्व है और कृष्ण का लास्य यक्षगान के सौन्दर्य का बढ़ाता है। मूलतः श्रीकृष्ण की भक्ति की महिमा के गुणगान एवं लोगों में भक्ति का प्रचार करने के लिए ही यक्षगान खेला जाता था। बाद में इसमें अनेक अन्य पौराणिक कथांश जुड़ गए हैं। आज भी यक्षगान खेल आरम्भ होने के पहले कृष्ण से सम्बन्धित गीतगोविन्द का एक संस्कृत पद गाया जाता है या कन्नड़ का एक प्रवेश पद गाया जाता है—

बंदनो बंद देवरदेव,
बेंबिडदे भक्तर काव।

अर्थात्— **'आया ही आया, देवों का देव'।**
लगातार भक्तों का पालक।

यहाँ 'देवरदेव' भगवान श्रीकृष्ण ही हैं। इन विभिन्न रंग-कलाओं की भाषा अलग-अलग होते हुए भी मूल उद्देश्य एक ही रहा है और इन नाट्यों में अपने-अपने प्रदेश की भाषा के अनुसार परिवर्तन होते आया है।

अन्त में इतना कहना संगत है कि एक ही माँ के बच्चे अलग-अलग भाषा, संस्कृति के प्रदेशों में पलेंगे तो उनमें अन्तर आता ही है। उसी तरह कृष्ण से सम्बन्धित उत्तर और दक्षिण के ये लोकनाट्य यक्षगान, कृष्णलीला, श्रीकृष्ण पारिजात, कूडियाट्टं आदि एक ही मूल से निकलकर, अनेक शाखाओं में बँटकर साम्य-वैषम्य के साथ अपनापन बनाये रखकर विकसित होते आये हैं।

●●

जनजातीय लोकगीतों में कृष्ण

❀ डॉ० अर्जुनदास केसरी

''कृष्णात् परं किमपि तत्वमहं न जाने।''

कृष्ण से बढ़कर दूसरा कौन सा परमतत्त्व है, यह मैं नहीं जानता।

ऋग्वेद, बौद्ध साहित्य, महाभारत और पुराणों सहित कृष्ण का सर्वत्र उल्लेख हुआ है। काव्य में गोपाल कृष्ण की लीला का पहला सन्दर्भ प्रथम शताब्दी ईसवी में रचित अश्वघोष के 'बुद्धचरित' (1-5) में मिलता है। किन्तु इससे पूर्व लोक साहित्य में कृष्ण का अनेकशः उल्लेख हुआ है। जनजातीय साहित्य, लोकसाहित्य का प्राचीनतम रूप है; क्योंकि लोक की संरचना सदा प्रकृति के बीच से होती है और प्रकृति की पहली संतान भले कोई जीव रहा हो, परन्तु मानव को हम प्रथम जीवन्त प्राणी—सचेतन कह सकते हैं। सचेतन प्राणी का मानसिक आहार उसका साहित्य है। हम उस युग की परिकल्पना कर सकते हैं जब रही होगी सिर्फ अभिव्यक्ति, जिसे चित्रों-गुहाचित्रों में सिरजा गया होगा और वह भी सूरज, चन्द्रमा, पृथ्वी, जल, वायु के झोंकों अथवा झूमते हुए वृक्षों को आधार बनाकर। कालान्तर में वन्य जातियों ने गूं-गा करके उसे अभिव्यक्ति दी होगी। आश्चर्य तो इस बात का है कि सदियों-सहस्राब्दियों से केवल कण्ठगत होकर वह साहित्य आज भी उनका पुराणेतिहास है। उनके स्वस्थ मनोरंजन का विषय है।

जनजातियों का एक विशाल विश्व है। उसमें लोक साहित्य की विविध विधाएँ—लोकगाथा, लोककथा, लोकनाट्य, लोकगीत,

लोकसुभाषित आदि वर्तमान हैं। उनमें सर्वाधिक लोक-प्रचलित विधा लोकगीत ही है। इनके लोकगीत बहुआयामी हैं। धर्म उनका प्राणतत्त्व है और धर्म के आधार वैसे तो अनेक देवी-देवता हैं, किन्तु उनमें भी कृष्ण और राम उनके परम आराध्य हैं।

जनजातीय लोकगीतों में कृष्ण का बहुशः उल्लेख है। जन-जातियों का सबसे प्रसिद्ध नृत्यात्मक लोकगीत है—करमा। करमा कर्म अर्थात् पुरुषार्थ का गीत है, जिसे फसल बोने से लेकर उसे काटने तक के कई अवसरों तथा दशहरा, दीपावली, होली, अनन्त-चतुर्दशी, कृष्ण-जन्माष्टमी आदि पर्वों पर समारोह पूर्वक किया जाता है। यह रास का रसिया प्रधान गीत है, जिसे स्त्री, पुरुष, बाल-वृद्ध सभी श्रीकृष्ण-लीला की तरह करते हैं। भादौं या भाद्रपद की अंधेरी रात के आते ही कृष्ण जन्मोत्सव के रूप में वे नृत्य करते हैं। कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

भादों के रतिया हो ऽऽ
नित अंधियरिया हो ऽऽऽ
आगे-आगे जाला बइगा हो बइगिन
पीछे जवइया सब लोग।
गउवां न गोबरे हो अंगना लिपवले ऽऽ
गाड़ै करम के डार॥ करमा

इस इस अवसर पर किसी सार्वजनिक स्थान पर कदम की डाल एक ही बार में काटकर बैगा (पुजारी) या क्वारी कन्या के हाथों भूमि का स्पर्श हुए बगैर, ऊपर ही से लोककर समूह में नृत्य करते हुए लाते हैं। उसे पूजास्थल पर गाड़कर उसके चारों ओर झूमकर जो नाचता शुरू करते हैं तो चौबीस या छत्तीस या अड़तालीस घण्टे तक नाचते ही रहते हैं। यह वही कदम की डाल है जिस पर चढ़कर रसिया कृष्ण गोपियों के संग रास रचाते थे। रास का परिणाम प्रेम-मिलन

और प्रह्लाद है। आदिवासी समाज की मान्यता के अनुसार नाचते-गाते किसी युवक के अंगूठे से किसी युवती के अंगूठे का स्पर्श हो जाता है तो वहीं विवाह भी रचा दिया जाता है। युगल ठीक वैसे ही समूह में नाचते हैं जैसे कृष्ण राधा और सखियों के साथ नाचते थे। हो न हो कदम कृष्ण का प्रतीक हो और उन्हीं को साक्षी मानकर जीव और ब्रह्म के प्रतीक के रूप में मिलन होता है।

कृष्ण का पहला रूप गोचारक का है। वह जैसे ही चलने-फिरने लायक होते हैं, गाय चराने निकल जाते हैं। मुरली की तान अलापते हैं, जिसका ऐसा जादुई असर होता है कि गायें जब भूल जाती हैं तो मुरली की धुन ही उन्हें बटोर लाती है। पर वे गायें भूलती कैसे? जब वे कृष्ण से अलग होतीं ही नहीं। ध्यान दीजिए—कृष्ण गायों को चराकर, उन्हें पानी पिलाकर, वृक्ष की छाँव तले स्थिर करके स्वयं जब शिकार खेलने चले जाते हैं, तभी वे खो जाती हैं या यों कहें कि कृष्ण को सामने न पाकर वे उन्हें खोजने चली जाती हैं। अब क्या हो? कृष्ण लौट आते हैं तो गायों को छाँव तले न पाकर फिफियाकर खोजने लगते हैं। गायें उन्हें और वे गायों को खोजने लगते हैं। इधर भोर होने लगती है। क्या करें, फिर वंशी बजाते हैं और गायें एक जुट हो जाती हैं। गीत का भी आनंद लेते चलें—

मुरली मधुर रोवऽलीन हो ऽऽऽ
गइयवा चराला, मुरली मधुर रोवऽलीन हो ऽऽऽ
कवाने बने गइयवा चरावऽलीन, सारी राती हो ऽऽ
कवाने बने गइयवा हेरालीन हो?
गइयवा चरा के पनियां पीयवऽलीन हो ऽऽऽ
पनियां पिया के करलेन समतुले हो ऽऽऽ
गइनऽ शिकार के त गइया भुलऽलीन हो ऽऽ

जब साम धीरे-धीरे मुरली बजवलीन,
राधा रानी उठें जकलाई हो ऽऽऽ। करवा

अब देखिए! उधर गायों की वह दशा है, इधर मुरली की तान सुनते राधारानी जक्लाकर उठ जाती हैं। कृष्ण से मिलने के लिए दूध दुहने का बहाना लेती हैं और मेटी (दुग्धपात्र) लेकर आगे बढ़ती हैं। गायों को छोड़कर कृष्ण आयेंगे भी नहीं, वह इस बात को भी जानती हैं, अतः चतुरतावश लेवरू (बछड़ों) को छोड़ती हैं और हाथ में नमक लेकर हिंहकारती-पुचकारती-चुचकारती हैं। गायें दौड़तीं और कृष्ण भी चले आते हैं। एक तीर से दो ही नहीं, तीन निशाना साधती हैं—वहाँ। देखिए, जनजातीय गीत की ये मार्मिक पंक्तियाँ—

हंथवा में लेले रहनी गइया दुहनवां
दूधे के बहाना आगे जाति बाईं हो ऽऽऽ
मुरली मधुर रोवऽलीन हो ऽऽऽ
लेवरूदे किसुना जी गइया हिंहिकरले ऽऽऽ
नूना देके रानी हिंहिकारे हो ऽऽऽ
मुरली मधुर रोवऽलीन हो ऽऽ। करमा

श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं तो श्रीकृष्ण लीला पुरुषोत्तम। लीला हमेशा अनुरंजक होती है। जनजातियों का जीवन भी उन्मुक्त होता है। इसलिए मर्यादाएँ बहुत आगे नहीं आतीं। कृष्ण जब वृक्ष के नीचे खड़े होकर बाँसुरी बजाने लगते हैं तो उसे सुनकर सभी सखियाँ उन्हें चारों ओर से घेर लेती हैं। उनमें जो सबसे बड़ी होती हैं, हँसती है तो छोटी मंद मुस्कान करके उन्हें रिझाती है, उससे भी जो छोटी है, अल्पवयस्का, वह तो चील्ह की तरह झपट ही पड़ती है। चील्ह की तरह झपटना एक नया उपमान है, ऐसा अभिजात्य साहित्य में तो नहीं मिल सकता। जनजातियों की यह विशेषता होती है कि वे वर्तमान जीते हैं, अपना माहौल जीते हैं। वे राम-कृष्ण को भी परब्रह्म न

मानकर अपने जैसा मानते और अपनत्व के द्वारा उनको अपना बनाना चाहते हैं। गीत की पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

सिरी किसुना बंसिया बजावे ऽऽऽ
साब सखी सूनि आवे, ऽऽऽ
मझलीं गोरी मुसुके ऽऽऽ
छोटकी त चील्ह नीयर झपटे ऽऽऽ
श्री किसुना बँसिया बजावे ऽऽऽ

आदिवासियों ने वृन्दावन तो नहीं देखा, परन्तु उसको आत्मसात् किया। कृष्ण वहाँ क्या-क्या करते हैं, उसकी भी समालोचना की। अपनों को अपने गीतों के द्वारा उनके भीतर बाहर को भी उजागर कर दिया और सन्देश भी दे दिया कि तुम सब भी वही करो जो वह करते हैं। क्या करते हैं? देखो—ब्रह्मबेला में उठकर बाँसुरी बजाकर, गायों को एकत्र कर, चराने चले जाते हैं, पानी पिलाते हैं, धीरे-धीरे प्यार से घाट चढ़ाते हैं, फिर कदम के छाँव तले डहरा देते हैं। नीम के छाँव तले बछरू छनाते हैं, फिर कदम के छाँव तले डहरा देते हैं। तब तक बाघिन आ जाती है और छेंड़-बकरी को घायल करती जब गायों की ओर बढ़ती है तो राम-लक्ष्मण (रामावतार कह लीजिए) का रूप धारण कर कृष्ण तीर-धनुहीं के द्वारा उन्हें बचाते हैं। यही है उनका लोकरक्षण रूप। पंक्तियों पर ध्यान दीजिए—

ब्रिंदाबन सिरी किसुना बंसिया बजावे।
जमुन घाटे पनियां रे पियावे,
ननदो धीरे-धीरे गइया ठुकरावे,
धीरे-धीरे घटवा हो चढ़ावे,
नीबी तर बछरू छनावे,
ननदो अपने कदम चढ़ि जाय
बाघिन तपसत आवे।

केकर धइले छेरिया-बकरिया,
ननदो हो केकर धइले धेनू गाय।
ननदो हो लंकवा में कइले बा गोहार।
ननदो हो राम लखन धवले गोहार।

अरे भाई! कृष्ण होंगे ब्रह्मलीनों के लिए। यहाँ वनवासियों के बीच तो वह सखा मात्र हैं। इसीलिए जनजातियों के लिए वह सहज ग्राह्य हैं। उनके तो वह नेता भी नहीं हैं। जैसे सभी हैं, वैसे ही वह भी हैं और कृष्ण को उन्हीं जैसा होना अच्छा लगता है। मिर्जापुरी कजरी की दो पंक्तियाँ यहाँ अप्रासंगिक नहीं होंगी—

बृन्दावन में गऊ चरावैं, ग्वाल-बाल संग रास रचावैं।
गावत वेद भेद नहिं पावैं, नेति-नेति कर विरद सुनावैं॥

—कजरी मिर्जापुर सरनाम, पृ० 70

न जाने वेद-कृष्ण का भेद, करते रहें—नेति-नेति, ये वनवासी सब कुछ उनके बारे में जानते हैं। यही तो है—अभेदत्व, जीव-ब्रह्म का एकत्व। कृष्णाश्रयी शाखा के अनेक कवियों ने मिलकर ग्रन्थ लिखकर कृष्ण के जिस रूप को नहीं जाना होगा, उसे ये भोले-भाले आदिवासी सहज में जान गये।

एक बात ध्यान देने योग्य है कि जनजातीय साहित्य में श्रीकृष्ण को मारक-संहारक नहीं बताया गया है, उन्हें चोर, माखन-चोर भी नहीं बताया गया है। आदिवासी उन्हें ऐसा क्यों बतायें? राम के प्रसंग में तुलसी ने जो यह लिखा है कि **"इहइ हमार बड़ी सेवकाई। लेहिं न वासन बसन चुराई॥"** उसे भी कृष्ण के प्रसंग में वनवासियों ने नकार दिया। अरे भाई! माखन दूध-दही की चोरी भी कोई चोरी होती है। वृन्दावन में कभी रही होगी, यहाँ तो दूध-दही की नदियाँ बहती थीं, पीवैं जिसको जितना पीना हो। फिर उसकी चोरी कैसी?

जनजातीय साहित्य में कृष्ण को असुर–निकंदन, गर्व–हरण, नाग–नथैया के रूप में भी चित्रित नहीं किया गया है। वह बड़े हैं तो सबको सुधारें। मारना कोई उपचार है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जनजातीय साहित्य पूर्णरूपेण अहिंसक समाज की स्थापना पर बल देता है। वनवासी वन क्यों काटें? वृक्ष फल और छाया देते हैं। वन्य जीवों को क्यों मारें? वे हमारे पर्यावरण की रक्षा करते हैं। हम कह सकते हैं कि कृष्ण के व्यक्तित्व में जिस लोकरंजनकारी लालित्य का उदात्तीकरण वैष्णव भक्ति विकास में होता गया, उसी की चरम परिणति हम जनजातीय साहित्य में पाते हैं। कृष्ण का रसिया रसिक रूप सबके लिए अनुरंजनकारी और अनुकरणीय है, जिसका सांगोपांग वर्णन इस जनजातीय गीत में आप देखें—

सिरी किसनु जी विनरावत राम जी के डेरा हो ऽऽऽ
हर्रा बहेड़ा तर पर गइले डेरा हो ऽऽऽ
कुसवा न काटि–काटि सथरी लगावे हो ऽऽऽ
चिंउटी के कटले दयिया कइले हंडहोर हो ऽऽ
उठा उठा प्रभुजी करा इजोर हो ऽऽऽ

भाव देखें, किसुन (कृष्ण) राम जी हर्रा- बहेड़ा के नीचे विश्राम कर रहे हैं, कुश की सथरी है जो चुभती है और उस पर भी चींटियाँ काट रही हैं। हे प्रभुजी! (सूर्यदेव) अंजोर तो करिए। वनवासियों के लिए यह जीवन दया का कारण नहीं बनता, बल्कि **''सुख–दुखे समे कृत्वा लाभा लाभौ जया जयौ''** का भाव जाग्रत करता है और जिससे वनवासी शिक्षा ग्रहण करता है। यही कारण है कि आज की इस विकसित, विकसनशील विलासमयी जिन्दगी से कभी ईर्ष्या नहीं करता। वह अपने में मस्त रहता है।

कृष्णलीला में रासलीला सबसे रोचक प्रसंग माना जाता है, जिसके वर्णन में सभी कवियों का मन रमा है। जनजातीय गीतों में भी

कृष्ण को रसिया बताया गया है। नाग-नथैया प्रकरण में नाग ने कृष्ण पर अनेक वार किया था, डस भी लिया, जिससे सारे वनवासी शोक-संतप्त होकर विलाप करने लगे थे—

रसिया के काहे नागा डंसर रे ऽऽऽ

राजाबेटा खेल ले शिकार हे ऽऽऽ

बाझ गइले-चेल्हवा मछरिया हे ऽऽऽ

अरे वह श्रीकृष्ण तो शिकार कर रहे थे। चेल्हवा मछरी पकड़ने के लिए उन्होंने कटिया जमुना-जल में फेंका था, तुम्हें नाथने के लिए थोड़ी। तुम फँस गये तो मेरे उस राजाबेटा (कृष्ण-वात्सल्य) का क्या दोष?

नदी जासे बसे कीट कीरा ऽऽऽ

मछरिन के जीव हार गइले रे ऽऽऽ

तुम क्या यह नहीं जानते कि नदी में और भी जीव-जन्तु रहते हैं। तुम उनको खा जाते हो। अरे भाई! मछलियाँ भी तुमसे शक्ति में कम हैं। उन पर तुम्हें दया क्यों नहीं आती? वे कमजोर हैं इसलिए? और वे बेचारी मछलियाँ भी तुम्हारे दंश से कृष्ण को बचा न सकीं। तो लो बड़ों से तकरार का दुष्परिणाम भोगो। नथ गये नऽ।

आदिवासियों के लघु गीतों में भी भाव-गम्भीर होते हैं। वे ऐसे प्रसंग के ब्याज से अपने शोषण, अभाव का आभास भी दे देते हैं। आदिवासियों का नक्सली बनना विषमता और निरन्तर शोषण का ही परिणाम है। आज वे अपने देश में रहकर भी विस्थापित हो, पलायित और विलुप्त हो रहे हैं। आज वे पुनः लोकरक्षक कृष्ण की उपस्थिति की आवश्यकता महसूस कर रहे हैं। एक प्रसंग और सूरदास ने लिखा—

मैया मैं गाय चरावन जैहौं।

हंकाव ननदो हो ऽऽऽ

बछरू चरना हम जाब हे ऽऽऽ
हका ननदी सातो कियारी ऽ
सुगा लागे हो ऽऽऽ
दीदी गे भातो कहाँ गल हो ऽऽऽ
झलंगा मलल धोवी घाटे ऽऽऽ
झिलंगा दे छोटी गे साजन हो ऽऽऽ

जनजातियाँ अपने से बड़ा कृष्ण को नहीं आंकतीं। कृष्ण कहते—माँ मैं गाय चराने जाऊँगा। वहाँ भूख लगेगी, तो खाने के लिए झिलंगा मछरी रख दो। ओ दीदी गयी है न धोवी घाट। मछली मार लायी होगी, भूनकर उसे ही रख दो।

देखिए, कितने सहज और सुकुमार हैं ये गीत! कितनी मार्मिक है इनकी अभिव्यंजना। ऐसे न जाने कितने प्रसंग हैं—जन-जातीय गीतों में! कृष्ण और सुदामा की मित्रता के भी प्रसंग हैं, जिन्हें विस्तार भय से यहाँ दिया जाना सम्भव नहीं है। क्या पता कृष्ण-भक्त कवियों ने इन्हीं प्रसंगों से बहुत कुछ ग्रहण किया हो। अतः जरूरी है कि इनका संकलन यथाशीघ्र कर लिया जाये। अकादमियाँ, संस्थान इन कार्यों को बखूबी कर करा सकते हैं।

उल्लेख्य है कि कृष्ण को अभिजात्य साहित्य में शिकारी के रूप में चित्रित नहीं किया गया है। इसीलिए वह धनुर्धर भी नहीं हैं। वह मुरलीधर हैं। वह मुरली जो हरे बाँस की बनी है। जनजातियों की जीविका का साधन है—बाँस की बाँसुरी, बाँस ही शहनाई, बाँस के अन्य वाद्य तथा दैनिक उपयोग की वस्तुएँ।

●●

मथुरा कला में कृष्ण

❀ डॉ० एस०पी० सिंह

समन्वय प्रधान सांस्कृतिक वातवरण से ओत–प्रोत व्रज क्षेत्र का गौरवशाली इतिहास लोकविश्रुत है। व्रज में निवास ही मोक्ष प्राप्ति का हेतु है। सप्त मोक्ष प्रदायिका नगरों में मथुरा की गणना से यह स्वतः सिद्ध है। भगवान श्रीकृष्ण की जन्मस्थली होने के कारण मथुरा प्राचीन काल से ही भागवत धर्म का केन्द्र रही है। वैष्णव धर्म का मूल उत्स मथुरा को ही माना जाता है। यहाँ से प्राप्त कलाराशियों से मथुरा की प्राचीनता प्रागैतिहासिक काल तक जाती है। मथुरा की विश्वव्यापिनी कला में बौद्ध, जैन एवं ब्राह्मण सभी धर्मों से सम्बन्धित मूर्तियाँ विपुल मात्रा में प्राप्त हुई हैं।

श्रीकृष्ण भारतीय संस्कृति की महत्तम उपलब्धि हैं। भगवान श्रीकृष्ण भारतीय संस्कृति की पूर्णता के आदर्श हैं। उनका व्यक्तित्व अनादि काल से भारतवासियों के लिए अगाध श्रद्धा तथा आकर्षण का केन्द्र रहा है। साहित्य एवं कला के विविध माध्यमों से विकसित उनकी दिव्यकला वृहत्तर भारत से भारतीय संस्कृति की भावात्मक एकसूत्रता स्थापित करने का सशक्त माध्यम रही हैं।

श्रीकृष्ण की लीलाभूमि होने के कारण मथुरा में कृष्ण से सम्बन्धित अनेकशः प्रतिमाएँ मिली हैं। गोवर्धनधारी कृष्ण, कालिय नाग का दमन, नवजात कृष्ण को लेकर वसुदेव द्वारा यमुना पार करने का दृश्य, विष्णु विश्वरूप, केसी वध आदि दृष्टव्य हैं।

मथुरा के पास मोरा नामक ग्राम से प्रथम सदी ई०पू० की पत्थर की एक बड़ी पटिया मिली है (एस० क्यू० 1)। इसमें उत्कीर्ण

संकर्षण (बलराम), वासुदेव (श्रीकृष्ण), प्रद्युम्न, साम्ब और अनिरुद्ध की तरफ संकेतित है। इसमें संकर्षण श्रीकृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता प्रद्युम्न, साम्ब और अनिरुद्ध की तरफ संकेतित है। इसमें संकर्षण श्रीकृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता, प्रद्युम्न व साम्ब उनके पुत्र के रूप में एवं अनिरुद्ध प्रद्युम्न के पुत्र होने के कारण श्रीकृष्ण के पौत्र थे।

मथुरा संग्रहालय में मन्दिर द्वारा शाखा प्रदर्शित है (सं० 13-367) जो महास्थान (जन्म स्थान) से प्राप्त हुई है। इसमें उल्लिखित है कि वसु नामक व्यक्ति ने शोडाष के राज्यकाल में एक तोरण और वेदिका का निर्माण कराया था जो भगवान वासुदेव को अर्पित किया गया है। यहाँ वासुदेव (श्रीकृष्ण) प्रधान पूज्य देव के रूप में समाहित हैं। यह द्वार शाखा भी प्रथम सदी ई०पू० की है।

कुषाण काल की एक सुन्दर मूर्ति बलराम एवं कृष्ण के साथ तीर्थकर नेमिनाथ की मिलती है। नेमिनाथ के एक तरफ कृष्ण एवं दूसरी तरफ बलराम अंकित हैं। ऐसा उल्लेख मिलता है कि जैन तीर्थकर नेमिनाथ श्रीकृष्ण के ताऊ समुद्रविजय के पुत्र थे। यहाँ जैन एवं ब्राह्मण धर्म का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है। इससे मथुरा कला की सर्वधर्म समभाव की भावना व्यक्त होती है।

नवजात कृष्ण को लेकर वसुदेव द्वारा गोकुल जाने हेतु यमुना पार करने का दृश्य बड़ा ही सुन्दर बन पड़ा है, जो प्रथम शती ई० का है। घनघोर बारिश हो रही है, सूप में बालक कृष्ण शोभायमान हैं, उनके ऊपर नागराज अपने सहस्त्र फण से आवरण किये हुए हैं, ताकि भगवान भीग न जायें। यमुना का जल उफान पर है। मछलियाँ आदि जलचर विचरण कर रहे हैं।

जन्म स्थान से प्राप्त विश्व रूप विष्णु की प्रतिमा प्राप्त हुई है, जो कि उल्लेखनीय है। यह गुप्तकालीन है। भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को महाभारत के युद्ध में अपना विश्व रूप दिखाया था। इस

शिलाखण्ड में दो बड़े सिरों से रुद्रभाव को प्रस्तुत किया गया है। ऊपरी सिर की भयावह मुद्रा, निकली हुई आँखें, चौड़े फैले हुए मुख, जिसमें दो दाँत तथा चेहरे को दाढ़ी के साथ उभारा गया है। मस्तक पर त्रिनेत्र तथा गले में एकावली है। नीचे के सिर में एकावली के स्थान पर मुण्डमाला प्रतीत होती है। इसके पीछे दो पंक्तियों में देवताओं की जो अन्य आकृतियाँ हैं, वे अस्पष्ट हैं।

केसी वध को दर्शाती हुई प्रतिमा बहुत ही सुन्दर बन पड़ी है। राक्षस केसी घोड़े के रूप में अंकित है। जिसकी गर्दन पर भगवान श्रीकृष्ण अपने पैर से प्रहार करते हुए दर्शाये गये हैं।

एक प्रस्तर खण्ड में उत्कीर्ण कालियनाग का दमन दिखाया गया है। नाग डरा हुआ प्रतीत होता है। ब्रज में गोवर्धन धारण लीला अति प्रसिद्ध है। जिससे सम्बन्धित सुन्दर कलाकृति संग्रहालय में प्रदर्शित है। भगवान श्रीकृष्ण बाँये हाथ की हथेली से गोवर्धन पर्वत को उठाये हुए हैं।

धेनुकासुर वध लीला, कृष्ण बलराम, चतुर्व्यूह, वेणु गोपाल, लड्डू गोपाल, बाँसुरी बजाते हुए कृष्ण आदि प्रस्तर तथा कॉस्य प्रतिमाएँ मथुरा कला की शोभा हैं। लघुचित्रों में कदम्ब के नीचे राधा- कृष्ण, गायों के साथ कृष्ण, कदम्ब के नीचे श्रीकृष्ण वंशी बजाते हुए, गोपियों के साथ रास रचाते हुए श्रीकृष्ण आदि का अंकन उत्कृष्ट बन पड़ा है।

यह निश्चित है कि भगवान कृष्ण की उपासना द्वितीय—प्रथम शती ई०पू० से प्रारम्भ हो गयी थी। बेस नगर (विदिशा म० पु०) के गरुड़ स्तम्भ, जिसे होलियोडोरस ने श्रद्धासहित देव 'देव वासुदेव की स्मृति में स्थापित किया था। गरुड़ स्तम्भ में अंकित लेख द्वितीय शती ई०पू० का है, जिससे सिद्ध होता है कि वासुदेव कृष्ण भक्ति की लहर देश की सीमा को लाँघकर विदेशों में भी जा

पहुँची थी। विदेशी भी कृष्ण भक्ति में रम गये थे। श्रीकृष्ण का जीवन-वृत्त आज से लगभग साढ़े चार हजार वर्ष पहले सिन्धुवासियों को ज्ञात हो चुका था। जैसा कि पुरातत्त्ववेत्ता डॉ० ई०जे०एच० मैके ने सिन्धु सभ्यता से प्राप्त खड़िया मिट्टी की एक मुहर से प्रमाणित किया है, जिसमें श्रीकृष्ण द्वारा यमलार्जुन वृक्षों के उखाड़ने की घटना है। प्रख्या कलाविद डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने भी इससे सहमति व्यक्त की है। इससे उस पौराणिक मान्यता की भी पुष्टि हो जाती है। जिसके अनुसार महाभारत या श्रीकृष्ण का काल निर्धारण पाँच हजार वर्ष पहले किया जाता है।

यद्यपि श्रीकृष्ण ने मथुरा में अवतार किया था तथापि तद्नुसार उनकी प्रतिमाएँ यहाँ कम ही मिलती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीकृष्ण को अवतार मानते हुए ही उन्हें साक्षात् विष्णु ही मान लिया गया। यही कारण है कि ब्रज में विष्णु की प्राचीन प्रतिमाएँ द्विभुजी कम मिलती हैं, चतुर्भुज षटभुजी अथवा अष्टभुजी अधिक मिली हैं। श्रीकृष्ण देवाधिदेव के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण के चतुर्भुजी रूप में मान्यता प्राप्त है।

भारत तथा उसके बाहर भी प्राप्त बहुसंख्यक शिलालेखों, ताम्रपत्रों, लघुचित्रों, कांस्य तथा प्रस्तर मूर्तियों में श्रीकृष्ण का उल्लेख प्रचुर रूप में मिलता है, जिससे भगवान श्रीकृष्ण की व्यापकता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। वस्तुतः वे सर्वजन के देवता बन गये थे, उनकी पूजा का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। लोकजन में पूजित होने के कारण ही आज भी सम्पूर्ण विश्व भगवान श्रीकृष्ण की परमसत्ता में विश्वास करता है।

●●

भारतीय लोकवार्ता में श्रीकृष्ण

सिंहावलोकन

❀ डॉ० ब्रजभूषण चतुर्वेदी
(संयोजक)

वृन्दावन शोध संस्थान, वृन्दावन में दिनांक 18, 19, 20 फरवरी, 2011 को सम्पन्न ''भारतीय लोक वार्ता में श्रीकृष्ण'' विषयक त्रिदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के आयोजन में देश भर के विभिन्न प्रान्तों से आये विद्वानों ने अपने-अपने क्षेत्र की लोकवार्ताओं में श्रीकृष्ण के स्वरूप पर प्रकाश डाला।

संगोष्ठी के प्रथम दिन उद्घाटन कार्यक्रम की अध्यक्षता हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद के अध्यक्ष डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित ने की एवं संगोष्ठी का उद्घाटन आदिवासी लोक कला अकादमी, भोपाल के निदेशक डॉ० कपिल तिवारी ने दीप प्रज्ज्वलन कर किया। आयोजित कार्यक्रम के अन्तर्गत डॉ० कपिल तिवारी ने विषय प्रवर्तन करते हुए कहा कि भगवान श्रीकृष्ण प्रत्येक साहित्य में प्रेरणाकारी रहे हैं। श्रीकृष्ण का चरित्र साहित्यकारों के लिए सदैव चिन्तन का विषय रहा है। उन्होंने कहा, हिन्दी ही नहीं अनेक भाषाओं में विद्वानों ने अपनी शैली में उनकी लीलाओं के वर्णन को साहित्य जगत में उकेरने का प्रयास किया है।

सत्राध्यक्ष डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में कहा कि श्रीकृष्ण के चरित्र में जीवन के विभिन्न पक्ष समाहित हैं। मनुष्यगत समस्त भावनाओं की स्थूल एवं सूक्ष्म व्याप्ति श्रीकृष्ण के विराट चरित्र में दृष्टिगोचर होती है। इसीलिए वे षोड्श कला सम्पन्न

अवतार और महायोगेश्वर भी कहे जाते हैं। विभिन्न भाषाओं में श्रीकृष्ण के अनेक स्वरूपों का विवरण प्राप्त होता है। इससे पूर्व कार्यक्रम का शुभारम्भ कवि अशोक 'अज्ञ' द्वारा मंगलाचरण के प्रस्तुति- करण से हुआ। संगोष्ठी के आरम्भ में वृ०शो०सं० के अध्यक्ष श्री भवानी शंकर शुक्ल ने कहा कि श्रीधाम वृन्दावन रस की राजधानी है। यहाँ की रसोपासना अनुपम है। इसी माँटी में जन्मे और विभिन्न लीलाएँ करने वाले श्रीकृष्ण की चर्चा भारत ही नहीं अपितु समूचे विश्व में पूरे व्यापक स्वरूप से की जाती है। प्रस्तुत संगोष्ठी के आयोजन का मुख्य उद्देश्य देश भर के विभिन्न प्रान्तों, भाषाओं की लोकवार्ताओं में श्रीकृष्ण के स्वरूप का विवेचन किया जाना है और इसके लिए अनेक विद्वान् यहाँ उपस्थित हुए हैं। उन्होंने आशा व्यक्त की कि संस्थान का यह प्रयास अवश्य ही सार्थक सिद्ध होगा। म०प्र० साहित्य अकादमी, भोपाल के निदेशक डॉ० त्रिभुवननाथ शुक्ल ने कहा कि श्रीकृष्ण योग, भाषा, साहित्य, लोककला और इतिहास की नाभि हैं। वह और उनकी परम्पराएँ भारतीय समाज और जीवन में हमारे देश की अकल्पनीय विविधता में वास्तविक भावात्मक सांस्कृतिक कला का सूत्र एवं आधार है। उद्घाटन सत्र का समापन वृ०शो०सं० के निदेशक श्री हरिमोहन मालवीय के द्वारा सभी विद्वानों को धन्यवाद ज्ञापन से हुआ।

संगोष्ठी के प्रथम सत्र में ब्रज की लोकवार्ता में श्रीकृष्ण विषय पर बोलते हुए पुणे की श्रीमती मालती शर्मा ने कहा कि ब्रज के लोक साहित्य का आधे से अधिक भाग श्रीकृष्णमय है और इसमें श्रीकृष्ण चरित्र के विविध रूपों का पल्लवन है। उन्होंने बच्चे के जन्म से लेकर विवाह, घोड़ी, बधाई, रसिया, लावनी, चक्की के गीत, सावन के गीत, मल्हार, बारहमासी आदि लोक गीतों में श्रीकृष्ण के सन्दर्भों का उल्लेख किया। बड़ौदा से आए विद्वान् डॉ० विष्णु

विराट चतुर्वेदी ने गुजरात की लोक वार्ता में श्रीकृष्ण विषय आलेख का वाचन करते हुए कहा कि कृष्ण भक्ति का प्रसार गुजरात की लोक कलाओं तथा गाथाओं में बिखरा पड़ा है। यहाँ तक कि देवी पूजन या दुर्गाष्टमी के गान, गीतों में भी श्रीकृष्ण की ही लीलाओं का लोक गायन किया जाता है। शान्ति निकेतन पं० बंगाल से आये विद्वान् डॉ० हरिश्चन्द्र मिश्र ने बंगला लोक साहित्य में श्रीकृष्ण पर व्याख्यान देते हुए का कि बंगाल के अनेक लोक गीतों में श्रीकृष्ण का उल्लेख है, जिसमें बच्चों को बहलाने वाले गीतों में श्रीकृष्ण का आश्रय लेकर वात्सल्य रस की सृष्टि हुई है। उन्होंने कहा कि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कृष्ण-राधा सम्बन्धी ग्राम्य गीतों का विश्लेषण किया है। बंगाल के जिस अंचल में वैष्णव प्रभाव अधिक है, उन अंचलों के गीतों में श्रीकृष्ण की उपस्थिति हुई है।

उदयपुर, राजस्थान से पधारे डॉ० महेन्द्र भानावत ने कहा कि राजस्थान के लोक जीवन में कृष्ण का प्रभाव कई रूपों में देखने को मिलता है। उन्होंने कहा कि श्रीकृष्ण के विभिन्न स्वरूपों को वहाँ मंचीय प्रदर्शनों, आदिवासी क्षेत्रों में प्रचलित नृत्यानुष्ठान, रूप ख्याल में गबरी आदि में सहजतापूर्वक देखा जा सकता है। शोध-पत्र वाचन करते हुए उन्होंने कहा कि राजस्थान की लोक परम्परा कानगूजरी के अन्तर्गत कृष्ण गोपियों के साथ संवाद मूलक दृश्यों में प्रेम क्रीड़ा तथा चुहलबाजी करते देखे जा सकते हैं तथा इसके साथ जो कथा वार्ता चलती है वह भारत के नाम से जानी जाती है।

कश्मीरी लोकवार्ता में श्रीकृष्ण शीर्षक शोध पत्र का वाचन करते हुए द्वितीय सत्र में श्री चमनलाल सप्रू ने कहा कि अवतारवाद और लीला की अवधारणाओं पर आधारित इस युग का भक्ति काव्य कश्मीरी साहित्य का स्वर्णिम अध्याय है। उन्होंने कहा, इससे पूर्व सत्रहवीं शती के प्रतिनिधि भक्त कवि साहिब कौल की रचनाओं में

भी भक्ति काव्य का समावेश दृष्टव्य है।

तेलुगू लोक वार्ता में श्रीकृष्ण विषयक शोध पत्र का वाचन करते हुए विशाखापट्टनम् से पधारी प्रो० एस० शेषारत्नम् ने कहा कि आन्ध्र की लोक गाथाओं में श्रीकृष्ण का वर्णन बहुधा देखा जा सकता है। वहाँ 'मेलुकोलुपु पाटलु' जागरण गीत या सुप्रभात गीत, संस्कार गीतों के अन्तर्गत विवाह के समय उबटन की परम्परा जो नलुगु कहलाती है, में श्रीकृष्ण की उपस्थिति वहाँ की लोक परम्पराओं में श्रीकृष्ण के महत्त्व का प्रतिपादन करने वाली है।

संगोष्ठी के दूसरे दिन 19 फरवरी को तृतीय सत्र की अध्यक्षता चेन्नई से पधारे विद्वान् डॉ० एन सुन्दरम् ने की। कुमाऊँ की लोकवार्ता में श्रीकृष्ण विषय पर व्याख्यान देते हुए अल्मोड़ा के विद्वान् प्रो० देवसिंह पोखरिया ने कहा कि कुमाऊँ की लोक वार्ता में कृष्ण के प्रबल परम पुरुष रूप के साथ ही मानवीय गुणों और दुर्बलताओं का भी चित्रण मिलता है। कृष्ण का सर्वाधिक विवरण कुमाऊँ गढ़वाल की जागर गाथाओं में मिलता है।

धारवाड़ से आए विद्वान् प्रो० टी०आर० भट्ट ने कन्नड़ लोक वार्ता में श्रीकृष्ण शीर्षक शोध पत्र का वाचन करते हुए कहा कि यक्ष गान कन्नड़ प्रदेश का जनप्रिय एवं प्राचीन लोकनाट्य है, जिसका शुभारम्भ वैष्णव भक्ति आन्दोलन के संदर्भ में हुआ है।

सत्राध्यक्ष डॉ० एन० सुन्दरम् ने तमिल लोक वार्ता में श्रीकृष्ण विषय पर बोलते हुए कहा कि तमिलनाडु के अनेक अंचलों में कृष्ण विषयक लोक गीत और लोकवार्ताएँ बिखरे पड़े हैं। इस क्षेत्र की मिथिकीय कथाओं में कृष्ण के सम्बन्ध में कई कहानियाँ प्रचलित हैं।

सत्र के समापन पर वृन्दावन के सन्त स्वामी श्रीगोविन्दानन्द जी तीर्थ ने अपना आशीर्वाद देते हुए संगोष्ठी के उद्देश्य को सार्थक बताया और कहा कि कृष्ण की भूमि वृन्दावन में सम्पूर्ण देश के

विद्वानों का समागम बड़े ही हर्ष का विषय है। उन्होंने संगोष्ठी की सफलता हेतु कामना की।

इसी दिन चतुर्थ सत्र की अध्यक्षता लखनऊ के विद्वान् डॉ० मदनमोहन सिन्हा ने की। गढ़वाली लोकवार्ता में श्रीकृष्ण विषय पर व्याख्यान देते हुए डॉ० उर्मिल कुमार थपलियाल ने कहा कि गढ़वाल में कृष्ण को नागर्जा अर्थात् नागराजा के रूप में जाना जाता है। विशेष अवसरों पर लोक परम्परानुसार भक्तों द्वारा इनको परकाया प्रवेश के द्वारा आह्वान कर नचाया भी जाता है। नागर्जा के जागर गीतों में कृष्ण के लीला प्रसंग बहुतायत से मिलते हैं। जिनमें कुसुमा कोलिन और सुजूकी सोवारी प्रमुख हैं।

भुवनेश्वर से पधारे डॉ० शंकरलाल पुरोहित ने उत्कल लोक नृत्यों में श्रीकृष्ण विषय पर व्याख्यान देते हुए कहा कि उड़ीसा के लोक जीवन के प्राण श्रीकृष्ण जगन्नाथ दास रचित उड़िया भागवत में बसे हैं। यहाँ का प्रसिद्ध ओडिसी नृत्य आराधक नृत्य है जो कि भगवान जगन्नाथ के आराधन की एक विधि है।

लखनऊ से पधारे डॉ० मदनमोहन सिन्हा ने भोजपुरी लोकवार्ता में श्रीकृष्ण विषयक व्याख्यान प्रस्तुत करते हुए कहा कि यहाँ के लोक गीतों में श्रीकृष्ण की अद्भुत लीलाओं के वर्णन दृष्टिगोचर होते हैं। विशेष रूप से झूला के गीत, मल्हार आदि कृष्ण लीलाओं से सम्बन्धित हैं।

संगोष्ठी के तृतीय एवं अन्तिम दिन के पंचम सत्र की अध्यक्षता राँची से आए विद्वान् डॉ० नरेन्द्र झा ने की। खतौली से आए विद्वान् डॉ० देवराज ने मणिपुरी लोक वार्ता में श्रीकृष्ण विषय पर व्याख्यान देते हुए कहा कि मणिपुर में कृष्ण को सर्वाधिक जन स्वीकृति दिलवाने का कार्य राजर्षि भाग्यचन्द्र ने किया। उन्होंने कहा कि मणिपुर के मन्दिरों में विभिन्न अवसरों पर कीर्तन भजन के

अन्तर्गत कृष्ण लीलाओं का गायन किया जाता है।

सोनभद्र से पधारे डॉ० अर्जुनदास केसरी ने जनजातीय लोक गीतों में कृष्ण विषय पर व्याख्यान प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि जनजातियों में लम्बी-लम्बी लोक गाथाएँ, लोक कथाएँ और लोक नाट्य आदि शताब्दियों से प्रचलित हैं, जिनमें करमा जनजातियों में रास गीत या रसिया गीत गाए जाते हैं और ये कृष्ण पर आधारित होते हैं।

डॉ० नरेन्द्र झा ने मैथिली लोक गीतों में श्रीकृष्ण विषय पर बोलते हुए कहा कि यहाँ के लोक गीतों में श्रीकृष्ण के वात्सल्य एवं श्रृंगार दोनों का चित्रण मिलता है। पौराणिक देवता होने के बावजूद मिथिला की लोक भूमि में राधाकृष्ण विषयक गीतों को विष्णुपद के नाम से भी जाना जाता है।

छठे सत्र की अध्यक्षता लखनऊ की डॉ० विद्याबिन्दु सिंह ने की। इस सत्र में ब्रज की कलाओं पर बोलते हुए राजकीय संग्रहालय मथुरा के सहायक निदेशक डॉ० एस०पी० सिंह ने कहा कि मूर्ति शिल्प के क्षेत्र में मथुरा कला का अपना विशिष्ट योगदान रहा है। उन्होंने कहा कि श्रीकृष्ण की लीला भूमि मथुरा प्राचीन काल से ही भागवत धर्म का केन्द्र रहा है, जिसके साक्ष्य स्वरूप श्रीकृष्ण से सम्बन्धित अनेक प्रतिमाएँ मिली हैं। इसमें गोवर्धन धारी कृष्ण, कालिय दमन, वसुदेव द्वारा श्रीकृष्ण को यमुना पार कराना, केशीवध आदि प्रमुख हैं।

डॉ० विद्याबिन्दु सिंह ने अवधी लोक वार्ता में श्रीकृष्ण विषय पर अपना पत्र वाचन करते हुए कहा कि श्रीकृष्ण के बाल, किशोर, युवा और योद्धा रूप के साथ ही उनके प्रेमी युगल रूप की छवि लोक साहित्य में मिलती है। बसन्त ऋतु के गीत, वर्षा के गीत, संस्कार गीत आदि में कृष्ण कथा प्रसंग बहुतायत से मिलते हैं किन्तु

अवधी लोक गीतों में रुक्मिणी और कृष्ण का युगल रूप अधिक उजागर हुआ था। यहाँ तक कि श्रीकृष्ण की बाँसुरी चोरी का प्रसंग भी रुक्मिणी के साथ जुड़ा हुआ मिलता है।

समापन सत्र की अध्यक्षता वृ०शो०सं० के अध्यक्ष श्री भवानीशंकर शुक्ल ने की। मुख्य अतिथि टाटबाबा फाउण्डेशन के अध्यक्ष संत श्रीआनन्ददेव टाटबाबा थे। इस सत्र में डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित ने संगोष्ठी-सार प्रस्तुत किया। डॉ० महेन्द्र भानावत और डॉ० एन० सुन्दरम् ने संगोष्ठी के सम्बन्ध में अपने विचार रखे। डॉ० विष्णुविराट चतुर्वेदी और डॉ० रमाशंकर पाण्डेय ने श्रीकृष्ण से सम्बन्धित काव्य पाठ किया। मथुरा के अपर जिलाधिकारी श्री अवधेश तिवारी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए संगोष्ठी को सफल एवं उद्देश्यपूर्ण बताया। मुख्य अतिथि श्रीआनन्ददेव टाटबाबा ने कहा कि श्रीकृष्ण सत् चित और आनन्द से पूर्ण होकर ही सच्चिदानन्द के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं। विश्व के अनेक क्षेत्रों में श्रीकृष्ण का प्रभाव इनकी व्यापकता के आनन्द स्वरूप को प्रकट करने वाला है। अध्यक्षीय वक्तव्य देते हुए श्री भवानीशंकर शुक्ल ने कहा कि विभिन्न अंचलों की लोक वार्ताओं में कृष्ण की उपस्थिति राष्ट्रीय एकता की भावना को प्रदर्शित करती है। उन्होंने यह भी कहा कि त्रिदिवसीय संगोष्ठी में पधारे सभी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत शोध पत्रों के माध्यम से श्रीकृष्ण से सम्बन्धित लोकवार्ताओं की विविधताएँ प्रस्तुत हुई हैं। उन्होंने सभी विद्वानों के प्रति आभार जताया। इस त्रिदिवसीय संगोष्ठी में डॉ० राजेन्द्ररंजन चतुर्वेदी, डॉ० नरेशचन्द्र बंसल, मोहनस्वरूप भाटिया, डॉ० अनिल गहलौत, डॉ० प्रतापपाल शर्मा, डॉ० सुरेन्द्र शर्मा, डॉ० शैलेन्द्रनाथ पाण्डेय, डॉ० अनिल चतुर्वेदी, डॉ० उमाभास्कर, डॉ० लक्ष्मी गौतम आदि ने प्रेक्षक विद्वानों के रूप में परिचर्चा की। धन्यवाद ज्ञापन करते हुए निदेशक हरिमोहन मालवीय

ने कहा कि वृ०शो०सं० समस्त विद्वानों और अतिथियों से यह अपेक्षा करता है कि उनका सहयोग संस्थान के प्रति इसी प्रकार अनवरत बना रहेगा।

संगोष्ठी के प्रथम दिन दिनांक 18 फरवरी 2011 को सायंकाल राष्ट्रीय कथक संस्थान, लखनऊ के कलाकारों द्वारा भव्य कथक नृत्य तथा दूसरे दिन 19 फरवरी 2011 को सायंकाल उत्तर मध्य सांस्कृतिक केन्द्र, इलाहाबाद के कलाकारों द्वारा लोक संगीत विधा 'पाण्डवानी' की आकर्षक प्रस्तुति विद्वानों एवं अतिथियों के समक्ष की गयी।

●●

आमन्त्रित प्रतिभागी तथा प्रेक्षक विद्वान्

प्रतिभागी

1. डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित
डी–54, निराला नगर
लखनऊ–226020 (उ०प्र०)
मो० : 09451123525

2. डॉ० कपिल तिवारी
निदेशक,
आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य अकादमी
मध्य प्रदेश संस्कृति परिषद्,
मुल्ला रमूजी संस्कृति भवन आधार तल, बाण गंगा
भोपाल – 462003
मो० : 0755–2775122

3. प्रो० त्रिभुवन नाथ शुक्ल
निदेशक
साहित्य अकादमी, मध्य प्रदेश संस्कृति परिषद्
मुल्ला रमूजी संस्कृति भवन
बाण गंगा रोड, भोपाल – 462003
मो० : 9425044685

4. डॉ० हरिश्चन्द्र मिश्र
प्रो०– हिन्दी भवन विश्व भारती,
शान्ति निकेतन
प० बंगाल – 731235
मो० : 09434375497

5. डॉ० एस० शेषारत्नम्
4-66-1/4 नायन्स जे कालोनी
विशाखापट्टनम - 530017 (आ०प्र०)
मो० : 09848408040

6. डॉ० विद्याबिन्दु सिंह
45, गोखले विहार
लखनऊ - 226001 (उ०प्र०)
मो० : 09335904928, 09451329402

7. डॉ० मदन मोहन सिन्हा 'मनुज'
8/102, इन्दिरा नगर
लखनऊ - 16 (उ०प्र०)
मो० : 0945041452

8. डॉ० देवराज,
C/o श्री ब्रह्मदेव वर्मा
पालिका विहार, खतौली (उ०प्र०)
मो० : 09548016150

9. डॉ० रजनीश प्रसाद मिश्र
82/35-1470 के., पन्तनगर
खुर्रम नगर, लखनऊ - 226022
मो० : 9415348844

10. डॉ० देवसिंह पोखरिया
अध्यक्ष हिन्दी विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय
सोहन सिंह जीना परिसन, अलमोड़ा - 263601
मो० : 09412976889

11. डॉ० नरेन्द्र झा
325–सी., ओल्ड ए.जी. कॉलौनी
कडरू, (झारखण्ड)
मो० : 09661806132

12. डॉ० मनमोहन सहगल
263–अजीत नगर
पटियाला (पंजाब)
मो० : 09815656171

13. डॉ० सुरेश माहेश्वरी
गिलडा प्रोविजन, बाजार पैठ अमलनेर
जलगाँव – 426401 (महाराष्ट्र)
मो० : 09422281109

14. डॉ० ओम गोस्वामी
181, पहाड़िया स्ट्रीट
जम्मूतवी – 180001
मो० : 09419203453

15. डॉ० हरिमोहन पुरवार
संस्थापक – निदेशक
बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई
मो० : 09415169556

16. डॉ० मालती शर्मा
1034/1, मॉडल कॉलौनी
कैनाल रोड, पुणे – 211016
मो० : 9423247033